भाग ८९ संख्या १

अप्रैल १९५९ मेष २०१६ विक्र०, चैत्र १८८१ शा०

वार्षिक मूल्य ४ रुपए] [इस अङ्क का मूल्य ४० नए पैसे

विज्ञान परिषद् के मुख्य नियम

१—१६७० वि० या १६१३ ई० में विज्ञान परिषद् की इस उद्देश्य से स्थापना हुई कि भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक साहित्य का प्रचार हो तथा विज्ञान के अध्ययन को और साधारणतः वैज्ञानिक खोज के काम को प्रोत्साहन दिया जाय।

२—परिषद् में सभ्य होंगे। निर्दिष्ट नियमों के अनुसार साधारण सभ्यों में से ही एक सभापति, दो उप-सभापति, एक कोषाध्यक्ष, एक प्रधान मन्त्री, दो मन्त्री एक सम्पादक और एक अन्तरंग सभा निर्वाचित करेंगे जिनके द्वारा परिषद् की कार्यवाही होगी।

२२—प्रत्येक सभ्य को ६) वार्षिक चन्दा देना होगा। प्रवेश शुल्क ३) होगा जो सभ्य बनते समय केवल एक बार देना होगा।

२३—एक साथ १०० रु० की रकम देने से कोई भी सभ्य सदा के लिये वार्षिक चन्दे से मुक्त हो सकता है।

२६—सभ्यों को परिषद् के सब अधिवेशनों में उपस्थित रहने का, अपना मत देने का, उनके चुनाव के पश्चात् प्रकाशित परिषद् की सब पुस्तकों, पत्र, तथा विवरण इत्यादि को बिना मूल्य पाने का—यदि परिषद् के साधारण धन के अतिरिक्त किसी विशेष धन से उनका प्रकाशन न हुआ हो—अधिकार होगा। पूर्व प्रकाशित पुस्तकें उनको तीन चौथाई मूल्य में मिलेंगी।

२७—परिषद् के सम्पूर्ण स्वत्व के अधिकारी सभ्य-वृन्द समझे जायेंगे।

हमारी प्रकाशित पुस्तकें

	मूल्य
१—विज्ञान प्रवेशिका भाग १—श्री रामदास गौड़, प्रो० सालिगराम भार्गव	३७ नये पैसे
२—वैज्ञानिक परिमाण—डा० निहालकरण सेठी	१ रु०
३—समीकरण मीमांसा भाग १—पं० सुधाकर द्विवेदी	१ रु० ५० नये पैसे
४—समीकरण मीमांसा भाग २—पं० सुधाकर द्विवेदी	६२ नये पैसे
५—स्वर्णकारी—श्री गंगा शंकर पचौली	३७ नये पैसे
६—त्रिफला—श्री रमेश वेदी	३ रु० २५ नये पैसे
७—वर्षा और वनस्पति—श्री शंकर राव जोशी	३७ नये पैसे
८—व्यंग चित्रण—ले० एल० ए० डाउस्ट अनुवादिका—डा० रत्न कुमारी	२ रुपया
९—वायुमंडल—डा० के बी० माथुर	२ रुपया
१०—कमल पैवन्द—श्री शंकर राव जोशी	२ रुपया
११—जिल्द साजी—श्री सत्य जीवन वर्मा एम० ए०	२ रुपया
१२—तैरना—डा० गोरख प्रसाद डी० एस-सी०	१ रुपया
१३—वायुमंडल की सूक्ष्म हवायें—डा० संत प्रसाद टंडन	७५ नये पैसे
१४—खाद्य और स्वास्थ्य—डा० ओंकार नाथ पर्ती	७५ नये पैसे
१५—फोटोग्राफी—डा० गोरख प्रसाद	४ रुपये
१६—फल संरक्षण—डा० गोरख प्रसाद डी० एस-सी०, श्री वीरेन्द्र नारायण सिंह	२ रु० ५० नये पैसे
१७—शिशु पालन—श्री मुरलीधर बौड़ाई	४ रुपये
१८—मधुमक्खी पालन—श्री दयाराम जुगड़ान	३ रुपये
१९—घरलू डाक्टर—डा० जी० घोष, डा० उमाशंकर प्रसाद, डा० गोरख प्रसाद	४ रुपये
२०—उपयोगी नुसखे तरकीबें और हुनर—डा० गोरखप्रसाद, डा० सत्यप्रकाश	३ रुपये ५० नये पैसे
२१—फसल के शत्रु—श्री शंकर राव जोशी	३ रुपये ५० नये पैसे
२२—सांपों की दुनिया—श्री रामेश वेदी	४ रुपये
२३—पोर्सलीन उद्योग—श्री हीरेन्द्रनाथ बोस	७५ नये पैसे
२४—राष्ट्रीय अनुसंधान-शालायें	२ रुपये
२५—गर्भस्थ शिशु की कहानी—अनु० प्रो० नरेन्द्र	२ रु० ५० नये पैसे
२६—रेल इंजन परिचय और संचालन—श्री ओंकारनाथ शर्मा	६ रुपया

मिलने का पता :

विज्ञान परिषद्

विज्ञान परिषद् भवन, थार्नहिल रोड

इलाहाबाद—२

विज्ञान

विज्ञान परिषद् प्रयाग का मुख-पत्र

विज्ञान ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञान जानेतानि जीवान्तविज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्ति। तै० उ० ।३।५।

भाग ८६	मेष २०१६ विक्र०; चैत्र १८८१ शाकाब्द; अप्रैल १९५९	संख्या १

कृत्रिम खाद की कहानी

डा० जे० जी० श्रीखंडे, संचालक केन रिसर्च इन्स्टीच्यूट शाहजहांपुर

[विज्ञान परिषद् के वार्षिक अधिवेशन में १६ अक्टूबर १९५८ को दिया गया भाषण]

करीब एक सप्ताह पहिले जब कि मैं इलाहाबाद में एक मीटिंग के कारण उपस्थित हुआ, उस समय खाना खाने के समय डा० सत्य प्रकाश जी ने कहा कि ब्राह्मण लोग भोजन अच्छा चाहते हैं और करते हैं मगर काम कुछ थोड़ा करते हैं। पूंछने पर उन्होंने मेरे से पूंछा कि मैं आज के दिन कुछ भाषण देने के लिये तैयार हूँगा या नहीं। उनका ब्राह्मणों के ऊपर किया गया आरोप कुछ हद तक सही है, क्योंकि इतिहास से पता चलता है कि मराठों का साम्राज्य उनके पेशवों ने जो कि ब्राह्मण थे, अच्छा अच्छा खाद्य खाकर, मौज और चैन करके नष्ट कर दिया। डाक्टर साहब का इतना कहना मुझे काफी था और मैं उनके आज्ञानुसार यह भाषण देने को तैयार हुआ। डाक्टर साहब हिन्दी के बड़े प्रेमी हैं मगर उन्होंने भी मुझसे कहते समय कुछ थोड़ा हिन्दी का अपमान किया क्योंकि उन्होंने मुझे शुद्ध हिन्दी में न कहते हुए अंग्रेजी के कुछ शब्दों का प्रयोग करते हुए कहा कि "आप एक साइण्टिफिक टाक इस अवसर पर दीजिए।" अगर डाक्टर सत्य प्रकाश जी की भाषा में ऐसा 'खिचड़ी प्रयोग' हो सकता है तो मेरे सरीखे हिन्दी से कम अभ्यस्त व्यक्ति भाषण में कुछ अंग्रेजी शब्दों का उपयोग करें तो अवश्य ही क्षमा के योग्य हूँ।

आज का विषय बहुत विस्तृत है और इसकी चर्चा खाद्य पदार्थों की कम उपज होने के कारण काफी होती रहती है। मगर यह पारिभाषिक शब्द 'कृत्रिम खाद' (Artificial Fertilizer) कैसे प्रयोग में आया इसके विषय में आपके सामने दो चार शब्द कहूँगा।

प्रत्येक वैज्ञानिक विषय में काफी खोज और अनुभव के बाद निश्चय किया जाता है कि किसी विशेष प्रक्रिया के क्या परिणाम हो सकते हैं। इसी प्रकार कृषि विज्ञान में भी अनुभव के आधार पर यह जानने का प्रयत्न किया जाता है कि किसी विशेष भूमि, वनस्पति अथवा प्राणी में क्या क्या परिवर्तन और क्रियायें होती हैं। इस आधार पर यह जानने का प्रयत्न किया गया है कि उद्भिजों के विकाश के क्या सिद्धान्त हैं। सन् १६२६ ई० में ग्लॉबर (Glauber) ने यह सुझाया कि शोरे (नाइट्रेट आफ पोटाश) का होना ही वनस्पति की बाढ़ के

लिये आवश्यक है। सन् १६२६ और सन् १६४४ ई० में बेकन और हल्मो (Bacon और Helmont) ने बताया कि केवल पानी ही वनस्पति की बाढ़ के लिये आवश्यक हैं, मगर सब से सही और शुद्ध काम सन् १६६६ में करके दिखलाया, जिसमें कि उन्होंने स्पीयरमिन्ट (Spearmint) नामक पौधा भिन्न भिन्न स्रोतों से पानी इकट्ठा कर के उगाया। उससे उसने यह नतीजा निकाला कि पानी नहीं, मगर उस पानी में घुले हुए खनिज पदार्थों के कारण ही पौधों की बाढ़ होती है। इसके बाद १७५७ ई० में फ्रान्सिस होम (Francis Home) ने पौधों का विश्लेषण करके यह बताया कि उनमें हवा, पानी और भांति भांति के खनिज पदार्थादि रहते हैं। होम का यह काम बड़े महत्व का है क्योंकि इन्होंने सब से पहिले पॉटकल्चर और प्लांट एनालिसिस की टेक्नीक सब से पहिले एग्रीकल्चरल साइंस में शुरू की। फिर सन् १८०४ में थ्योडोर डिसौसरे (Theodore de Saussare) ने रासायनिक विश्लेषण से यह बताया कि पौधे कार्बन और आक्सिजन हवा से लेते हैं और नाइट्रोजन तथा अन्य खनिज पदार्थ भूमि से। ३० वर्ष तक इस पर कोई ध्यान नहीं दिया गया मगर १८३४ में बसिंगाल्ट (Boussingault) ने फील्ड एक्सपेरिमेन्टों से सास्पोर और होम के नतीजों को पुष्ट किया। यह एक महत्वपूर्ण काम जिसमें कि सबसे पहिले पहल कृषि विज्ञान में फील्ड एक्सपेरिमेन्टों की नींव डाली। इन्होंने मिट्टी, पौधा और खाद का विश्लेषण करके यह बता दिया कि पौधों में कार्बन, आक्सिजन और हाइड्रोजन की ही अधिकता रहती है और यह विशेषकर हवा और पानी से लिये जाते हैं और न कि भूमि के वनस्पतिक तत्वों से। पौधों का नाइट्रोजन ज्यादातर मिट्टी और खाद से और खनिज पदार्थ जो कि पौधों के आवश्यक अंग हैं वे केवल मिट्टी और खाद से ही प्राप्त होते हैं।

इस खोज की सब से बड़ी महत्वपूर्ण बात लीबिग के ध्यान में आई और उसके अनुसार उसने यह बताया कि खेती की उत्पत्ति भूमि में खनिज पदार्थ डालने से काफी बढ़ सकती हैं। इस आधार पर उसने एल्कली (क्षार) का मिश्रण तैयार करके प्रचारित किया मगर इस फार्टिलाइजर मिक्श्चर से खेती की कोई वृद्धि नहीं हुई और लीबिग का खनिज मिश्रण समतल न हुआ उसका कारण अब ज्ञात होता है कि उन दिनों में लीबिग को यह पता नहीं था कि पोटैसियम और फ्रांस्फेटों के विलय क्षार मिट्टी में डालने के साथ ही प्रवक्षिप्त हो जाते हैं, और दूसरा कारण लीबिग के मिश्रण में नाइट्रोजन का क्षार नहीं था, इसका कारण यह था कि लीबिग यह समझता था कि पौधे नाइट्रोजन हवा से लेते हैं।

सन् १८४१ के करीब लाज़ने, जिसने कि रोथैम्स्टेड प्रायोगिक क्षेत्र बनाया, कुछ प्रयोग हड्डियों के फास्फोरस पर इंग्लैन्ड में काम कर रहा था। हड्डियों का फास्फोरस कहीं कहीं फसल की वृद्धि करता था लेकिन रोथैम्स्टेड के खेतों में नहीं। इस समस्या को सुलझाने के लिये उसने गन्धकाम्ल का प्रयोग किया जिससे कि हड्डियों का अविलेय फासफोरस विलेय हो गया, जिसको कि 'सुपर फासफेट आफ लाइम' कहा जाने लगा। इस सुपर फासफेट को रोथैम्स्टेड के खेतों पर डालते ही साथ पौधों की वृद्धि होने लगी। हड्डी काफी मंहगी होने के कारण लाज ने हड्डियों के स्थान पर खनिज फासफेटों का प्रयोग किया और उनसे भी वही परिणाम मिला। इसी समय इंगलैन्ड में खनिज फासफेट काफी तदाद में निकल रहा था और भूगर्भशास्त्रियों की समझ में नहीं आता था कि उसका क्या उपयोग किया जाय? मगर लाज़ ने अपनी शोधों का महत्व बढ़ाने के लिए सारे खनिज फासफेट को खरीदा और डेप्टफोर्ड में सन् १८४२ में सुपर फासफेट बनाने का एक बड़ा कारखाना खोल दिया। जो खाद और सुपर फासफेट यहां बनने लगे उनको "आर्टीफीशियल फर्टिलाइजर" नाम रख कर खेती की वृद्धि के लिए प्रचारित किया।

खेती के लिये लगभग १२ तत्व आवश्यक हैं किन्तु उनमें तीन प्रमुख हैं जो कि पौधे जमीन से ज्यादा तादाद में खींचते हैं। वे नाइट्रोजन, फासफोरस और पोटाश हैं। मगर इन तीनों में सबसे अधिक महत्व का नाइट्रोजन है।

यह तो सच है कि सभी जोती हुई जमीनों में नाइट्रोजन तो कम रहता ही है, फासफोरस और पोटास भी कभी-कभी कम रहते हैं।

लाज़ अपने प्रयोगों में अमोनियम साल्टज् का प्रयोग किया करता था, किन्तु कई साल बाद तक सल्फेट आफ अमोनिया के उद्योग की नींव तक नहीं पड़ी। लाज के अमोनियम सल्फेट के प्रयोगों के ऊपर लीबिग मजाक उड़ाता रहा और उसने यहां तक हंसी उड़ाई और कहा कि अगर अमोनियम सल्फेट डालने से उपज बढ़ सकती तब तो फिर हमको कृषि में किसी प्रकार की उन्नति करने की आशा छोड़ देनी होगी। मगर लाज ने इस प्रकार की आलोचना से न डरते हुए दृढ़ता से बता दिया कि खेती की उपज नाइट्रोजन खनिजों के देने से ही काफी तादाद में बढ़ सकती है। मगर जिस मात्रा में अमोनियम सल्फेट देना उचित समझा गया था उस हिसाब से यह मात्रा यदि चालू रही तो चिलियन नाइट्रेट का उपयोग होने पर भी किसी न किसी समय यह प्राकृतिक भंडार भी समाप्त हो जायगा। सन् १८९३ ई० में यह बात सर विलियम कुक्स को जँची और उसने 'रायल इन्स्टीट्यूशन' के सामने भाषण देते हुए इस समस्या को हल करने के लिये प्रश्न उपस्थित किया। साथ ही साथ उसने इस संकट में से निकलने के लिये एक सुझाव भी रखा, और वह सुझाव यह था कि लार्ड कैवेन्डिश की प्रयोगशाला का एक साधारण सा प्रयोग जो कि सन् १७८३ में किया गया था, बड़ी मात्रा में करने की कोशिश की जाय। इस प्रयोग में जब किसी बंद बर्तन की हवा में जब विद्युन्मोच किया जाता है तो नाइट्रोजन और आक्सिजन मिल कर नाइट्रिक आक्साइड बनाते हैं। फिर विद्युत चाप लगा कर नाइट्रेट व्यवसायिक पैमाने पर बनाया जा सकता है। इसी आधार पर 'बर्कलैन्ड और आइड प्रक्रिया' चली मगर बिजली का काफी खर्चा होने के कारण यह सफल न हो सकी।

नार्वेजियन और स्वीडिश लोगों ने इसी आधार पर कैल्शियम साइनेमाइड का संश्लेषण किया, मगर विद्युत का अधिक खर्च होने के कारण यह विधि भी विशेष रूप से सफल न हो सकी। प्रथम विश्वयुद्ध के समय जब कि अमेरिका और ब्रिटेन ने जर्मनी को नाईट्रेट भेजना बन्द कर दिया, उस समय हेबर ने नाइट्रोजन और हाइड्रोजन को साधारण उच्च दाब और तापक्रम पर मिश्रित करके अमोनिया बनाया। उस लड़ाई के बाद हेबर की विधि को इंगलैन्ड में सुधारा गया और 'सिन्थेटिक अमोनिया' से 'सल्फेट आफ अमोनिया' कुछ सस्ते रूप में पैदा किया जाने लगा। इसी आधार पर भारत वर्ष में भी अब सल्फेट आफ अमोनिया, सिंद्री और दूसरी फैक्टरियों में बन रहा है। लार्ड केबेन्डिश की प्रयोग शाला के साधारण से प्रयोग के आधार पर जो कि लगभग १५० वर्ष पहिले किया गया था, हम लोग आज भी जीवित हैं। वायु का नाइट्रोजन, जो कि वैसे बिल्कुल निष्क्रिय रहता है, केबेन्डिश के एक मामूली से प्रयोग के कारण जगत की सेवा कर रहा है। इससे यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि विज्ञान निरंतर उन्नतिशील है और कितने ही मामूली से मामूली प्रयोग यदि ईमानदारी और ठीक तरह से प्रतिपादित किये गये हों तो उनका उपयोग दुनिया की सुख समृद्धि के लिये किया जा सकता है।

कुछ महत्वपूर्ण आँकड़े

भारत का भौगोलिक क्षेत्र फल —८०.९३ करोड़ एकड़

कृषि का कुल क्षेत्र फल —३९.३३ करोड़ एकड़

खाद का उत्पादनः—

सिन्द्री (१९५५-५६) = ६६०००टन नाइट्रोजन

≡३३३७०५ टन सल्फेट आफ अमोनिया

(१९६०-६१) का लक्ष्य ≡ १.१७ लाख टन नाइट्रोजन

≡५.८५ लाख टन सल्फेट आफ अमोनिया

कुल नाइट्रोजन के फर्टिलाइजर्स (स्थिर नाइट्रोजन के रूप में)

(१९५५-५६) ≡ ७७००० टन नाइट्रोजन

≡३५३५०००टन सल्फेट आफ अमोनिया

लक्ष्य (१९६०-६१) = २९०००० टन नाइट्रोजन

≡१४५०००० टन सल्फेट आफ अमोनिया

फासफेटिक फर्टिलाइजर,

(१९५५-५६) ≡ २०००० टन

लक्ष्य (१९६०-६१) ≡ १[illegible]०००० टन

विज्ञान से मानवता का उन्नयन

प्रो० मानिक लाल सांकल चन्द ठैकर, डाइरेक्टर जनरल,
वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसन्धान परिषद

यह विषय इतना बड़ा है कि इस पर अनेक ग्रन्थ लिखे जा सकते हैं। विज्ञान अल्लादीन का चिराग है, जिससे मनुष्य ने तरह तरह के करिश्में कर दिखाये हैं। विज्ञान के हरेक आविष्कार का कारण मनुष्य की सुख सुविधा की खोज है।

आज का युग मूलतः विज्ञान और कारीगरी टेकनोलाजी का है। रसोई घर से लेकर संसद भवन तक सर्वत्र विज्ञान के आविष्कारों से काम लिया जाता है। विज्ञान ने मनुष्य को असीम शक्ति और सामर्थ्य दी है। विज्ञान ही के बल पर मनुष्य पृथ्वी के गर्भ से अनमोल खनिज निकाल सका है। इसी की सहायता से वह क्षण भर में संसार के किसी भी कोने में अपना संदेश भेज सकता है और ध्वनि से भी तेज गति से हवा में उड़ सकता है। पृथ्वी तल के प्राकृतिक रहस्यों को उदघाटित करके ही मनुष्य को सन्तोष नहीं हुआ और अब वह अनन्त आकाश में चन्द्रमा और अन्य ग्रहों की यात्रा पर निकल पड़ा है।

मनुष्य की ये अदभुत सफलताएं विज्ञान के एक ही पहलू को दिखाती हैं। वास्तव में ज्ञान का कोई भी क्षेत्र विज्ञान से अछूता नहीं रहा। दर्शन, धर्म और संस्कृति सभी वैज्ञानिक चिन्तन से गहरी तरह प्रभावित हैं। विज्ञान का अर्थ केवल मशीन और कल-पुर्जों का निर्माण भर ही नहीं है और न यह केवल सदियों का संचित ज्ञान भन्डार ही है।

वास्तव में विज्ञान मस्तिष्क की एक विशेष प्रवृति है। यह नई नई खोज करने, नये तरीकों और नये पदार्थों को आजमाने, अन्धविश्वासों और निरर्थक रूढ़ियों को त्यागने और प्रमाण की कसौटी पर कसे तथ्यों को ही ग्रहण करने की प्रेरणा है।

इसी वैज्ञानिक प्रेरणा ने मनुष्य को हर क्षेत्र में आगे बढ़ाया है। इसी ने मनुष्य को ब्रह्मांड और जीव सृष्टि के रहस्यों की खोज में लगाया है। इसी से उसने पृथ्वी के वनस्पति और पशु जगत और पदार्थ तथा शक्ति के विविध रूपों का ज्ञान कराया है और इसी से उसे रोगों से लड़ने और स्वास्थय सुधारने, उद्योग धन्धे बढ़ाने और सामाजिक समस्याओं को सुलझाने में सहायता मिली है।

यंत्र और कारीगरी में नित्य ऐसे आविष्कार हो रहे हैं और कल कारखानों में सामान बनाने के तरीके इतनी तेजी से बदल रहे हैं कि आज का तरीका कल पुराना पड़ जाता है। उद्योगों के लिए नई नई खोजों के साथ कदम मिलाकर चलना कठिन हो गया है। बढ़ती हुई आबादी और रहन सहन के ऊंचे होते जाने के कारण चीजों की माँग भी बढ़ती जा रही है।

औद्योगिक क्षेत्र में छोटे कारखाने बढ़कर बड़ों से टक्कर ले रहे हैं और बड़े अपनी ताकत रखने की कोशिश कर रहे हैं, जिसमें दोनों के उत्पादन में वृद्धि हुई है। साथ ही कुछ ऐसे धन्धे भी शुरू हो गये हैं जो पहले नहीं थे। इस सब से कच्चे माल और बिजली की खपत बेहद बढ़ गयी है और प्राकृतिक साधनों का भंडार तेजी से घटता जा रहा है। खाद्य, ईधंन, पानी, खनिज आदि साधनों की इस कमी को केवल विज्ञान की सहायता से ही पूरी की जा सकती है।

बढ़ती हुई जनसंख्या को खाना देने के लिए अधिक अनाज पैदा करना जरूरी है। इसके लिए अच्छे बीज,

अधिक खाद, खेती के नये तरीके, हानिकारक कीड़ों को मारना और पौधों और पशुओं को रोग से बचाना आवश्यक है। उगते समय फसल की सिंचाई और खेती का माल बाजार में ले जाने को अच्छी सड़कें और बिक्री की सुविधा भी जरूरी है।

सभ्यता के प्रारम्भ से उत्तरोत्तर मनुष्य भूमि और पानी का अधिकाधिक उपयोग करता आया है। फलस्वरूप खेती और बस्ती के लिए बहुत से जंगल काट डाले गए, हरियाली नष्ट होने के कारण जमीन सूखी होती जा रही हैं और उसकी उपजाऊ तह उड़ती और कटती जा रही है।

वास्तव में बहुत से इलाके तो हमारी गलतियों की वजह से ही सूख गए हैं और सूखते जा रहे हैं। हमें पेड़ों और हरियाली की रक्षा करनी चाहिए और जहाँ सम्भव हो वहां दलदल सुखाना और समुद्र से भी जमीन निकालना चाहिये। हमें इसका ध्यान रखना है कि जमीन की पैदावार बराबर बढ़ाने के साथ उसे उसकी उर्वरता को भी कम नहीं होने देना है।

पानी इकट्ठा करने और उससे सिंचाई करने के लिए हमने विशाल बाँध और बड़ी-बड़ी नहरें बनाई हैं। लेकिन इसके साथ कुछ नई समस्याएं भी उत्पन्न हो गई हैं, जैसे जलाशयों में रेत जमना और भूमि में खारापन पैदा होना। इन्हें भी सुलझाना है। जिन इलाकों में पानी काफी नहीं मिलता वहां नलकूप बनाए गए हैं और मल तथा कारखानों के गन्दे पानी को साफ करके तथा बिजली की क्रिया से समुद्र के पानी का खारापन हटा कर उससे सिंचाई की गई है।

फोटोसिनथेसिस अर्थात् सूर्य रश्मियों और प्रकाश से पेड़-पौधों के पोषण ग्रहण करने की प्राकृतिक क्रिया से भी उपज बढ़ाई जा सकती है। इसी तरह पौधों के संकरण से अधिक फसल देने वाले अच्छी जाति के पौधे भी तैयार किये जा सकते हैं। दूध, मांस, मछली आदि भी बहुत अधिक बढ़ाए जा सकते हैं।

खाद्य की तरह शक्ति अर्थात् ईंधन, तेल, बिजली आदि भी आदमी की बड़ी जरूरत है। अभी तक बिजली उत्पादन के लिए अधिकतर कोयले और तेल को ही काम में लाया जाता था। पर इस गति से कोयला और तेल का भंडार अधिक समय नहीं चल सकेगा। अतः यह आवश्यक हो गया है कि अणु-शक्ति और सूर्य की किरणों से बिजली बनाई जाय। अणु-शक्ति से तो बिजली अब बनने भी लगी है पर सूर्य किरणों को बिजली में परिवर्तित करना कठिन है। हाल ही की कुछ खोजों से यही आशा हुई है कि इसमें भी सफलता दूर नहीं।

खनिज पदार्थों की बेहद मांग भी चिन्ता का विषय है। इन खनिजों का भंडार भी असीम नहीं है। इधर घटिया किस्म के खनिजों को शुद्ध कर काम में लाया जा रहा है। धातुओं को जंग लगने और छीजने से बचाने के जो तरीके काम में लाए गए हैं, उनसे इनकी काफी बचत हुई है। आशा है कि निकट भविष्य में ही समुद्र में से भी धातुएं निकाली जाने लगेंगी।

अब धातुओं की जगह बहुत सी चीजों में प्लास्टिक भी काम में आने लगा है।

रोगों के कारणों को खोजने और इनकी चिकित्सा में भी विज्ञान ने मनुष्य की बड़ी सेवा की है। बहुत सी छुतही और अन्य बीमारियां प्रायः मिटा दी गयी हैं। रोगों की रोक थाम में भी विज्ञान ने बहुत कामयाबी पाई है।

इससे केवल मनुष्य की आयु ही नहीं बढ़ी है, बल्कि स्वास्थ्य भी अच्छा हुआ है। मल-मूत्र को बहाने और सफाई की व्यवस्था से भी बहुत सी महामारियों की रोक-थाम हुई है।

हिसाब-किताब और गणित के कठिन समीकरणों को हल करने की भी मशीनें बनाई गयी हैं। अब कारखानों में स्वचालित यन्त्रों का प्रयोग भी बढ़ रहा है। इससे मनुष्य की बहुत मेहनत बची है।

विज्ञान ने मनुष्य की बहुत सी समस्याओं को ही हल नहीं किया बल्कि उसकी रहन-सहन भी ऊँची की है। अणु-शक्ति, राकेट, रडार, कृत्रिम वर्षा आदि के आविष्कार चमत्कारपूर्ण हैं। पर खेद है कि जिस के

द्वारा यह सब कुछ हो सका है; मनुष्य ने विनाश के लिए भी उसका दुरुपयोग शुरू कर दिया है।

अणु-शक्ति से ऐसे बम बनाये गये हैं, जिनके प्रयोग से मानव सभ्यता समाप्त हो सकती है। कीड़ों को मारने की दवाओं के अन्धाधुन्ध प्रयोग से लाभ से अधिक हानि का खतरा है। रोगों के कीटाणु सम्बन्धी खोजों का दुरुपयोग कीटाणु-युद्ध के रूप में हो सकता है।

इससे यह स्पष्ट है यदि विज्ञान को मनुष्य की भलाई में लगाना है, तो उसके विचारों को बदलना होगा। क्या विज्ञान यह कर सकेगा? हां, मुझे पूरा विश्वास है कि विज्ञान से ऐसा वातावरण पैदा होगा; जिसमें विज्ञान का प्रयोग विनाश के लिए नहीं मनुष्य के कल्याण के लिए होगा।

सामाजिक विकास में भी विज्ञान ने बड़ा योग दिया है। विज्ञान ने उन अन्धविश्वासों और रूढ़ियों को हटाने में बड़ी सहायता दी, जिसके कारण सांप्रदायिक झगड़े होते हैं। वैज्ञानिकों ने केवल ज्ञान का ही भन्डार नहीं बढ़ाया, बल्कि तथ्यों के विवेचन की नई दृष्टि भी दी है। उन्होंने यह साबित कर दिया है कि सत्य की खोज, जो विज्ञान का चरम-लक्ष्य है, वैज्ञानिक तरीके से ही सम्भव है और यह सबको सुलभ भी है।

मेरी राय में इस युग की वैज्ञानिक सफलतायें महान हैं और इनसे मनुष्य की बहुत भलाई होगी। संसार के बहुत से विवेचक और विद्वान वैज्ञानिक कार्य में एक-दूसरे से सहयोग कर रहे हैं और ज्ञान की खोज में लगे हैं। उनके परिश्रम से मनुष्य की सुख और समृद्धि का मार्ग प्रशस्त होगा।

भारतीय छात्र अन्तरिक्ष सम्बन्धी रहस्यों का पता लगाने में सहायता दे रहे हैं

आयोवा के स्टेट विश्वविद्यालय में तीन एशियाई छात्रों के प्रयत्नस्वरूप अन्तरिक्ष के कुछ रहस्यों का पता लगाया जा रहा है। इन छात्रों में २ भारतीय और एक चीनी छात्र सम्मिलित हैं।

गत सितम्बर से, हैदराबाद के श्री चन्द चेलानी, मुजफ्फरनगर के रतन पिपलानी और हांकों (चीन) के यु आन रेहो वांग विश्वविद्यालय के आंकड़ा सम्बन्धी केन्द्र में कार्य कर रहे हैं। यह केन्द्र अमेरिकी भू-उपग्रह एक्सप्लोरर तथा चन्द्रमा के सम्बन्ध में खोजबीन करने के लिए छोड़े गये राकेटों से प्राप्त होने वाले आंकड़ों का संग्रह करने, संकेतों को शब्दों में परिवर्तन करने और संग्रहीत तथ्यों का विश्लेषण करने वाले अन्तर्राष्ट्रीय केन्द्र के रूप में कार्य कर रहा है।

प्रतिदिन तीनों स्नातक छात्र संकेत प्राप्त करने वाले जटिल यन्त्रों की सहायता से अन्तरिक्ष के रहस्यों की प्रत्यक्ष जानकारी प्राप्त करते हैं।

श्री चेलानी का मुख्य कार्य उस यन्त्र का संचालन करना है, जो ५ भू-उपग्रहों से प्राप्त होने वाले संकेतों को छांटता है और प्रत्येक ग्राफ कागज पर प्रत्येक संकेत की रेखा अंकित करता है। इस के अलावा श्री चेलानी को इन ग्राफों पर वह भी लिखना पड़ता है कि संकेत ग्रहण करने वाले केन्द्र पर से भू-उपग्रह किस समय और किस तारीख को गुजरा है। श्री चेलानी ने गत जून में आयोवा विश्वविद्यालय से बी० एस० की उपाधि प्राप्त की है।

सूचना अंकित करने के बाद ग्राफ पेपरों को पिपलानी के पास भेज दिया जाता है। वे उन ग्राफ पेपरों का अध्ययन करते हैं।

श्री पिपलानी ने आगरा विश्वविद्यालय से भौतिक विज्ञान तथा गणित-शास्त्र में स्नातक की उपाधि प्राप्त की है। उन के विचार में इन संकेत सूचक फीतों का अध्ययन करना कठिन भी है और दिलचस्प भी।

उक्त विश्वविद्यालय द्वारा अनेक महत्वपूर्ण जानकारियां उपलब्ध की जा चुकी हैं। इन में से एक अत्यन्त महत्वपूर्ण खोज वह विकिरण पट्टी है जो पृथ्वी के चारों ओर फैली हुई है।

जनसंख्या वृद्धि को रोकना नितांत आवश्यक

सर जूलियन हक्सले

जनसंख्या को वृद्धि को रोकना भारत के लिए ही नहीं, सारी दुनिया के लिए बहुत जरूरी है। मैं जो कुछ कहूँगा वह वास्तव में एक जीवशास्त्री के ही विचार होंगे, फिर भी मैं जनसंख्या वृद्धि को आज की अत्यन्त महत्वपूर्ण समस्या मानता हूँ।

यों तो संसार की आबादी आदिकाल से बढ़ती चली आ रही है, किन्तु इधर ५० सालों में यह क्रम बहुत तेज हो गया है। इस समय संसार की आबादी २॥ अरब से ऊपर है। पिछले साल विश्व की आबादी ४ करोड़ ७० लाख बढ़ी थी और इस साल यह वृद्धि कम से कम ५ करोड़ होगी। दुनिया के कम उन्नत हिस्सों में आबादी सबसे तेजी से बढ़ रही है। दो पीढ़ियों में और हम में से बहुतों के जीवन-काल में ही संसार की जनसंख्या ५ अरब से अधिक हो जायगी।

आज जनसख्या बढ़ने का सबसे बड़ा कारण है, मृत्यु पर हमारा नियंत्रण। पहले असंख्य लोग बचपन में ही या बड़े होकर किसी न किसी रोग से कालकवलित होते थे। अब बीमारियों पर तो विज्ञान ने विजय प्राप्त कर ली है, किन्तु जन्म-संख्या पर नहीं। इस प्रकार ऐसी स्थिति आ गयी है कि लोग मरते कम हैं और पैदा अधिक होते हैं।

देखना यह है कि विज्ञान इस वृद्धि को रोक सकता है या नहीं। पहली बात तो यह समझ लेनी चाहिए कि जनसंख्या वृद्धि की समस्या को विज्ञान की सहायता से अधिक अन्न पैदा करके हल नहीं किया जा सकता। कुछ लोग कृत्रिम भोजन तैयार करने या मारूस्थलों और जंगलों में फसलें उगाने का सुझाव दे सकते हैं। किन्तु न तो कृत्रिम भोजन इतनी शीघ्र निकाला जा सकता है, जितनी तेजी से आबादी बढ़ रही है और न जनसंख्या के साथ-साथ इसका उत्पादन बढ़ाया जा सकता है। असल में, आज आदमी की उत्पादन क्षमता और उपभोग क्षमता में होड़ हो रही है।

पृथ्वी के साधन

मनुष्य को अपनी परिस्थिति से भी समन्वय रखना जरूरी है, यानी उसे पृथ्वी के साधनों को संभाल कर रखना चाहिये। पृथ्वी के साधन हैं, मिट्टी, जंगल, खनिज पदार्थ, पानी, वनस्पति और पशु पक्षी इत्यादि। ये साधन ऐसे हैं, जिनका मनुष्य उपयोग करता है और प्राकृतिक सौंदर्य, जंगली पशु-पक्षी, एकांत और निर्जनता आदि का वह देखकर आनन्द लेता है। यदि हम मनुष्म के जीवन को सुखी बनाना चाहते हैं तो ये सब चीजें रहनी चाहिए। इसी प्रकार मनुष्य को अपने सामाजिक वातावरण को भी खराब या नष्ट नहीं करना चाहिए। आप स्वयं अनुभव करते होंगे कि जब आबादी एक निश्चित अनुपात से अधिक बढ़ जाती है, तो हर व्यक्ति को असुविधा होती है। सबकी आजादी कम हो जाती है। ५० लाख या १ करोड़ से भी अधिक आबादी वाले नगरों में, जो कि आधुनिक युग की देन हैं, यही देखने में आता है। यही बात अधिक आबादी बढ़ने पर सारी दुनियां में होगी।

स्वतन्त्रता में बाधा

यदि आबादी बहुत अधिक और घनी होगी तो इसका परिणाम अत्यधिक बन्धन और पाबन्दियां होंगी, जिससे मनुष्य की स्वतन्त्रता और लोकतन्त्र का हनन होगा। सारी दुनिया पर इसका परिणाम यह होगा कि इस भूमण्डल की जातियों और संस्कृतियों की विविधता की जो छटा आज देखने को मिलती है, वह नष्ट हो जायगी और सर्वत्र नीरस समानता और यन्त्रवत जोवन का बोल बाला हो जायगा। अन्त में मनुष्यता के गुणों का भी ह्रास होगा। इस प्रकार मैं कह सकता हूँ कि यदि जन-

संख्या बे रोक टोक बढ़ती रही तो आगामी पीढ़ियों को दुख-दारिद्र और निराशा का ही जीवन बिताना पड़ेगा। हमारे पोते-पोतियों को इस संसार में हम से भी अधिक यातनायें और मुसीबतें उठानी पड़ेगी।

विज्ञान क्या कर सकता है

यह ठीक है कि विज्ञान कुछ कठिनाइयों को दूर कर सकता है। इसकी सहायता से खाने-पीने की चीजें अधिक पैदा की जा सकती हैं या बनायी जा सकती हैं। यदि खर्च की समस्या बाधक न बने, तो समुद्र के खारे पानी से पीने का पानी बनाया जा सकता है, मरुस्थलों को शस्यश्यामला भूमि में परिणत किया जा सकता है और बेकार जङ्गलों को काट कर वहां फसलें उगाई जा सकती हैं। इसी प्रकार विज्ञान से वितरण की भी अच्छी व्यवस्था हो सकती है। किन्तु ये सब उपाय तात्कालिक और अस्थायी हैं। इनसे मूल समस्या का समाधान नहीं हो सकता और आबादी साधनों से आगे निकल जायगी। इसका एक ही इलाज है कि मृत्यु पर नियन्त्रण की तरह जन्म यानी बच्चे पैदा करने पर भी नियन्त्रण हो। यह उत्साहजनक बात है कि जापान और भारत जैसे बड़े-बड़े देशों में आबादी की वृद्धि रोकने के लिये सरकार भी प्रयत्नशील हैं। किन्तु इन देशों में भी अभी आशाजनक परिणाम नहीं निकले हैं और अभी बहुत कुछ किया जा सकता है और किया जाना भी चाहिये।

संतति निरोध के तरीके

विज्ञान इस बारे में हमारे बहुत काम आ सकता है। कोई ऐसी दवा या गोली निकाली जा सकती है, जिसके खाने से गर्भ धारण रुक सके। इस बारे में आज कल काफी अनुसन्धान किये जा रहे हैं, किन्तु यह काम अधिकांश गैर-सरकारी संस्थायें कर रही हैं, इस कारण यह बहुत धीरे चल रहा है। आज हमें प्रजनन के बारे में पहल से कहीं अधिक ज्ञान है और हम यह भी जानने लगे हैं कि प्रकृति के काम में हम कैसे बाधा डाल सकते हैं। किन्तु ये सब प्रयत्न अपर्याप्त हैं। अणुबम बनाने की खोज में जितना धन और बुद्धि लगी है, उसका यदि १० प्रतिशत क्या १ प्रतिशत भी मनुष्य के प्रजनन सम्बन्धी अनुसंधान और इसको रोकने के उपाय निकालने में खर्च किया जाय, तो दस वर्ष के भीतर ही हमें सफलता मिल सकती है। ऐसे पदार्थ की खोज भी अस्थायी हल होगा। इसके बाद हमें सरकारों को इस बात के लिये मनाना होगा कि वे लोगों को ये गोलियां खाने को तैयार करें।

मनुष्य और उसकी सामाजिक तथा प्राकृतिक परिस्थिति में समन्वय लाये बिना इस भीषण समस्या का कोई भी स्थायी हल नहीं हो सकता। जिस तरह से हम अन्य समस्याओं का हल निकालने के लिये अनेकों प्रकार के संगठन, संस्थायें आदि खड़ी करते हैं और बहुत से वैज्ञानिकों को काम में जुटाते हैं, उसी तरह हमें आबादी के बारे में भी अनुसंधान की संगठिक व्यवस्था करनी चाहिये और अनुसन्धान के परिणामों को अमल में लाना चाहिये।

जनसंख्या मन्त्रालय

इस समय जनसंख्या सम्बन्धी कार्य स्वास्थय मंत्रालय को दिया हुआ है। इस काम को और अधिक महत्व क्यों न दिया जाय। क्यों न इसके लिये एक अलग मन्त्रालय बनाया जाय। इतना ही नहीं, जनसंख्या आज की मूल समस्या है और इस पर अविलम्ब किसी एक देश नहीं, संयुक्त राष्ट्र सङ्घ को ध्यान देने की जरूरत है। स० रा० सङ्घ की आबादी की वृद्धि को रोकने के लिये देशव्यापी नीति बनानी चाहिये। तथा कथित पिछले देशों को तो इस समस्या की ओर, और भी अधिक ध्यान देने और इसके लिये अधिक धन खर्च करने की जरूरत है। आबादी सम्बन्धी अनुसंधान करने, जनता को इस समस्या के बारे में समझाने, गर्भ निरोध उपकरण मुफ्त बांटने और देश वासियों को कम सन्तान पैदा करने के फायदे समझाने आदि के बारे में धन खर्च होना चाहिये।

आज बहुत से देशों में जन-साधारण का जीवन अधिक सुखी और सम्पन्न बनाने के व्यापक प्रयत्न किये जा रहे हैं, किन्तु जितने साधन वहां जुटाये जाते हैं,

उससे कहीं अधिक उनका उपभोग करने वाले पैदा हो जाते हैं। आप अन्न की पैदावार बढ़ाते हैं, पर खाने वाले कहीं अधिक पैदा हो जाते हैं। आप स्कूल खोलते हैं, पर पढ़ने वाले इतने पैदा हो जाते हैं कि ये भी अपर्याप्त हो जाते हैं और इस तरह अन्न और शिक्षा की समस्या ज्यों की त्यों बनी रहती है। यदि आप आबादी की वृद्धि को कम कर सकें, तो निःसंदेह आप खेती बाड़ी और स्कूलों पर अधिक धन खर्च कर सकेंगे।

मैं इस सारी स्थिति से निराश नहीं होना चाहता। किन्तु यह अवश्य चाहता हूँ कि सब देश इस समस्या की ओर पूरी तरह ध्यान दें। विज्ञान से जादू का सा चमत्कार तो नहीं हो सकता, फिर भी इसका बहुत उपयोग है और इसका अधिकाधिक उपयोग होना चाहिये।

(आकाशवाणी के सौजन्य से)

क्या आप जानते हैं ?

१
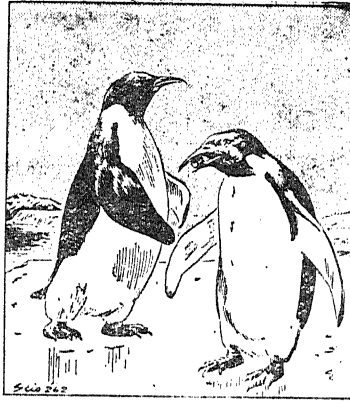
२

३

१— समय के लेखा जोखा से पहले से ही टूटे तारे पृथ्वी से टकराते रहे हैं। प्रतिदिन सैकड़ों टूटे तारे वायुमंडल को विच्छिन्न करते हैं परन्तु इनमें से केवल पाँच या छः ही इतने बड़े होते हैं कि वह पृथ्वी पर आ गिरें। पृथ्वी के वायुमंडल में इनका प्रवेश कभी कभी दिखलाई पड़ता है और अब तक केवल १७०० ही सच्चे मीटियोराइट सिद्ध हुए हैं।

२—पैन्गुइन में नर व मादा एक दूसरे से इतने मिलते जुलते हैं कि स्वयं चिड़ियों को एक दूसरे को पहचानना मुश्किल हो जाता है। प्रणय के समय नर अपनी "प्रेयसी" के सामने एक कंकड़ भेंट स्वरूप पेश करता है। यदि वह मादा नहीं होती तो उस कंकड़ की ओर ध्यान तक नहीं देती। अपनी भूल को जान कर नर कंकड़ दूसरे के सामने पेश करता है।

३— वैज्ञानिकों की पुकार—संसार में न्यूक्लियर टेस्ट बन्द हो। जब सारे संसार के वैज्ञानिक यही चाहते हैं तो न्यूक्लियर टेस्ट बन्द क्यों नहीं होता।

विश्व के महान दार्शनिक वैज्ञानिक एल्बर्ट आइन्स्टाइन

अप्रैल १९५५ की १७ तारीख को, प्रिन्स्टन (न्यू-जर्सी) के अस्पताल में अपनी चारपाई पर लेटे हुए डा० एल्बर्ट आइन्स्टाइन बसन्त की ताजी बयार का आस्वादन कर रहे थे, जो खिड़कियों में से हो कर आ रही थी। दिन के बीतने पर जैसे ही रात्रि का आगमन हुआ, वे महान विचारक एवं वैज्ञानिक गहरी निद्रा में डूब गये। अर्द्धरात्रि के नक्षत्रों ने एक नये दिन के उदय को देखा। अपनी मुर्छावास्था में भी वे शायद इसी कल्पना में लीन थे कि मेरा यह नश्वर शरीर भी अब ब्रह्माड के उन्हीं तत्वों में मिल जाएगा, जिनके रहस्यों का उद्घाटन करने के लिए मैं जीवन पर्यन्त साधना करता रहा हूँ। उन की बेहोशी बढ़ती ही चली गई और अन्त में वे इस नश्वर शरीर को छोड़कर शान्ति पूर्वक इस संसार से चल बसे।

सूर्योदय होते ही सारे विश्व में शोक के बादल छा गये। मानव जाति का एक महान हित चिन्तक संसार से उठ गया था।

डा० आइन्स्टाइन ने कठोर एवं सतत परिश्रम द्वारा अनुसन्धान कर के वैज्ञानिक क्षेत्र में जो अपूर्व सफलताएं प्राप्त की थीं, वे उन से मानव जाति को लाभान्वित करने के लिए सदैव उत्सुक रहते थे। उन्होंने जीवन के अत्यन्त जटिल रहस्यों की खोज की और उन्हें समीकरणों के रूप में समस्त संसार के समक्ष प्रस्तुत किया।

जिन लोगों का उन से बहुत ही कम परिचय था, उनकी दृष्टि में भी आइन्स्टाइन एक साधु तथा सज्जन व्यक्ति थे। यद्यपि उन के हृदय में मानव जाति के लिए अगाध प्रेम था तो भी उनके जीवन का प्रत्येक क्षण उन्हें संसार से दूर करता गया। जैसा कि उन्होंने स्वयं एक बार कहा था "मेरी सदैव यह प्रबल इच्छा रही है कि मैं पुरुषों तथा स्त्रियों के सीधे सम्पर्क में आऊं, किन्तु सामाजिक न्याय और सामाजिक उत्तरदायित्व के प्रति मेरा अत्यधिक लगाव सदैव इस इच्छा की पूर्ति में बाधक रहे। देश राज्य, मित्र-मन्डली, और यहां तक कि अपने परिवार से कभी भी मेरे घनिष्ट सम्बन्ध नहीं रहे। इनसब लोगों के साथ मिलते जुलते हुए भी मेरी आत्मा पर सब से अलग रहने की एक अस्पष्ट छाया छायी रहती और ज्यों ज्यों वर्ष बीतते गये, मेरी यह इच्छा और भी बलवती होती चली गई। 'किन्तु अन्ततोगत्वा उनकी यह एकान्त प्रियता ही उन्हें मानवता के अधिक निकट ले आई।

जीवन परिचय

१४ मार्च, १८७९ को जर्मनी में उल्म (वर्टनवर्ग) स्थान पर आइन्स्टाइन का जन्म हुआ था। उन का अधिकांश बाल्यकाल म्युनिक में बीता था। वहां उन के पिता आबाद हो गये थे। १८९४ में उनका परिवार इटली में जाकर बस गया और एल्बर्ट को शिक्षा पाने के लिये स्विटजरलैन्ड भेज दिया गया। छात्रावास में वे अपनी श्रेणी में मेधावी बालक नहीं समझे जाते थे और ज्यूरिख पोलिटैक्निक में उन्होंने दो बार प्रयत्न करके प्रवेशिका की परीक्षा पास की थी। स्नातकीय उपाधि प्राप्त कर लेने के पश्चात उन्होंने कुमारी मिलेवा मैरिक से विवाह कर लिया। स्विटजरलैन्ड की नागरिकता के अधिकार प्राप्त कर लेने के बाद वह स्विस पेटेन्ट कार्यालय में एक परीक्षक के रूप में कार्य करने लगे। यह अपने कार्यालय से लौट कर गणित के प्रश्नों को हल करते रहते थे, यहां तक कि जब वे बर्न की गलियों में बच्चे गाड़ी में अपने छोटे बच्चे को घुमाते थे, तब भी उन के मस्तिष्क में गणित के प्रश्न घूमते रहते थे।

१९०५ में जब आइन्स्टाइन ने अपने ४ वैज्ञानिक लेख प्रकाशित किये, तब उनसे वैज्ञानिक जगत में एक

तहलका मच गया था। उनका यह कार्य विज्ञान के इतिहास में एक बड़ी भारी क्रान्ति थी।

उससे लगभग २०० वर्ष पूर्व सर आइजक न्यूटन ने गति के नियमों के सम्बन्ध में संसार को अपनी खोजों के जो परिणाम दिये थे, वे ब्रह्मांड के सम्बन्ध में वैज्ञानिक दृष्टि से अन्तिम प्रमाण स्वीकार कर लिये गये थे। किन्तु १८८० के बाद नये तथा अधिक संवेदनशील यन्त्रों ने बिल्कुल भिन्न तथ्यों का उद्घाटन प्रारम्भ कर दिया। उन तथ्यों के कारण तत्कालीन वैज्ञानिकों को 'ईथर' नामक एक अन्य वस्तु के अस्तित्व को मानना पड़ा, ताकि न्यूटन के सिद्धान्तों का खन्डन हो जाने के कारण वैज्ञानिक जगत में एक विप्लव न खड़ा हो जाये। किन्तु परीक्षणों द्वारा शीघ्र ही यह सिद्ध कर दिया गया कि 'ईथर' का कोई अस्तित्व नहीं है।

डा० आइन्स्टाइन के लेखों ने न्यूटन की अपूर्ण खोजों और २० वीं सदी के उपयुक्त सन्देहों के मध्य विद्यमान खाई को ही नहीं पाटा है, बल्कि एक संक्षिप्त परन्तु क्रान्तिकारी सिद्धान्त का प्रतिपादन कर मनुष्य के ब्रह्मांड सम्बन्धी ज्ञान में महत्वपूर्ण वृद्धि कर दी। आइन्स्टाइन का यह नया सिद्धान्त सापेक्षवाद के नाम से प्रसिद्ध है। इस सिद्धान्त ने संसार को चकित कर दिया। १९२०-३० में संसार में केवल १२ व्यक्ति ऐसे थे, जो उक्त सिद्धान्त को समझने की क्षमता रखते थे। साधारण शब्दों में उन के इस युग प्रवर्तक सापेक्षवाद के सिद्धान्त का सार यह है कि पदार्थ और शक्ति का कोई अलग अस्तित्व नहीं। ऊपर से जो हमें स्थिर दिखाई देती है, वस्तुतः उसके अन्दर ही अन्दर अदृश्य शक्तियां सक्रिय रहती हैं और उन्हें गति प्रदान कर पदार्थ को शक्ति में परिणत किया जा सकता है।

उनका यही सापेक्षवाद का उक्त सिद्धान्त आगे चल कर अणु का विखन्डन करने तथा नक्षत्रों तथा ग्रहों के सम्बन्ध में विश्वसनीय और प्रामाणिक जानकारी प्राप्त करने में सहायक हुआ।

अपने धीमे किन्तु सतत प्रयत्नों द्वारा डा० आइन्स्टाइन ने समस्त विश्व में अपार ख्याति अर्जित की और सभी ने उनके विचारों एवं निष्कर्षों को मान्यता प्रदान की। विज्ञान जगत् में उन्होंने जो चमत्कार करके दिखाये उनके लिए उनका अनेक प्रकार से सम्मान किया गया। किन्तु उनकी उस वास्तविक सफलता की ओर अक्सर किसी का भी ध्यान नहीं जाता था। यह वह खोज थी, जो उन्होंने अपने सम्बन्ध में की थी। उन्होंने कहा था कि 'मेरे जीवन में कलात्मक कल्पना का महत्व भी कम नहीं है। अन्ततोगत्वा अनुसन्धानकार्य करने वाले वैज्ञानिक के अनुसन्धानकार्य की शुरुआत भी कल्पना द्वारा ही सम्भव होती है, अतएव यह आवश्यक है कि वैज्ञानिक में भी कल्पना शक्ति होनी चाहिए।'

ये अन्न और चारे की फसल बढ़ाते हैं

वे छोटे-छोटे उपयोगी जीवाणु जिनमें धरती उर्वर हो जाती है और फसल अधिक होती है, प्रायः जीवित उर्वरक कहलाते हैं। सोवियत संघ में अभी हाल में अनेक नये जीव-उर्वरक खोज निकाले गये हैं। उदाहरण के लिये फास्फोरी जीवाणु और नाइट्रोजन को विशेष महत्व प्राप्त हुआ है। वे अन्न और चारे की फसलों के लिये तैयार किये गये हैं।

यह निश्चित रूप से सिद्ध हो गया है कि साइबेरिया और कजाखस्तान की सूखी स्तेपियों तक में फास्फोरी जीवाणु गेहूँ की फसल ३-५ सेन्टनर प्रति हेक्टर बढ़ा देते हैं। यह भी देखा गया है कि इससे गेहूँ में बीमारियों से लड़ने की क्षमता बढ़ जाती है और अन्न में प्रोटीन की मात्रा एकत्र होने में यह उर्वरक सहायक होता है। नाइट्रोजन चारों की फसल को बढ़ाने और परिपुष्ट करने में सहायक होता है। मिश्र उर्वरक विशेष रूप से महत्वपूर्ण हैं। उनमें दो-तीन तरह के जीवाणु रहते हैं और उनका उपयोग विविध प्रकार की फसलों में किया जा सकता है।

विन्ध्य भूमि

(एक अध्ययन)

[युगुल किशोर अग्निहोत्री, स्वाइल कंजर्वेशन विभाग, कोटा]

उपनिषद्, जो वेदों के ज्ञान कान्ड हैं उनमें पृथ्वी की उत्पत्ति परमात्मा (ईश्वर) से बताई गई है जिसका क्रम इस प्रकार है :—

सच्चिदानन्द (परमात्मा) से शून्य (आकाश) की उत्पत्ति हुई। आकाश से वायु पैदा हुई। वायु से अग्नि। अग्नि से जल एवं जल से पृथ्वी उत्पन्न हुई। पृथ्वी से औषधियां एवं औषधियों से अन्न उत्पन्न हुआ।

केवल रसायन शास्त्रियों को छोड़कर सबों का यह मत है कि पहले सारे संसार में जल ही जल था तथा अमीबा निम्न कोटि के एवं मछली उच्च कोटि के जीवधारी थे। फिर ऐसे जानवरों का जन्म हुआ जो जल तथा स्थल दोनों में रह सकते थे। दल दल कहीं कहीं पर सूखा तो वहाँ उच्चकोटि की वनस्पतियों तथा जीव धारियों का जन्म हुआ। जल के सूखने के साथ साथ पर्वतों का भी बनना प्रारम्भ हुआ।

सभी विद्वानों का मत है कि जल से स्थल निकला। वस्तुतः यही सत्य है और यही वेद वाक्य भी हैं।

अब प्रश्न यह है कि जल सूखने के पश्चात् जहां-जहां दलदल हुआ और सूखी भूमि निकली क्या वह कृषि के योग्य थी? अथवा उसमें कोई प्ररिवर्तन हुआ?

उपनिषदों की यह सूचना है कि पृथ्वी में औषधियाँ हुईं उससे अन्न का उत्पादन हुआ। यह रसायन शास्त्रियों को सोचने के लिए कुछ अवकाश देता है।

पृथ्वी में जो पेड़ पौधे हुये, वह ऐसा प्रतीत होता है, कि पहले ऊँचाई या पर्वतों पर हुये। यह तर्क द्वारा भी सिद्ध होता है कि पहले ऊँची भूमि पानी से बाहर निकली। जैसे जैसे पानी सूखा वैसे वैसे नीची भूमियां निकलती गईं तथा वर्षा ऋतु में जो पानी ऊपर से नीचे को बहा उसके साथ कुछ अंश मिट्टी एवं गिरी हुई पत्तियां तथा सूखी वनस्पतियों का बहा तथा निचली घाटियों में और मैदानों में जमा होता गया। जो स्थान जितना ऊँचा था उसमें उतनी ही कम मिट्टी जमा हुआ और जमी हुई मिट्टी और सड़ी हुई पत्तियां एवं वनस्पतियाँ भी समय समय पर बहुतायक से बहती रहती रहीं एवं निचले स्थानों में तब तक जमा होती रहीं जब तक वह बराबर न हो गये। इसीलिए हमें घाटियों में चिकनी काली मिट्टी अधिक मिलती है।

विन्ध्य क्षेत्र पहाड़ी है तथा पहाड़ों से घिरा हुआ है। यहां पर बड़े घने जङ्गल तथा ऊँचे विशाल पहाड़ हैं तथा कुछ स्थान पठारी है। पहाड़ों में अमरकंटक एवं कामयदगिरि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। सभी पहाड़ हरियाली से ढके हुये हैं तथा उनमें विशालकाय वृक्ष भी पाये जाते हैं। पहाड़ियों की घाटियों की भूमि काले रंग की है। पानी पड़ने पर यह मिट्टी विशेष चिकनी होती है और चिपकने लगती है जिससे ऊपर गाड़ियां इत्यादि नहीं चल सकती। कहीं कहीं पर इस मिट्टी में एक विशेष प्रकार की घास होती है जिसे मोवा-घास (पुष्पराजगढ़) कहते हैं। मोवा-घास कांस से मिलती जुलती है तथा कांस की भांति इसको भी नष्ट करना एक समस्या है। कांस भी काली मिट्टी में पाया जाता है। मोवा-घास और कांस इत्यादि घासों को ऐसा प्रतीत होता है कि प्रकृति ने भूमि-संरक्षण के लिये उत्पन्न किया है क्योंकि इनमें भूमि को बहाव से रोकने या बचाने की बड़ी भारी क्षमता है।

पठारी भूमि लाल रंग की है तथा इस मिट्टी में ४% से ८% तक बालू की मात्रा पाई जाती है। इस मिट्टी में बड़े विशाल वृक्षों के बन नहीं है किन्तु झाड़ियाँ, गुल-मेंहदी, रेमजा, तथा अन्य कांटे दार पाई जाती हैं जो यह

सिद्ध करती हैं कि पानी या नमी रोकने की शक्ति (water Holding capacity) बहुत कम है।

नदियों के किनारे तथा मैदानों में दोमट मिट्टी भी कहीं कहीं पाई जाती है। इस प्रकार विन्ध्य क्षेत्र की भूमि को सामान्यतः तीन भागों में बांटा जा सकता है।

१—काली मिट्टी
२—लाल मिट्टी
३—दोमट मिट्टी

भौगोलिक रीति से विन्ध्य क्षेत्र दो भागों में विभाजित किया गया है।

१—बघेल खन्ड—काली मिट्टी एवं बनों का बाहुल्य।
२—बुन्देल खन्ड—लाल मिट्टी का बाहुल्य।

प्रत्येक के अन्तर्गत चार चार जिले हैं।

बघेल खन्ड के अन्तर्गत—रीवां, सतना, शहडोल एवं सीधी हैं।

तथा बुन्देल खन्ड के अन्तर्गत—पन्ना, छतरपुर, टीकमगढ़ एवं दतिया जिले हैं।

काली मिट्टी की बनावट

मिट्टी का काला रंग प्रारम्भ में वनस्पति एवं चूने के सम्मिश्रण से हुआ। मिट्टी के काले रंग के विषय में विद्वानों के भिन्न मत हैं। कुछ का कहना है कि यह किसी तत्व पदार्थ विशेष के कारण है। कुछ कहते हैं कि कैलसियम के कारण है, किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि रंग का कारण केवल वनस्पति एवं कैलसियम है। रसायन शाला में किये हुये प्रयोगों द्वारा पता चलता है कि यदि सिलिका (बालू) के साथ वनस्पति सड़े तो सिलिका जो स्वेत रंग की होती है उसका रंग काला हो जाता है तथा आग में जलाने से भी वह सफेद नहीं होती किन्तु काली ही रहती है। जब जलाते जलाते लाल कर दिया जाता है तब भूरे रंग की होती है जिसमें कार्बन की मात्रा बिलकुल नहीं रह जाती। इससे स्पष्ट होता है कि काली मिट्टी का रंग केवल कार्बन और कैलसियम के कारण है। कुछ अंशों में मैगनीशियम, मैंगनीज तथा लौह इत्यादि भी इसके लिये उत्तरदाई हैं।

प्रयोग करके देखा गया है कि यदि हम कोयला या शर्करा मिट्टी के साथ बारीक करके मिला देवें तो वह सूर्य के प्रकाश में धीरे धीरे आक्सी करित होता रहता है। प्रत्येक वस्तु के जलने में शक्ति उत्पन्न होती है जो भूमि में वायुमन्डल से नाइट्रोजन का निग्रहण करती है। साधारणतः प्रति ग्राम कार्बन के जलने में प्रकाश में (सूर्य के प्रकाश) १२ से २० मिलीग्राम नाइट्रोजन का निग्रहण होता है।

क्रमशः

नैनीताल में भू-उपग्रहों का निरीक्षण करने के लिए नई वेधशाला का निर्माण

(पृष्ठ १७ का शेष)

तैनात वैज्ञानिक उस दिशा में और उस स्थान की ओर कैमरे का मुख तोड़ देता है, जिधर से भू-उपग्रह गुजरने वाला होता है। और इस प्रकार गुजरते हुये उपग्रह का चित्र खींच लिया जाता है। इस कार्य के लिए विशेष रूप स प्रयुक्त फिल्म पर भू-उपग्रह का चित्र खींचने के लिए एक बार में २ सेकेन्ड से ले कर ३-२ सेकेन्ड तक का समय दिया जाता है। चित्र खींचने के लिए कितना समय दिया जाए, यह बहुत कुछ भू-उपग्रह की चमक पर भी निर्भर करता है।

फिल्म को धोकर और नक्षत्रों की स्थिति को दृष्टि में रखते हुये निगेटिव का अध्ययन करने के उपरान्त उसकी स्थिति की सूचना तुरन्त मैसाचूसेटस (अमेरिका) स्थित निरीक्षण केन्द्र को दी जाती है, जहाँ उसका उपयोग अन्य निरीक्षण-केन्द्रों द्वारा भू-उपग्रहों के निरीक्षण के लिए किया जाता है। हवाई जहाज द्वारा फिल्में स्मिथ-सोनियन संस्थान को भेज दी जाती हैं, जहां अत्यधिक सूक्ष्म उपकरणों की सहायता से भू-उपग्रह की स्थिति की पुनः माप की जाती है और इस सूक्ष्म माप के फलस्वरूप पृथ्वी के वायुमण्डल के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण सूचनायें प्राप्त होती हैं।

नैनीताल में भू उपग्रहों का निरीक्षण करने के लिए नई वेधशाला का निर्माण

एन्थोनी ई० डिसूजा

कुमायूं की सुन्दर और मनोहारिणी पर्वत श्रृंखला की हरी-भरी गोद में ६४०० फुट ऊँचे 'मनोरी' पर्वत शिखर पर आप को एक अनूठी सी इमारत नजर आएगी। यह इमारत किसी प्राकृति सौन्दर्य के उपासक अथवा धनी मानी का निवास स्थान नहीं बल्कि वह नई वेधशाला है, जिसका निर्माण उत्तर प्रदेश की सरकार द्वारा अन्तरिक्ष के रहस्यों की खोज करने के लिए किया गया हैं। सुन्दर उपत्यकाओं से घिरा हुआ यह शैल शृंग प्राकृतिक सौन्दर्य और सुषमा के नगर नैनीताल से अधिक दूर नहीं। पर्वत शिखर से सर्प की तरह बल खा कर उतरती हुई टेढ़ी-मेढ़ी सड़क द्वारा नैनीताल आसानी से पहुँचा जा सकता है।

नैनीताल में पहले से भी एक वेधशाला मौसम के सम्बन्ध में जानकारी इत्यादि प्राप्त करने का कार्य करती रही है। मनोरी में जो नई वेधशाला बनी है, वह मुख्यतः पृथ्वी के वाह्यमन्डल और अन्तरिक्ष में छोड़े जाने वाले उपग्रहों का अध्ययन करने वाले दूरबीक्षण-कैमरे और उन से प्राप्त होने वाले रेडियों संकेतों को ग्रहण करने वाले यन्त्रों से पूर्णतः सुसज्जित की गई है।

भू-उपग्रहों के निरीक्षण के लिए विश्व में १२ निरीक्षण केन्द्र

भारत उन ६ देशों में से एक हैं, जिन्होंने अमेरिका को अन्तर्राष्ट्रीय भू-भौतिक कार्यक्रम के सचालन में सहयोग देने का वचन दिया है। संसार भर में अमेरिका ने भू-उपग्रह की गतिविधियों पर नजर रखने के लिए १२ निरीक्षण केन्द्रों की स्थापना की है। नैनीताल के निकट मनोरी स्थित उक्त नवीन वेधशाला भी इन में से एक है। इस वेधशाला को इतने कम समय में खड़ा करने और सभी प्रकार के सूक्ष्म उपकरणों को फिट कर उन्हें कार्य योग्य बनाने का समस्त श्रेय भारतीय वैज्ञानिकों को ही है।

अन्तर्राष्ट्रीय भू-भौतिक कार्यक्रम के संचालन के लिए उत्तरदायी अमेरिका की राष्ट्रीय समिति ने भू-उपग्रहों की गतिविधियों पर नजर रखने का कार्य 'स्मिथ सोनियन इन्स्टीटयूशन' की विश्व प्रसिद्ध वेधशाला को सौंप दिया था। इसी संस्था ने नैनीताल के निकट स्थित उक्त भू-उपग्रह निरीक्षण वेधशाला के लिए सभी आवश्यक उपकरणों और सामग्री सुलभ की है। उत्तर प्रदेश की सरकार ने स्मिथसोनियन संस्थान द्वारा प्रदान की गई समस्त सामग्री का उपयोग कर वेधशाला को यन्त्रों से सज्जित करने के लिए अपने तीन वैज्ञानिकों की सेवाएं सुलभ कीं और वेधशाला को चलाने और उसकी देख रेख करने का भार भी संभालना स्वीकार कर लिया। इस वेधशाला में व्यवस्था भी कर दी गई है कि आवश्यकता पड़ने पर वेधशाला के वैज्ञानिक महत्त्वपूर्ण पहलुओं पर सीधे स्मिथसोनियन संस्थान के वैज्ञानिकों से सम्पर्क स्थापित कर सकें।

यह वेधशाला उत्तर प्रदेश सरकार की वेधशाला के अंग के रूप में ही कार्य कर रही है। हार्वर्ड विश्वविद्यालय वेधशाला से पी०-एच०-डी० की डिग्री प्राप्त डा० एम० के० वापू के कुशल संचालन में वेधशाला ने अपना कार्य प्रारम्भ कर दिया है। डा० वापू एक बहुत ही मिलनसार परन्तु प्रतिभा शाली वैज्ञानिक हैं। उन्हें इस बात का पूरा विश्वास है कि अपने युवा सहयोगी वैज्ञानिकों की सहायता और सहयोग से वे भू-उपग्रहों के निरीक्षण-कार्य में पूरा सहयोग प्रदान कर सकेंगे। उन के सहयोगियों में

में डा० एस० डी० सिनमल, श्री सी० डी० कन्दपाल, श्री एम० ए० भटनागर और श्री एस० सी० जोशी शामिल हैं।

नैनीताल में स्थापित इस नवीन भू-उपग्रह निरीक्षण केन्द्र के अतिरिक्त अर्जेनटाइना, आस्ट्रेलिया, ईरान, जापान, हालैण्ड, पेरू, दक्षिण अफ्रीका, स्पेन और अमेरिका (फ्लोरिडा, न्यूमैक्सिको और हवाई प्रदेश में) में इसी प्रकार के निरीक्षण केन्द्र कार्य कर रहे हैं। अमेरिका के बाहर के देशों में जो निरीक्षण-केन्द्र स्थित हैं, उन में से अधिकान्श केन्द्रों में कार्यरत वैज्ञानिकों ने अमेरिका जा कर भू-उपग्रहों के निरीक्षण से सम्बन्धित सूक्ष्म उपकरणों का उपयोग करने के सम्बन्ध में आवश्यक प्रशिक्षण भी प्राप्त किया है। इस प्रशिक्षण क्रम की व्यवस्था स्मिथसोनियन संस्थान द्वारा ही की गई थी।

जहां तक भारत और आस्ट्रेलिया का सम्बन्ध है, स्मिथसोनियन संस्थान ने उपकरणों की स्थापना इत्यादि के कार्य में स्थानीय वैज्ञानिकों की सहायता करने के लिए टैक्निकल सलाहकार भी भेजे। भारत में यह कार्य पूरा कराने का दायित्व डा० सैमुएल बी० ह्विडन पर डाला गया। वह इस के पूर्व न्यूमैक्सिको में भी इसी प्रकार के एक निरीक्षण-केन्द्र की स्थापना करा चुके थे। डा० ह्विडन जनवरी, १९५८ में भारत आए और भारतीय वैज्ञानिकों के साथ मिल कर वेधशाला में उपकरणों को फिट करने का कार्य उन्होंने अविलम्ब शुरू कर दिया। इस सम्बन्ध में एक विशेष उल्लेखनीय बात यह थी कि वेधशाला के निर्देशक डा० वापू और ह्विडन अमेरिका में साथ-साथ पढ़ चुके थे।

भू-उपग्रहों के निरीक्षण के लिये प्रयुक्त किया जाने वाला 'बेकर-नून' नामक तीन टन वजनी विशिष्ट कैमरा हवाई जहाज द्वारा अमेरिका से नई दिल्ली लाया गया। सब से कठिन समस्या यह थी की इतनी ऊँचाई पर यह कैमरा किस तरह पहुँचाया जाये। लेकिन पहले रेल द्वारा और फिर सड़क मार्ग द्वारा अत्यधिक सावधानी के साथ जून तक यह कैमरा वेधशाला के स्थल पर पहुँचा दिया गया। भारतीय वैज्ञानिकों तथा अमेरिकी टैक्निकल विशेषज्ञ ने मिल कर बहुत थोड़े समय में यह कैमरा वेधशाला में फिट कर दिया और अगस्त के अन्तिम सप्ताह तक इस कैमरे का उपयोग करना सम्भव हो गया। अब तक यह वेधशाला दो बार एक्सप्लोरर-१ भू-उहग्रह का निरीक्षण सफलता पूर्वक कर चुकी है। अगस्त १९ को वेधशाला के वैज्ञानिकों ने उक्त कैमरे की सहायता से रूसी भू-उपग्रह 'स्पूतनिक-३' को भी अन्तरिक्ष में विचरण करते हुए देखा।

नैनीताल के निकट स्थित इस भू-उपग्रह वेधशाला के निम्न भाग है :—

१—**कैमरा भवन**—इस में 'बेकर-नून' शक्तिशाली कैमरा फिट है, जिस की सहायता से भू-उपग्रह का निरीक्षण करने के साथ-साथ फोटो उतारने की विद्युदणु-व्यवस्था भी संलग्न है।

२—**परीक्षणशाला और कार्यालय**—यहां पर उक्त कैमरे के उपयोग के लिये आवश्यक विद्युतशक्ति सुलभ करने वाला यन्त्र, विद्युतशक्ति जेनेरेटर, फिल्मों को धोने और विभिन्न सूक्ष्म मापक यन्त्रों को पढ़ने इत्यादि की व्यवस्था है।

निरीक्षण--केन्द्र किस प्रकार कार्य करता है

भू-उपग्रह—निरीक्षण केन्द्र निम्न ढंग पर कार्य करता है :—

स्मिथसोनियन संस्थान, मेसाचूसेटस (अमेरिका) और वेधशाला के मध्य सीधा सम्पर्क है। स्मिथसोनियन संस्थान के निरीक्षण-केन्द्र में एक विद्युदणु चालक विशालकाय गणक यन्त्र फिट है, जो भू-उपग्रहों के सम्बन्ध में निरीक्षण-केन्द्रों में प्रात होने वाली सूचनाओं को पुनः प्रसारित करता है। सनोरी स्थित इस वेधशाला पर नियुक्त वैज्ञानिक को टेलीफोन या तार द्वारा आवश्यक सूचनायें मिलती रहती हैं और इस तरह प्राप्त होने वाली सूचना के आधार पर निर्धारित समय पर कैमरे पर

(शेष पृष्ठ १५ पर)

सौर मन्डल में मानव-निर्मित ग्रह

अन्तरिक्ष यात्रा की कल्पना भारत के लिए कोई नई नहीं। आधुनिक विज्ञान के उद्भव और विकास के बहुत समय पूर्व रचित प्राचीन भारतीय ग्रन्थों में अन्तरिक्ष-यात्रा की सम्भावनाओं पर विस्तार से विचार किया गया है और यह किम्बदन्ती तो भारत के घर-घर आज भी प्रचलित है कि प्राचीन युग में महर्षियों को सशरीर अन्तरिक्ष में यात्रा करने की सिद्धि प्राप्त थी। पहले बहुत से लोग कपोत कल्पना कह कर अन्तरिक्ष यात्रा की सम्भावनाओं की खिल्ली उड़ाया करते थे। परन्तु पिछले दो वर्षों में इस दिशा में जो महत्वपूर्ण प्रगति हुई है, उसने मनुष्य को यह विश्वास दिला दिया है कि अब नहीं तो निकट भविष्य में मानव का यह स्वप्न पूरा हो कर रहेगा। प्रकृति की अज्ञात शक्तियों को पग पग पर पराजित करता हुआ मानव द्रुत गति से अन्तरिक्ष युग की ओर अग्रसर हो रहा है। और शायद शीघ्र ही वह दिन आने वाला है, जब मानव पहली बार अन्तरिक्ष में प्रवेश कर पृथ्वी पर सकुशल लौट सकेगा। मनुष्य ने अब तक एक से एक शानदार सफलताएं प्राप्त की है, परन्तु इन में सब से अधिक शानदार सफलता सौर मन्डल में मानव निर्मित उप ग्रह की स्थापना की है, जो इस सृष्टि के अन्त समय तक मानव की अपराजित क्षमता और बुद्धि का प्रतीक बन सौर-मण्डल में जगमगाता रहेगा। उसकी यह अनूठी कृति पायोनियर-चतुर्थ नामक अमेरिकी ग्रह है, जो इस समय अन्तरिक्ष में मानव की कीर्ति पताका लहराता हुआ सूर्य की परिक्रमा कर रहा है और जिसके बारे में वैज्ञानिकों ने यह भविष्यवाणी की है कि वह सृष्टि के अन्त तक सौर-मण्डल में बना रहेगा। इस संदर्भ में यह उल्लेखनीय है कि यद्यपि रूस का भी एक ग्रह सूर्य की परिक्रमा कर रहा है, परन्तु वह दीर्घ काल तक अपनी कक्षा में कायम नहीं रह सकेगा।

३ मार्च, १९५९ का दिवस विज्ञान के अभ्युदय के इतिहास में सदा अमर रहेगा। केप कैनावेरल स्थित परीक्षा केन्द्र पर ७६ फुट लम्बा और ६० टन वजनी भीमकाय... जूनो-२ राकेट अन्तरिक्ष अभियान के लिए सन्नद्ध खड़ा था और उसी के अग्र भाग में पायोनियर चतुर्थ उस महाप्रयाण की बाट जोह रहा था, जो उसे अमरत्व दिलाने वाला था। अनेकों बार राकेट के सभी खन्डों की और उस में मौजूद यन्त्रों की बारीकी से जाँच कर ली गई थी और अब वह घड़ी आ गई थी, जब वहां पर एकत्र सभी वैज्ञानिक और इंजिनियर राकेट को यंत्र से उठ कर अन्तरिक्ष की ओर प्रयाण करते देखने के लिए व्याकुल थे। सभी अत्यधिक उत्सुकता पूर्वक उस ऐतिहासिक घड़ी की बाट देख रहे थे। सहसा एक गम्भीर स्वर लाउड स्पीकर से गूँज उठा..१०..९...८...जो जहां था वहीं खड़ा हो गया। चारों ओर एक अजब खामोशी छा गई। राकेट को छोड़ने के लिए अंतिम गणना शुरू हो गई थी। सांस रोक कर लोग लाउड-स्पीकर पर चल रही गणना को सुनने लगे...७..६...५...४...३...२...१....राकेट छूटने में केवल एक सेकण्ड शेष है...जीरो...फायर... सब ने देखा कि राकेट की पूंछ से लाल, नीली और सफेद लौ निकलने लगी है। पल पल वह विकराल रूप धारण करती गई। राकेट के अन्दर एक कम्पन शुरू हो गया। सहसा गम्भीर घोष और आंखों को चकाचौंध कर देने वाले प्रकाश की सृष्टि करता हुआ राकेट धीरे-धीरे अपने मंच से उठा और पलक झपते प्रलयंकारी गति प्राप्त कर पूंछ से नीली, सफेद-लाल लपटें उगलता और अपने पीछे धुएं की रेखा छोड़ता आकाश में विलीन हो गया।

राकेट के छूटते ही वैज्ञानिक गण अपने यंत्रों पर झुक गए और एक पल के लिए भी उनकी दृष्टि यंत्रों के डायलों से नहीं हटी। रेडियो-ग्राहक यन्त्रों पर रुक रुक तीखी सीटी जैसी आवाजें गूंजने लगीं। ये आवाजें और कुछ नहीं राकेट से आ रहे रेडियो संकेत थे।

मिनट बाद उन्होंने चैन की सांस ली और माथे पर छाई हुई पसीने की बूंदों को पोंछते हुए कहा : अब इसे कोई रोक नहीं सकता। इसके बाद पुनः अन्तरिक्ष की गहराइयों में प्रबल वेग से अग्रसर पायोनियर-चतुर्थ 'यन्त्र-पुंज' का निरीक्षण करने और उस से आने वाले संकेतों को अंकित करने में जुट गए।

पायोनियर-चतुर्थ को छोड़ने वाला राकेट

पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण शक्ति से मुक्त होने के लिए यह आवश्यक है कि राकेट की प्रारम्भिक गति कम से कम २४५९० मील प्रति घण्टा हो। इससे कम गति होने पर राकेट पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण शक्ति पर विजय प्राप्त नहीं कर सकता और उसे पुनः 'पायोनियर-१' की तरह पृथ्वी पर लौटना पड़ता। अतः बहुत सोच-विचार कर इस बार ७६ फुट लम्बे और ६० टन वजनी भीमकाय चारखण्डीय राकेट 'जनो-२' का उपयोग किया गया। यह राकेट अमेरिकी नौसेना के मध्यम दूरी तक मार करने वाले जूपिटर राकेट के ढङ्ग पर ही निर्मित हुआ। इसका पहला खण्ड में जूपिटर का ही अधिक सुधरा हुआ रूप था और इस खण्ड के साथ ही ठोस ईंधन से संचालित तीन अन्य राकेट खण्ड इस प्रकार फिट थे कि वह अपनी बारी आने पर चक्करघिन्नी काटते हुए उसी प्रकार छूटे जैसे राइफल से गोली छूटती है। पहले खण्ड में ईंधन के स्थान पर उच्चकोटि का मिट्टी का तेल और उसे प्रज्जवलित करने के लिए तरल ऑक्सीजन प्रयुक्त किया गया। राकेट के अन्य तीन खण्डों का निर्माण राष्ट्रीय उड्डुयन एवं अंतरिक्ष प्रशासन की 'जेट प्रोपल्सन परीक्षण शाला' ने किया। राकेट के दूसरे चरण में ठोस ईंधन से संचालित ११ राकेट वृत्ताकार रूप में फिट थे। दूसरे खण्ड के राकेट का वजन ७२१ पौण्ड था तथा तीसरे खण्ड के राकेट का वजन २०७ पौण्ड था। इस में ठोस ईंधन से संचालित तीन राकेट त्रिकोण के आकार में फिट थे। तीसरे और चौथे खण्ड के राकेट और उस में फिट 'यंत्र-पुंज' पहले राकेट के छूटने के साथ ही चक्करघिन्नी काटने लगे थे।

चौथे खण्ड के राकेट में ५९६ पौण्ड वजन का एक राकेट-मोटर फिट था। इस खण्ड के जल जाने पर एक छोटा सा विस्फोट हुआ और इस की नोक से सम्बद्ध 'यन्त्र-पुन्ज' अलग हो कर तेज गति से आगे चल पड़ा।

'यन्त्र-पुन्ज' और राकेट का ऊपरी खन्ड एक विशेष प्रकार की खोल से ढका था ताकि अत्यधिक तेज गति के फलस्वरूप उत्पन्न प्रचन्ड ताप से उन की रक्षा हो सके। इस के अलावा इस खोल से पृथ्वी के वाह्य वातावरण में सक्रिय शक्तियों से राकेट के ऊपरी भाग तथा 'यन्त्र-पुन्ज' की रक्षा करने तथा प्रारम्भिक उड़ान के दौरान राकेट पर नियन्त्रण रखने के कार्य में भी सहायता मिली।

मार्ग निर्देशन और नियन्त्रण की प्रणाली पहले खन्ड के राकेट के अगले भाग में थी। पृथ्वी से छूटने के बाद राकेट को आगे बढ़ने के लिये पूर्णतः इसी यान्त्रिक प्रणाली पर निर्भर होना पड़ा। इस के लिये जूपिटर प्रक्षेपणास्त्र में प्रयुक्त प्रणाली ही काम में लाई गई। इस प्रणाली में जिरोस्कोप नामक यन्त्रों की सहायता से उड़ान के दौरान राकेट को एक निश्चित पथ पर आरूढ़ रखा जा सका, यद्यपि राकेट अपने पथ से कुछ थोड़ा सा हट गया। यही कारण था कि 'यन्त्र-पुन्ज' चन्द्रमा से २० हजार मील के फासले से न गुजर कर ३७ हजार मील के फासले से गुजरा।

'यन्त्र-पुन्ज'

पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण शक्ति से मुक्त हो कर सौर-मन्डल में पहुँचने वाले इस स्वर्ण मन्डित 'यन्त्र-पुन्ज' का कुल वजन १३.४ पौन्ड है और इस का आकार शंकु जैसा है। इसकी लम्बाई २० इन्च और व्यास ९ इन्च है। यह बहुत कुछ ६ दिसम्बर, १९५८ को छोड़े गये 'यन्त्र पुन्ज' पायोनियर-तृतीय से मिलता-जुलता है। इस में चन्द्रमा का चित्र उतारने के लिए तथा पृथ्वी और चन्द्रमा के आस-पास के क्षेत्र में विद्यमान विकिरण की घनता को माप करने के लिये विशेष यन्त्र रखे गये थे।

निष्क्रिय गैसें तथा उनके उपयोग

ले०—धीरेन्द्र नाथ पाठक, रसायन विभाग, गोरखपुर विश्वविद्यालय

कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में भौतिक शास्त्र के प्राध्यापक लार्ड रैले ने सन् १८८४ ई० में यह ज्ञात किया कि वायु से प्राप्त नाइट्रोजन का घनत्व अमोनियम नाइट्राइट, यूरिया आदि नाइट्रोजन युक्त यौगिकों से प्राप्त किए गए नाइट्रोजन से लगभग ०·५ प्रतिशत अधिक है। स्वयं भौतिक शास्त्र के विद्वान होने के कारण उन्होंने अपने परीक्षण को रायल केमिकल सोसाइटी आफ लन्दन के समक्ष प्रदर्शित किया।

डीवार महोदय ने यह बतलाया कि प्रायः सौ वर्ष पहले कैवेन्डिश नामक वैज्ञानिक ने एक परीक्षण का वर्णन किया था। जब जब वायु के आक्सीजन और नाइट्रोजन का विखन्डन कास्टिक पोटाश के ऊपर किया जाता है तो सर्वदा एक बुलबुला शेष रहता है जो किसी प्रकार भी हटाया नहीं जा सकता। कदाचित यह बुलबुला कोई ऐसा तत्व है जो नाइट्रोजन के घनत्व को बढ़ा देता है। सर विलियम रैमजे ने यह बतलाया कि वायु के नाइट्रोजन में किसी निष्क्रिय तत्व के मिश्रित रहने के कारण ही इसका घनत्व नाइट्रोजन युक्त यौगिकों से प्राप्त नाइट्रोजन से अधिक है।

वायुमंडल की नाइट्रोजन में नये तत्व पाने की आशा से रैमजे ने इसका विश्लेषण प्रारम्भ किया। उन्होंने कार्बन-डाई-आक्साइड रिक्त वायु [वायु को कास्टिक पोटाश से होकर प्रवाहित करके] लेकर उसे रक्तोष्ण तांबे पर से प्रवाहित किया और उसमें से समस्त आक्सीजन निकाल दिया। नाइट्रोजन का शोषण करने के लिए उसे मैगनीशियम के साथ गर्म किया। उन्होंने यह देखा कि वायु का लगभग एक प्रतिशत ऐसा भाग शेष रह जाता है जो कि किसी भी पदार्थ के साथ प्रतिक्रिया नहीं करता, और इसका वर्णपट क्रम भी नाइट्रोजन से भिन्न है। निष्क्रिय होने के कारण इस शेष गैस का नाम रैमजे ने आरगॉन रखा जिसका अर्थ यूनानी भाषा में निष्क्रिय होता है।

१८ अगस्त सन् १८६८ में भारतवर्ष में सम्पूर्ण सूर्य ग्रहण के समय सूर्य के वर्णपट क्रम में सोडियम की दो रेखाओं से मिलती जुलती एक पीली रेखा दिखाई दी थी। जेनीसन ने इसका नाम D३ रेखा रखा। फ्रैंकलैंड और लॉकेयर इससे इस निर्णय पर पहुंचे कि कदाचित यह रेखा किसी ऐसे तत्व के कारण है, जो सूर्य में विद्यमान है। उन्होंने इस तत्व का नाम हीलियम (सूर्य से प्राप्त) रखा। इसी समय रैमजे ऐसे पदार्थों की खोज में थे जिससे आरगॉन अधिक मात्रा में प्राप्त की जा सके। मायर नामक वैज्ञानिक ने रैमजे को हेलीब्रैन्ड के परीक्षण (क्लीवाइट नामक अयस्क को तनु गन्धकाम्ल के साथ गरम करने पर एक निष्क्रिय गैस प्राप्त होती है) के लिए परामर्श दिया। रैमजे ने इस परीक्षण को दुहराया और यह ज्ञात किया कि इस प्रकार प्राप्त गैस आरगॉन से भिन्न दूसरी निष्क्रिय गैस है। उन्होंने जांच के लिए गैस से भरी एक शीशी क्रुक नामक वैज्ञानिक के पास भेजा। क्रुक ने जांच करके यह ज्ञात किया कि यह वही तत्व हीलियम है जिसका वर्णपट पूर्ण सूर्य-ग्रहण के समय देखा गया था।

इन दो निष्क्रिय-गैसों के आविष्कार के पश्चात् आवर्त्त सारणी में इनको रखने की समस्या उपस्थित हुई। जुलीयट थामसन् ने इनको एक नवीन समूह शून्य वर्ग में रखा और आवर्त्त नियम के अनुसार ४, २०, ३६, ८४, १३२, २१२ परमाणु-भार वाले अज्ञात तत्वों की इस श्रेणी में उपस्थिति बतलायी। इससे उत्साहित होकर रैमजे और ट्रैवर्स ने यह ज्ञात किया कि अवशेष भाग एक अकेला तत्व नहीं है। अत्यन्त सावधानी के साथ द्रवित वायु का प्रभागशः आसवन करके उन्होंने

आवर्त्त-तालिका के एक नये वर्ग में होने वाले इन सब तत्त्वों का ज्ञान प्राप्त किया। इनके नाम ग्रीक भाषा में नीयॉन (नवीन) क्रिप्टांन (छिपी हुई) और जीनॉन (अज्ञात) रक्खे गये। रेडॉन इसी वर्ग का रेडियोधर्मी तत्व है, जिसे डॉर्न ने सन् १९०० ई० में रेडियम की रेडियो-धर्मी विघटन से प्राप्त किया।

उपयोग :—आजकल अक्रियाशील गैसें भिन्न भिन्न उपयोगों में लाई जाती हैं :—

हीलियम—हलकेपन के कारण वस्तुओं को ऊपर उड़ाने की शक्ति हाइड्रोजन की अपेक्षा ९२ प्रतिशत ही है परन्तु इसके प्रयोग में एक बड़ा लाभ यह है कि इससे आग लगने का भय नहीं है, इसीलिए इसे ऋतु-ज्ञान के अध्ययन और अन्य प्रकार के उपयोगी गुब्बारों में भरा जाता है। गहरे समुद्र में नीचे साँस लेने के लिए हीलियम और ऑक्सीजन का मिश्रण वायु के स्थान पर काम आता है क्योंकि अधिक दबाव पर हीलियम नाइट्रोजन की अपेक्षा रुधिर में कम घुलन शील है। यदि इस स्थिति में वायु का प्रयोग किया जाय तो अत्यन्त दबाव के कारण नाइट्रोजन रुधिर में घुल जाती है और जब डुबकी लगाने वाला समुद्र तल पर आता है तो दबाव कम होने से घुलित नाइट्रोजन रुधिर में बुलबुले बनकर निकलने लगती है जिससे सारे शरीर में एक प्रकार का दर्द हो जाता है। दमा के उपचार में भी इसका उपयोग किया जाता है। वैल्डिंग क्रियाओं में निष्क्रिय वायु मंडल बनाने के लिए हीलियम का उपयोग होता है, क्योंकि कुछ धातुओं (जैसे मैगनीशियम) तथा इसके मिश्र धातुओं का बड़ी ही सुगमता से वायु में ऑक्सीकरण हो जाता है। यह दिशा-निरुपण यन्त्र तथा दूसरे सामुद्रिक यन्त्रों में भी प्रयुक्त होती है। वायु से हल्की होने के कारण बड़े बड़े वायुयानों के रबर के टायरों में भरने के भी काम आती है।

नियॉन—यदि २ मि० मी० दबाव पर एक बन्द अवर्ण-नली में नियॉन गैस लें और उसमें विद्युत धारा प्रवाहित करें तो एक नारंगी लाल रंग की चमक उत्पन्न होती है। यह प्रकाश कुहरों तथा बादलों में से होकर चमकता रहता है। इसलिए नियॉन-रोशनी हवाई उड़ान करने वालों के लिए सूचक के रूप में प्रयुक्त होती है। आधुनिक काल-में नियॉन के प्रकाश का उपयोग विज्ञापन के लिए बहुत ही बढ़ता जा रहा है। इस कार्य के लिए नियॉन को आरगॉन या पारे की वाष्प से मिश्रित कर लेते हैं।

आरगॉन—आरगॉन आजकल गैसाधारित बिजली के लट्टुओं में भरने के लिए विशेषतया काम आती है। यह या तो स्वतः ही या २० प्रतिशत नाइट्रोजन वाले मिश्रण के रूप में प्रयोग की जाती है। इससे धातु तंतु जल्दी नहीं टूटता है। रेडियो वाल्व और रेक्टीफायर-वाल्वों में भी इसका उपयोग होता है।

क्रिप्टॉन और जीनॉन—यह देखा गया है कि यदि बिजली के लट्टुओं में आरगॉन के स्थान पर क्रिप्टॉन और जीनॉन गैसें काम में लाई जायें तो लट्टुओं की उपयोगिता अधिक बढ़ जाती है और बिजली का खर्च भी एक तिहाई हो जाता है। परन्तु यह गैसें प्रचुर मात्रा में प्राप्त नहीं की जा सकतीं, क्योंकि वायुमंडल में बहुत ही थोड़ी मात्रा में पायी जाती है।

रेडॉन—यह रेडियम के विघटन होने पर प्राप्त होने वाली रेडियो धर्मी गैस है। आजकल यह ठीक न होने वाले घावों तथा शरीर में घातक फोड़ों के उपचार के काम आती है। रेडॉन चर्बी के यौगिकों में घुलनशील है और आजकल एक रेडान मिश्रित लेप भी बनाया गया है जो कि उपर्युक्त उपयोग में आता है।

———
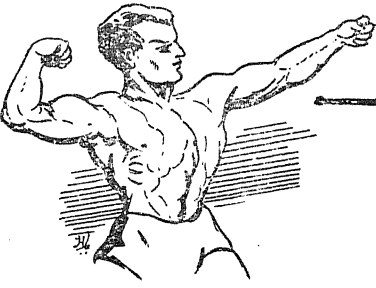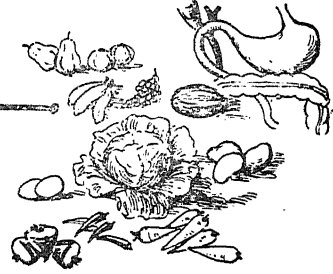
स्वास्थ्य केन्द्र द्वारा अणुशक्ति का उपयोग

रोगों के निदान और चिकित्सा के लिए आणविक निदान विधियों और औषधियों का उपयोग करने के फलस्वरूप अमेरिका में ऐसे बहुत से लोगों का जीवन बचाना सम्भव हो सका है, जिन के बचने की कोई आशा शेष नहीं रह गई थी।

चिकित्सा-क्षेत्र में यह उल्लेखनीय सफलता आणविक विकिरण से युक्त रेडियो-आइसोटोपों का निदान और चिकित्सा कार्यों के लिए प्रयोग कर के प्राप्त की गई है।

पिछले १८ वर्षों में वैज्ञानिकों और डाक्टरों ने रेडियो-आइसोटोप का उपयोग कर मानव शरीर के अब तक अज्ञात रहस्यों को खोज निकालने में अद्भुत सफलता प्राप्त की है।

इन्हीं प्रयत्नों के फलस्वरूप 'रेडियो कोवाल्ट' नामक रेडियो-आइसोटोप का विकास हुआ, जो कैंसर रोग के उपचार में अत्यधिक प्रभावशाली सिद्ध हुआ है। इसी प्रकार रसौली की स्थायी चिकित्सा के लिए स्वर्ण के रेडियो-आइसोटोप की खोज हुई और अब रेडियो सक्रिय क्रोमियम का भी उपयोग कैंसर की चिकित्सा में सफलता-पूर्वक किया जा रहा है।

इन सफलताओं के पीछे अनेकों वर्षों के कठोर और अनवरत परिश्रम का इतिहास निहित है। उदाहरणार्थ क्रोमियम-५१ का विकास १३ वर्षों के कठोर श्रम के उपरान्त हुआ। कोबाल्ट-६० और स्वर्ण-१९८ का भी विकास इसी प्रकार हुआ है।

ओहायो स्टेट यूनिवर्सिटी में भी पिछले १८ वर्षों से इस प्रकार का अनुसन्धान कार्य चल रहा है। वहां इस कार्यक्रम के अन्तर्गत डा० चार्ल्स ए० डोन और डा० ब्रूस के० वाइजमैन ने रक्त सम्बन्धी रोगों के उपचार के लिए रेडियो-फास्फोरस का उपयोग किया। सर्वप्रथम ३१ अक्तूबर, १९४६ को ओहायो स्टेट यूनिवर्सिटी को टेनेसी स्थित आणविक अनुसन्धानशाला के फास्फोरस-३२ नामक रेडियो-आइसोटोप का पहला पार्सल मिला था। यूनिवर्सिटी के अनुसन्धान- केन्द्र ने रक्त स्वल्पता और कैंसर की चिकित्सा के लिए उक्त रेडियो-आइसोटोप का सफलता-पूर्वक प्रयोग किया।

अगस्त, १९४८ से ले कर अब तक गर्भाशय के कैंसर रोग से पीड़ित लगभग १५,००० महिलाओं का यूनिवर्सिटी के स्वास्थ्य-केन्द्र में रेडियो-सक्रिय कोबाल्ट की सहायता से इलाज किया गया है। इस के अलावा २०० अन्य रोगियों की चिकित्सा के लिए रेडियो-सक्रिय स्वर्ण का भी उपयोग हुआ।

यूनिवर्सिटी के स्वास्थ्य-केन्द्र में हुए परीक्षणों के फलस्वरूप चिकित्सा की नई-नई आणविक विधियों का विकास हुआ है तथा रोगों का ठीक तरह से निदान करने में महत्वपूर्ण सहायता मिली है। स्वास्थ्य-केन्द्र में

रेडियो-आयोडीन नामक एक रेडियो-आइसोटोप का विशेष रूप से प्रयोग किया जाता है। गल-ग्रन्थियों और रसौलियों के इलाज में यह रेडियो-आइसोटोप विशेष उपयोगी सिद्ध हुआ है। उक्त रेडियो-आइसोटोप से गामा किरणों का विसर्जन होता है, शरीर में जिन की उपस्थिति का विद्युदणु यन्त्रों की सहायता से बहुत जल्दी पता लगाया जा सकता है। अतएव रक्त सम्बन्धी रोगों के निदान और चिकित्सा के लिए यह विशेष उपयोगी सिद्ध हुआ है। आई-१३१ नामक रेडियो-आइसोटोप के उपयोग की अधिक सुरक्षित विधि की खोज भी इसी स्वास्थ्य-केन्द्र द्वारा की गई है।

स्वास्थ्य-केन्द्र ने एक ऐसा यन्त्र भी तैयार करने में सफलता प्राप्त की है, जो शरीर के अन्दर के भागों में विभिन्न अनुपात में मौजूद गामाविकिरण की घनता का पता बता देता है।

रोगों पर नियन्त्रण प्राप्त करने के प्रयत्न में उक्त स्वास्थ्य-केन्द्र के वैज्ञानिकों ने अन्य दर्जनों रेडियो-आइसोटोपों का विकास किया है।

—०—

नये कम्प्यूटर से रक्त सम्बन्धी रोगों का निदान करने में सहायता

ओहायो विश्वविद्यालय के एक शरीर रचना विशेषज्ञ ने बाताया है कि गणना करने के यन्त्र (कम्प्यूटर) के साथ एक वर्ष तक परीक्षण करने के पश्चात् उन्हें यह विश्वास हो गया है कि उसकी सहायता से चिकित्सक लोग शीघ्र ही धमनियों का कड़ा हो जाना तथा रक्तचाप आदि अनेक रोगों का निदान कर सकेंगे।

शरीर रचना शास्त्र के सहायक प्रोफेसर डा० राल्फ डब्ल्यू० स्टेसी ने बताया है कि उन के कम्प्यूटर-यन्त्र को धमनियों की क्रियाओं को मापने के लिए प्रयोग में लाया जा सकता है।

श्री स्टेसी कई वर्षों तक रक्त-प्रवाह के सम्बन्ध में अनुसन्धान करते रहे हैं। उन्होंने बताया कि कम्प्यूटर ने यह सिद्ध कर दिया है कि उसकी सहायता से रक्त-प्रवाह सम्बन्धी रोगों का निदान किया जा सकता है। उन्होंने बताया कि रक्त-प्रवाह के सम्बन्ध में जांच-पड़ताल करके चिकित्सक लोग तीव्र रक्तचाप और धमनियों की कठोरता आदि अन्य रक्त सम्बन्धी रोगों का निदान कर सकेंगे।

फिर भी उन्होंने यह बात स्पष्ट कर दी है कि कम्प्यूटर-यन्त्र कभी भी स्वयं निदान नहीं कर सकेगा। यह तो केवल चिकित्सकों के लिए उपयोगी जानकारी एकत्र कर सकता है।

इस यन्त्र की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि इस की स्मृति-क्षमता अपार है। यह असंख्य रोगियों के रोगों का विस्तृत विवरण भावी उपयोग के लिए फीते पर अंकित कर सकता है।

४ वर्षों तक परिक्षण करने के बाद यह यन्त्र तैयार किया गया है। डा० स्टेसी ने बताया कि "मैं विश्वविद्यालय की प्रयोग शाला में एक वर्ष तक प्रयोग करता रहा हूँ और इस दौर में मैंने इस यन्त्र में बहुत कम सुधार किये हैं।"

हृदय रोगों पर नियन्त्रण

अमेरिकन हार्ट एसोसियेशन की वार्षिक रिपोर्ट से पता चलता है कि अनुसन्धान द्वारा जो वैज्ञानिक सफलतायें प्राप्त की गई हैं, उनके परिणाम स्वरूप हृदय रोग से पीड़ित हजारों व्यक्ति अब अधिक आयु तक जीवित रह सकेंगे।

रिपोर्ट में कहा गया है कि आज ऐसे रोगों से पीड़ित व्यक्तियों के प्राणों की रक्षा की जा रही है, जिन्हें आज से १० वर्ष पूर्व असाध्य समझ कर छोड़ दिया जाता था। हृदय रोगों की चिकित्सा के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण प्रगति की गई है और अब जन्म जात तथा बाद में उत्पन्न होने वाले हृदय रोगों का जटिल शल्य चिकित्सा द्वारा उपचार करके हजारों व्यक्तियों की आयु की अवधि को बढ़ा दिया जाता है।

रिपोर्ट में यह भी बताया गया है कि अब वह बच्चे भी स्वास्थ्य लाभ करके बड़ी आयु पाने लगे हैं, जिनका एक विशेष रोग के कारण शरीर नीला पड़ जाता था और वे शीघ्र ही मृत्यु का ग्रास बन जाते थे।

अब हृदय के ओपरेशन होने लगे हैं। इसके अलावा चिकित्सा सम्बन्धी अनुसन्धान के फलस्वरूप ऐसी-ऐसी औषधियां तैयार की गई हैं, जिनके सेवन से रक्तचाप पर नियन्त्रण किया जा सकता है। रिपोर्ट में बताया गया है कि हृदय रोग से पीड़ित व्यक्तियों में से ८० प्रतिशत व्यक्ति काम पर लौटने लगे हैं।

जुकाम से बचने का टीका

अमेरिका की एक औषधि निर्माण कम्पनी 'पार्क डेविस एन्ड कम्पनी' के अध्यक्ष श्री हेरी जे० लिन्ड का कहना है कि सम्भवतः इस वर्ष के अन्त तक बाजार में ऐसी 'वैक्सीन' मिलने लगेगी, जिसके लगाने से लोगों को सर्दी-जुकाम के चंगुल से बहुत हद तक छुट्टी मिल जाएगी।

मानसिक रोगों की चिकित्सा के लिये सर्पगन्धा का उपयोग

प्रसिद्ध भारतीय बूटी सर्पगंधा अमेरिका के चिकित्सा जगत में आजकल विशेष लोकप्रिय हो रही है। कुछ समय पूर्व अमेरिकी वैज्ञानिकों ने यह खोज की थी कि न्यून रक्त चाप से पीड़ित व्यक्तियों की चिकित्सा के लिये सर्पगंधा बहुत उपयोगी औषधि है। तब से अमेरिका में इस के उपयोग में बहुत वृद्धि हुई है। अब वैज्ञानिकों ने इस के सम्बन्ध में खोज कर इस के एक नये गुण का पता लगा लिया है।

वैज्ञानिकों का कथन है कि मानसिक रोगों की चिकित्सा में भी यह औषधि बहुत गुणकारी और लाभप्रद सिद्ध हो सकती है। अमेरिको डाक्टरों ने मानसिक रोगों की चिकित्सा के लिये सर्पगंधा से एक नई औषधि तैयार भी कर ली है।

दक्षिण डकोटा में स्थित माउन्ट रशमोर नेशनल मैमोरियल संसार का दस्तकारी का सबसे बड़ा उदाहरण है। इसे लोग गण तंत्र का तीर्थ स्थान मानते हैं इसलिये की यहां अमरिका के प्रेसीडेन्टों की मूर्तियां हैं। वाशिंगटन, जैफरसन, थियोडोर रूजवेल्ट और लिंकन की यह अर्ध मूर्तियाँ लगभग ४६५ फीट ऊंची हैं।
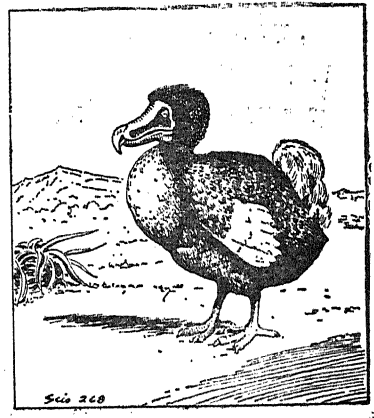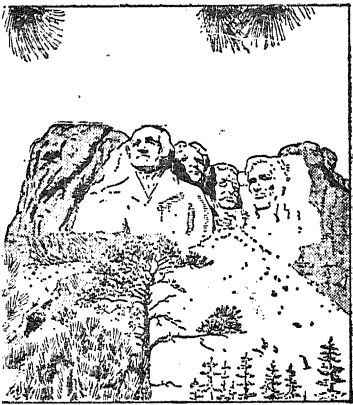
विशेषज्ञों का मत है कि पिछले २,००० वर्षों में लगभग १०६ स्तनपायी जीव विलुप्त हो गये हैं। डोडो का उदाहरण भी नाटकीय है। हिन्द महासागर के मौरीशश और रीयूनियन टापुओं में नाविकों ने इन्हें निर्दयता से मारा फलस्वरूप यह १८६० में लुप्त हो गये।

नागपुर के संतरे

श्री एस० वी० लाल

वाराणसी के लंगड़े आम संसार भर में प्रसिद्ध हैं तो उससे कहीं अधिक नागपुरी संतरे। यहां के संतरे इतने प्रचलित एवं लोकप्रिय हो चुके हैं कि ये नागपुर के न रह कर समस्त भारत के हो गये हैं। नागपुर के संतरों के व्यापार से १ करोड़ रुपये से अधिक आय होती है। नागपुर व्यापार की दृष्टि से बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान पर स्थित भी है। दिल्ली, कलकत्ता, बम्बई और मद्रास से समदूरी पर होने के कारण यातायात में सहायता मिलती है।

संतरे का जन्म चीन में हुआ है। कर्क और मकर रेखा के निकटवर्ती देशों की भूमि और जलवायु इसके लिये उपयुक्त है। आरम्भ से ही अर्जेन्टाइना, ब्राजील, रमन, इटली और जापान तथा आस्ट्रेलिया में संतरों का उत्पादन होता है। भारत में यह फल देर से आया। कहा जाता है भारत में पहले आसाम, बुड़वल, गढ़वाल इन स्थानों पर यह फल आया। अभी भी प्रचलित नाम नारङ्गी है। नागपुर में इस फल का प्रवेश अठारवीं सदी के अंतिम चरण में हुआ। रघुजी द्वितीय इसके पौधे अपने उद्यान के लिए लाए थे। यहां की जलवायु उपयुक्त सिद्ध हुई जिससे यह पनपने लगा और महलों, उद्यानों को छोड़ कर साधारण जनता के बागीचों तक पहुँच गया। अब यह राजा की ही सम्पत्ति न रह कर जनता को थाती हो गई और जनता के लिए धन कमाने का श्रोत भी। आज देश के कोने कोने में नागपुरी संतरों की कलमें और पौधे फैले हैं।

दो फसलें

एक वर्ष में सन्तरे की दो फसलें होती हैं एक सितम्बर से जनवरी तक, दूसरी फरवरी से मई तक। अधिकाँश समय तक जनता को सन्तरे प्राप्त होते हैं। सन्तरे की फसल के लिये भूमि में तत्वविनिमय शक्ति होनी चाहिये। भौतिक रचना के अनुसार भूमि की बनावट रेत मिली हुई दोमट कपास की काली मिट्टी होनी चाहिये। मिट्टी में कंकर पत्थर और रेत सभी का उपयुक्त समिश्रण होना चाहिये। प्रचुर मात्रा में रसायनिक तत्वों का भी मिश्रण आवश्यक है। रसायनिक विपलेषण से भूमि के तत्वों की अवस्था का ज्ञान होता है। सन्तरे के लिये प्राप्त भारतीय ७०००५ प्रतिशत, संजि ०.०२०५ प्रतिशत, भयाति ०.०६५१ प्रतिशत का होना आवश्यक है। भूमि का उष्णतामान ७.६ के लगभग होना चाहिये। भूमि की बनावट ऐसी होनी चाहिये जिसमें वायुप्रवेश और पानी का निथार सुगमता से हो। नागपुर की भूमि मुख्यतः काली कपास की मिट्टी है। विद्वानों का मत है कि कालापन मैंगनीज औषद की उपस्थिति से हैं। ३–६ फीट गहरी मिट्टी हो और उसमें मोटी रेत का समावेश हो तो

फसल अच्छी होती है। कुछ ऐसी भूमि भी नागपुर में है जो हल्की है। उसमें मोटी रेत नहीं हैं। वह भी फसल के लिये अच्छी है। ढालू भूमि या कछार की भूमि पर भी सन्तरे के बाग हैं। उपज ऐसी भूमि पर अच्छी होती है।

जलवायु के दृष्टिकोण से यदि देखा जाय तो संतरे के लिये नागपुर से अच्छी जलवायु कहीं नहीं मिलेगी। संतरे की दो फसलों में से पहली फसल में फूल वर्षा के आगमन पर निकलते हैं। इस समय का तापमान और आद्र्रता सन्तरों के लिये आदर्श है। प्रकाश का विलीख और उसकी प्रखरता फूलों के फलने में सहायक होती है। २४°-३२° के लगभग तापमान में फूल लगने में सहायक रसायन (हारमान) का सृजन पौधों में सुगमता से होता है यह रसायन अपने अन्य स्थल से निकलकर पुष्पवृति की ओर जाते हैं। और पुनः प्रकाश की प्रखरता में फूल से फल बनने में सहायक होते हैं। फलों के पकने के समय दिन की अवधि कुछ कम होने लगती है। पहली फसल वाले फल कुछ खट्टे होते हैं। कारण यह कि अम्ल का शक्कर में पूर्ण रूप से परिवर्तन नहीं हो पाता।

दूसरी फसल में जब प्रकाश अवधि सापेक्षतया अन्धकार से छोटी होती है तब फूल आते हैं और जैसे जैसे दिन का तापमान बढ़ने लगता है फल आते हैं। पकने के समय बढ़ता हुआ तापमान पूर्ण रसायनिक परिवर्तन में सहायक होता है। यही कारण है कि गर्मी के सन्तरे अधिक मीठे होते हैं। प्रकाश अन्धकार को अवधि का दैनिक तापमान तथा फलों के पकने में घनिष्ट सम्बन्ध है। उच्च तापमान पर अम्ल का शक्कर में परिवर्तन शीघ्र और प्रचुर मात्रा में होता है। लियौनार्ड तथा बर्निल १९४१,४२ किड और वेस्ट इत्यादि वैज्ञानिकों ने इस बात की पुष्टि की है कि उच्च तापमान फलों के पकने में सहायक ही नहीं गुणकारी भी है। कहना न होगा कि नागपुर का तापमान जनवरी के मध्य से बढ़ना आरम्भ होता है, बढ़ते हुए ताप से मृलीय सन्तरों की श्वास-प्रश्वास क्रिया भी बढ़ती है और उससे सम्बन्धित रसायनिक परिवर्तन भी उनके शरीर में होता है। इस क्रिया में औषजन और हाइड्रोजन का आदान प्रदान होता है। कुछ ऐसे तत्व हैं जो हाइड्रोजन प्रदान करने में सहायक होते हैं। विटैमिन सी की उपस्थिति इस कार्य में नितान्त आवश्यक है। विटैमिन सी को एसकार्बिक अम्ल भी कहते हैं। पौधों की रिडाक्स प्रणाली में इसका बड़ा महत्व है। इस सब क्रियाओं से फलों की गुर्फे भी बढ़ती हैं।

जलवायु नागपुर के सन्तरों की वृद्धि और गुणों के बढ़ाने में सहायक है। खाद्य आवश्यकताओं के विषय में कोई निश्चित नियम तो नहीं है, पर कुछ बातें ध्यान में अवश्य लानी चाहिये। शुरू में बढ़ते हुये पौधों की भ्यानि : एन : अधिक मात्रा में मिलनी चाहिये। इससे बाढ़ अधिक होती है और जड़ें फैलती हैं। मिट्टी का रसायनिक अन्वेषण ही खाद्य स्थिति बताने में सहायक नहीं होता, सिंचाई के साधन, वर्षा और भूमि की बनावट सब पर ही खाद्य-स्थिति स्थिर रहती है। तत्वों की न्यूनता और अधिकता से भी फसलों की हानि होती है। मिट्टी का घोल निरंतर परिवर्तन शील प्रणाली है। खाद का प्रयोग विषैले प्रभावों को दूर करता है। फिर भी सन्तरों की स्वस्थ वृद्धि के लिए जो तत्व आवश्यक हैं वह तत्व मिट्टी से या डाले हुये खाद्यों से प्राप्त होते हैं। उनके न होने पर रोग लगने की सम्भावना होती है। भारतीय की कमी के कारण पत्तियों पर जलने के सदृश कत्थई दाग पड़ जाते हैं और फलों के छिलके कड़े होते हैं।

(आकाशवाणी के सौजन्य से)
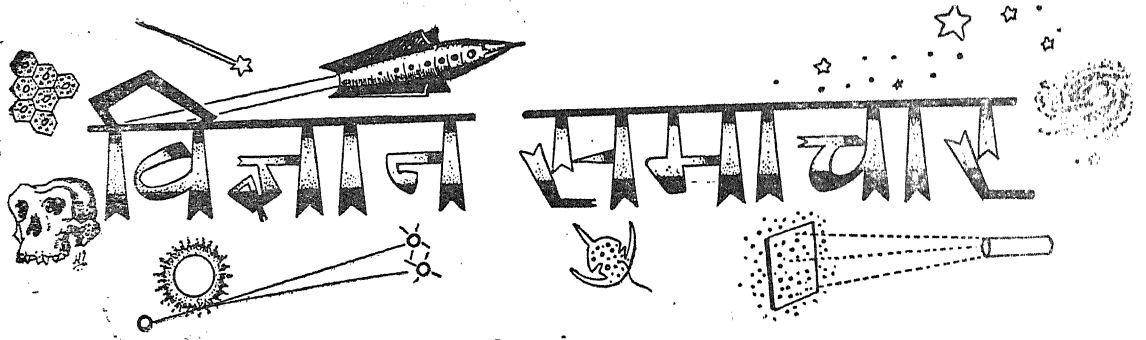
आमाशय के कैंसर के बारे में अध्ययन

न्यूयार्क नगर के स्वास्थ्य-विभाग ने आमाशय के कैंसर के बारे में दीर्घकालीन अध्ययन के प्रथम चरण को पूरा कर लिया है। ६ हजार व्यक्ति इस अध्ययन-कार्य में संलग्न रहे हैं। इस अध्ययन को पूरा करने में ३ से ५ वर्ष तक लगेंगे। पांच अस्पताल, चिकित्सकों का एक गैर-सरकारी दल तथा स्वास्थ्य-विभाग का कैंसर निदान एवं उपचार-विभाग, सभी मिल कर यह पता लगाने के लिए उक्त अध्ययन कर रहे हैं कि आमाशय में विद्यमान अम्ल (ऐसिड) तथा कैंसर का परस्पर क्या सम्बन्ध रहता है और आमाशय के कैंसर (नासूर) तथा आमाशय के फोड़ों में सम्भवतः क्या सम्बन्ध रहता है।

मौसम सम्बन्धी अध्ययन

अमेरिका के प्रमुख वैज्ञानिकों के एक दल ने एक संस्था की स्थापना की है, जो इस बात का अध्ययन करेगी कि मौसम का मनुष्य पर क्या असर पड़ता है।

'अमेरिकन इन्स्टिट्यूट औव् मैडिकल क्लाइमैटौलौजी,' ने जिसे अनौपचारिक रूप से काम करते लगभग एक वर्ष हो गया है, कार्य-संचालन सम्बन्धी निर्देशन के लिए अधिकारियों के एक मण्डल को नियुक्त किया है। पैन्सिल्वेनिया विश्वविद्यालय के ग्रेजुएट स्कूल औव् मैडिसन के डीन डा० जौर्ज एम. पियरसोल को अध्यक्ष चुना गया है।

भारतीय छात्र अमेरिकी विश्वविद्यालय में

बंगलौर निवासी भारतीय छात्र श्री रमेश भटनागर इस समय कोलोराडो विश्वविद्यालय में सूर्य एवं रेडियो-नक्षत्रों के रहस्यों का पता लगा रहे हैं। वह इस विश्वविद्यालय द्वारा संचालित नक्षत्रीय भूभौतिक शास्त्र सम्बन्धी कार्यक्रम के अन्तर्गत सूर्य के प्रभा-मण्डल एवं रेडियो-नक्षत्रों के बारे में अनुसन्धान कर रहे हैं।

दिल्ली विश्वविद्यालय से बी० ए० एवं एम० ए० की उपाधि प्राप्त करने के बाद श्री भटनागर उक्त विश्वविद्यालय में इस पतझड़ में ही प्रविष्ट हुए थे। उक्त विश्वविद्यालय से ही मिली छात्रवृत्ति के अन्तर्गत वह नक्षत्रीय भूभौतिक शास्त्र सम्बन्धी पी. एच. डी. की उपाधि प्राप्त करने के लिए अध्ययन कर रहे हैं। उन्होंने अभी तक अध्ययन के लिए कोई विशिष्ट विषय नहीं चुना है।

श्री भटनागर ने कहा कि सूर्य के प्रभा-मण्डल में मेरी अतीव रुचि है और सम्भवतः बाद में मैं इस क्षेत्र के बारे में कुछ विशिष्ट अनुसन्धान कर सकूं। इस समय वह उच्च ऊंचाई सम्बन्धी वेधशाला के अनुसन्धान-अधिकारी श्री जेम्स वारविक से सूर्य के बारे में और नेशनल ब्यूरो औव् स्टैण्डर्ड्स के श्री डेविड गेट्स से भूभौतिक शास्त्र के बारे में शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं।

ध्वनि-तरंगों द्वारा धातुओं को जोड़ने की विधि

अमेरिका की एक कम्पनी ने शक्तिशाली ध्वनि-तरंगों द्वारा धातुओं को जोड़ने की विधि का विकास किया है। 'वैस्टिंग हाउस इलैक्ट्रिक कारपोरेशन' के डा० सी० ई० अनिटजन ने बताया कि उक्त बिधि के बारे में अभी अनुसन्धान-कार्य जारी है। इस विधि को 'अल्ट्रा-सोनिक सीम वैल्डिंग' कहते हैं और एक दिन इसे सफलता-पूर्वक व्यवहार में लाया जा सकेगा। इस विधि के अन्तर्गत बिजली और बाहरी ताप के प्रयोग के बिना ही धातुओं को जोड़ा जा सकेगा।

घोंघे की प्रागैतिहासिक नस्लों की उपलब्धि

अमेरिकी वैज्ञानिको को समुद्र में पाये जाने वाले छोटे जीव मिले हैं जिन्हें आधुनिक घोंघे की प्रागैतिहासिक नस्लें समझा जाता है और ऐसा विश्वास किया जाता है कि ये ३० करोड़ वर्ष पहले ही विनष्ट हो गये थे।

कोलम्बिया विश्वविद्यालय के अनुसन्धानात्मक जहाज 'वैमा' पर यात्रा करने वाले, अन्वेषण में रत अमेरिको वैज्ञानिकों को घोंघे की ये प्राचीन नस्लें प्रशांत सागर से २०० मील पश्चिम में स्थित लीमा (पेरू) में मिली थीं।

रोगों के प्रसार रोकने के नये उपकरण

एशिया में रोगों के प्रसार को रोकने के लिए अमेरिकी अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग प्रशासन टीका लगाने के काम में प्रयुक्त होने वाले तीन नये उपकरण खरीद रहा है। प्रत्येक उपकरण एक घन्टे में १००० रोगियों को टीका लगाने की क्षमता रखता है। इन तीन उपकरणों में से एक उपकरण को यहां रखा जाएगा, ताकि जब भी एशिया में कहीं रोगों का प्रसार हो तो वहाँ इसे प्रयुक्त किया जा सके।

विश्वविद्यालय में टैलिविजन की व्यवस्था

मिशिगन राज्य विश्वविद्यालय तथा टैलिविजन की एक कम्पनी मिल कर शीघ्र ही एक मिला-जुला कार्यक्रम प्रसारित करेंगे, ताकि अधिक से अधिक श्रोतागण लाभ उठा सकें। दिन के समय छात्रों के हितार्थ कार्यक्रमों को प्रसारित किया जायेगा और दोपहर तथा रात्रि को टैलिविजन कम्पनी अपने श्रोताओं के लिए नियमित कार्यक्रमों को जारी रखेगी। इस नई व्यवस्था के अन्तर्गत ४० लाख से भी अधिक श्रोताओं को टैलिविजन की सेवायें प्राप्त हो सकेंगी।

विदेशों में अध्ययनार्थ रोटरी संस्था द्वारा छात्रवृत्तियां

'रोटरी इण्टरनेशनल' संस्था द्वारा संचालित रोटरी प्रतिष्ठान ने १९५९-६० वर्ष के लिये ३४ देशों के १३० होनहार स्नातक छात्रों को विदेशों में अध्ययनार्थ छात्र-वृत्तियां प्रदान की हैं। २० से २९ वर्ष की आयु वाले छात्रों को अपने देशों की रोटरी सिविक क्लबों ने ही चुना था। भारत तथा संयुक्त अरब गणराज्य के छात्रों को भी उपर्युक्त संस्था ने चुना है।

अमेरिकी विश्वविद्यालय के एक दल द्वारा भारत का दौरा

आर्थिक विकास सम्बन्धी सामाजिक नीति तथा श्रमिकों एवं प्रबन्धकों की समस्याओं के बारे में अनुसंधान करने के लिये अमेरिकी विश्वविद्यालय का एक दल शीघ्र ही एशिया और निकटपूर्व के लिये प्रस्थान करेगा, ताकि यहां के अधिकारियों के साथ गोष्ठियों में विचार-विमर्श किया जा सके।

मस्तिष्क सम्बन्धी रोग के विषाणु-वाहक मच्छर का पता चल गया

वाल्टर रीड आर्मी मेडिकल सेण्टर के वैज्ञानिकों ने यह रिपोर्ट दी है कि उन्होंने मलाया में पाये जाने वाले एक ऐसे मच्छर का पता लगाया है, जो दक्षिण-पूर्वी एशिया के क्षेत्रों में एक विशिष्ट रोग के विषाणुओं का प्रसार करता है। इस मच्छर को 'कूलैक्स-जेलीडस' कहते हैं। उक्त वैज्ञानिकों का कथन है कि यह मच्छर मस्तिष्क सम्बन्धी रोग तथा उन विषाणुओं को जिन के बारे में

चिकित्सकों को अब तक पता नहीं चला है, एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाता है।

मौसम सम्बन्धी चल-चित्र उतारने का उपकरण

अधिक ऊँचाई पर मौसम सम्बन्धी चल-चित्रों को तैयार करने के लिए एक उपकरण तैयार किया गया है, जिसे 'राकेट मूवी स्टूडियो' कहते हैं।

वाईकाउंट विमान में पेट्रोल भरने का यन्त्र

भारत में पहली बार एक ऐसा यन्त्र बनाया गया है, जिनके द्वारा वाईकाउन्ट विमान में नीचे की टंकी में पेट्रोल भरा जा सकता है। पेट्रोल पहुँचाने के पम्प इस ढंग से बनाये गये हैं कि जमीन की पेट्रोल की टंकी से पेट्रोल ट्रक में होकर विमान की टंकी में आसानी से पेट्रोल पहुंचाया जा सकता है। पेट्रोल पहुंचाने के लिए यन्त्र एक सा दवाव भी बनाये रखता है। इस यन्त्र का मूल्य ६० हजार रु० हैं, जो विदेशी यन्त्र के मूल्य का करीब ३५ प्र० श० है।

* * *

हाथ से कागज बनाने की नयी मशीन

देश में हाथ के कागज का घरेलू धन्धा काफी पुराना और व्यापक है। किन्तु इसके तरीके और उपकरण बड़े पुराने ढंग के हैं। इस कारण इनमें सुधार की काफी गुन्जाइश है। हैदराबाद की क्षेत्रीय अनुसंधानशाला ने इस उद्योग को वैज्ञानिक ढंग से उन्नत करने के प्रयत्न किये। इसने केवल ऐसी किस्मों का बढ़िया कागज बनाने का प्रयत्न किया जो मिलों में नहीं बनता जैसे, ड्राइंग का कागज, बांड और अन्य दस्तावेजों का कागज, स्याही सोख, सफेद कार्ड इत्यादि। जिन कारीगरों ने यह कागज बनाने के परीक्षण किये हैं, उन्हें पूरा विश्वास है कि उनका कागज बहुत अच्छा है।

हैदराबाद की प्रयोगशाला में कागज की परीक्षा और कागज बनाने के काम आने वाले कच्चे माल के बारे में भी जांच-पड़ताल की गई है। प्रयोगशाला कागज बनाने वालों को आवश्यक सलाह भी देती है।

काले सीसे की बेहतर मूषा

जमशेदपुर की राष्ट्रीय धातु प्रयोगशाला ने मिट्टी लगे हुए काले सीसे (ग्रेफाइट) की मूषा (क्रुसिबल) बनाने की नयी विधि निकाली है। इस विधि के अनुसार मूषा के मसाले को मिलाने की क्रिया, चमकाने के मसाले की रचना और इसको लगाने का और भट्टी में पकाने का तरीका प्रचलित तरीके से काफी भिन्न है। नये तरीके से मूषा बनाने का जो आजमाइशी यन्त्र लगाया गया है, उससे कई प्रकार के और भिन्न-भिन्न ताप सह सकने वाली मूषाएँ बनायी गयी हैं।

काले सीसे की मूषाओं में तांबा और अन्य अलौह धातुएँ पिघलाई जाती हैं। इस समय भारत में राजासुंदरी और अन्य कई स्थानों में मूषाएँ बनाई जाती हैं, फिर भी विदेशों से काफी मूषाएँ मंगानी पड़ती हैं। १९५७ में भारत ने विदेशों से १६, २५, २६३ रु० की मूषाएँ मंगायी। देशी मूषाएँ इतनी बढ़िया भी नहीं होतीं। किन्तु नयी विधि से बढ़िया मूषाएँ बनायी जा सकती हैं और उत्पादन भी इतना बढ़ सकता है कि विदेशों से मंगाने की जरूरत ही न रह जाय।

* * *

भारतीय क्रिकेट खिलाड़ियों के लिए हल्के 'लैगगार्ड'

भारत के क्रिकेट खिलाड़ियों को यह जानकर हर्ष होगा कि नयी दिल्ली के लघु उद्योग सेवा संस्थान ने उनके लिए हल्के 'लैगगार्ड' तैयार किये हैं। अभी तक देशी 'लैगगार्डों' में बेकार कपास भरी जाती है, जो इनको भारी बना देती हैं। इसी कारण विदेशी 'लैगगार्ड' अधिक पसंद किये जाते हैं। उक्त संस्थान ने लैगगार्डों में घूहा (कपोक) भरने का प्रयोग किया और इसे बहुत उपयोगी पाया है। इससे खिलाड़ी के पैरों की गेंद से उतनी ही रक्षा होगी, जितनी ऊन आदि से होती है और साथ ही यह बहुत हल्का भी रहेगा। आशा है घूहे के भरे हुए लैगगार्ड विदेशी लैगगार्डों के समान ही पसंद किये जायेंगे।

हमारा भोजन और टेपियोका

मैसूर की केन्द्रीय खाद्य शिल्प अनुसंधानशाला ने, ४६ पृष्ठ की एक पुस्तिका निकाली है, जिसमें केरल में टेपियोका की खेती के विस्तार और भोजन में इस कंद की उपयोगिता के बारे में अच्छी जानकारी दी गयी है। पुस्तिका में समझाया गया है किस प्रकार यह कंद हमारे भोजन का पौष्टिक तत्व बन सकता है।

पुस्तिका में देशवाशियों का ध्यान इस बात की ओर खींचा गया है कि टेपियोका आदि कंद हमारी खाद्य समस्या को हल करने में सहायक हो सकते हैं। इसमें टोपियोका की खेती के बारे में भी काफी तथ्य संग्रहीत किये गये हैं।

पुस्तक परिचय

बिश्व विज्ञान

लेखकः—**श्री हरिशरणानन्द जी वैद्य**

प्रकाशकः—**आयुर्वेद विज्ञान ग्रन्थ माला कार्यालय, अमृतसर।**

प्रथम संस्करणः—**मूल्य ३.०० रू०। पृष्ठ संख्या २१५**

श्री हरिशरणा नन्द जी वैद्य अपने आयुर्वेदिक साहित्य के लिए हिन्दी जगत में समूचित ख्याति प्राप्त कर चुके हैं। वैद्य जी के लिखित अनेक ग्रन्थ अब तक प्रकाशित हो चुके हैं। आपने त्रिदोष सिद्धान्त के विरोध में आयुर्वेदिकों का भी ध्यान आकर्षित किया था वह एतिहासिक महत्ता का है। स्वामी जी का आयुर्वेद रसायन का व्यवहारिक और सैद्धान्तिक ज्ञान अच्छा है। आप आधुनिक रसायन के विकास से भी परिचित हैं और आप उन प्रगतिशील व्यक्तियों में से हैं जो वैज्ञानिक अनुसन्धानों से लाभ प्राप्त करने के लिए सर्वदा तत्पर रहते हैं। यह हर्ष की बात है कि श्री हरिशरणानन्द जी ने विश्व विज्ञान सम्बन्धी यह महत्वपूर्ण पुस्तक हमारे समक्ष रक्खी है। इस पुस्तक में सात परिच्छेद है जिसमें विश्व विस्तार, विद्युत, प्रकाश, विविध रश्मियां, परमाणु, तत्व, परिवर्तन, गुरूत्वाकर्षण, पृथ्वी, और उसके पर्वतों का जन्म, भूकम्प, जीवनोत्पत्ति सम्बन्धी विविध खंड, बायुमंडल, जलमंडल, आदि विषयों पर रोचक, सरल और उपयोगी विवरण दिए हैं। लेखक की शैलो सरल और भाषा प्रांजल है। पाठकों से हमारा अनुरोध है कि श्री हरिशरणानन्द जी के इस उपयोगी ग्रन्थ से समुचित लाभ उठावें। पुस्तक के अंत में पारिभाषिक शब्दों की एक सूची हैं। लेखक से हमारा अनुरोध यह है कि वह इस पुस्तक के आगामी संस्करण में उस शब्दावली का प्रयोग करे जिसे भारतीय शासन द्वारा मान्यता प्राप्त हो चुकी है।

घुमक्कड़ स्वामी

लेखकः—**राहुल सांकृत्यायन**

प्रकाशकः—**किताब महल, इलाहाबाद, दिल्ली**

पृष्ठ संख्याः—१६८ **मूल्य ३.०० रु०**

इस पुस्तक के लेखक हिन्दी के लब्ध प्रतिष्ठ महा पंडित श्री राहुल सांकृत्यायन हैं। पुस्तक में श्री वैद्य हरिशरणानन्द जी के उस प्रारम्भिक जीवन का मनोरंजक विवरण दिया है जो वैद्य जी ने सन्यासी के रूप में बिताया था। राहुल जी ने अपनी शुद्ध भाषा में बहुत ही सरल और सरस शैली में श्री हरिशरणानन्द जी के कर्मठ जीवन का उल्लेख किया है। हम राहुल जी के कृतज्ञ हैं कि उन्होंने एक ऐसे व्यक्ति के जीवन की झांकी हमारे सामने प्रस्तुत की है जिसने उच्च आदर्शवाद को व्यवहारिक रूप से सत्य सिद्ध करके हमारे समक्ष रक्खा। पुस्तक रोचक और पठनीय है।

हिन्दी का उन्नति के लिए काम

हिंदी की उन्नति के लिए, दूसरी पंचवर्षीय योजना के अंतर्गत पिछले साल जो काम शुरू किये गये थे, वे इस साल और आगे बढ़े। ३१ दिसम्बर, १९५८ तक विविध विषयों के १ लाख ४० हजार पारिभाषिक शब्दों के हिन्दी पर्याय गढ़े गये। इनमें से ३३,६०० को भारत सरकार स्वीकार कर चुकी है और ७,२९८ शब्द, मंत्रि-मंडल के विचारार्थ गये हुए हैं। शिक्षा मंत्रालय में, हिंदी में विज्ञान तथा शिल्प शब्दकोष तैयार करने के लिए, एक अलग विभाग बनाया गया है।

संस्कृत आयोग ने जो सिफारिशें की थीं, उनके अनुसार संस्कृत शिक्षा को बढ़ाने के लिए गैर सरकारी संस्थाओं को सहायता देने की योजना बनाई गयी है। इसके अलावा, संस्कृत के व्यापक प्रचार के बारे में, सरकार को सलाह देने के लिए, केन्द्रीय संस्कृत मन्डल की स्थापना पर भी विचार किया जा रहा है।

मंत्रालय के खर्च में बचत करने के कई उपाय किये गये हैं। उनमें से एक केन्द्रीय शिक्षा पुस्तकालय और केन्द्रीय सचिवालय पुस्तकालय को एक करने के बारे में है। जनवरी से मार्च १९५८ की अवधि में, शिक्षा सम्बंधी २१ प्रकाशन और अप्रैल से दिसम्बर १९५८ तक ४७ प्रकाशन मंत्रालय की ओर से निकाले गये। इनमें से कुछ किन्हीं विषयों पर हैं और कुछ सामान्य उपयोग के हैं।

शिक्षा मंत्री डा० कालूलाल श्रीमाली ने हाल में राज्य-सभा में श्री राम सहाय में प्रश्न के लिखित उत्तर में सदन के सामने एक विवरण रखा था जिसमें बताया गया है कि हिन्दी में संदर्भ पुस्तकें, कोश और पारिभाषिक विश्वकोश तैयार करने में कितना काम हो चुका है।

विवरण में बताया गया है कि (१) भौतिक शास्त्र (शुद्ध), (२) भौतिक विज्ञान (व्यावहारिक, और (३) समाज विज्ञान के इतिहास तैयार करने का काम क्रमशः इलाहाबाद, जबलपुर और लखनऊ विश्वविद्यालयों को सौंपा गया है।

भारतीय मुहावरों और नीतिकथाओं का कोश तैयार करने का काम काशी हिंदू विश्वविद्यालय को और भारतीय पुराख्यानों का विश्वकोश तैयार करने का काम अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय को सौंपा गया है।

मंत्रालय ने जो वैज्ञानिक तथा पारिभाषिक शब्द तैयार किये हैं, उनका एक उपयुक्त शब्दकोश तैयार करने का काम शुरू कर दिया है। इसके लिए मंत्रालय एक पारिभाषिक शब्दकोश खण्ड खोला गया है, जिसमें एक प्रधान सम्पादक और कुछ विषय-सम्पादक हैं।

हिंदी साहित्य सम्मेलन को अंग्रेजी-हिंदी शब्दकोश तैयार करने के लिये अनुदान दिया जा चुका है। इस शब्दकोश का काम लगभग पूरा हो चुका है। इसके अलावा 'कन्सा इज आक्सफोर्ड डिक्शनरी' के अनुरूप ही एक अंग्रेजी हिंदी शब्दकोश तैयार करने के लिए इलाहाबाद की हिंदुस्तानी कल्चर सोसाइटी को भी अनुदान दिया गया है।

वनस्पति शास्त्र रसायन शास्त्र के हिन्दी मैनुअल तैयार हो चुके हैं और प्रकाशन के लिए स्वीकृत भी हो गए हैं। इसके अलावा भौतिकशास्त्र और कृषिशास्त्र के मैनुअल भी तैयार हो गए हैं और उनकी जांच की जा रही है।

उन्होंने कहा कि इन सभी कामों में प्रगति हो रही है और १९५९ में भी ये काम जारी रहेंगे।

लेखकों से निवेदन

१—रचना कागज के एक ही ओर स्वच्छ अक्षरों में पर्याप्त पार्श्व एवम् पंक्तियों के बीच में अन्तर देकर लिखी होनी चाहिये। यदि टाइप की हुई हो तो और भी अच्छा है।

२—चित्रों से सज्जित गवेषणापूर्ण लेखों को "विज्ञान" में प्राथमिकता दी जावेगी।

३—प्रेषित रचना की प्रतिलिपि अपने पास रक्खें। आवश्यक डाक टिकट प्राप्त होने पर ही अस्वीकृत रचना लौटाई जावेगी।

४—स्वीकृति की सूचना यथा सम्भव शीघ्र ही दी जवेगी। किसी भी लेख में संशोधन, संवर्धन अथवा परिवर्तन करने का अधिकार सम्पादक को होगा।

५—"विज्ञान" में प्रकाशित लेखों पर "विज्ञान" का पूर्ण अधिकार होगा।

नीचे लिखे पते पर पत्र व्यवहार करें—

प्रकाशन विभाग

विज्ञान-परिषद्, विज्ञान-परिषद्-भवन

म्योर कालेज, थार्नहिल रोड,

इलाहाबाद—२

विज्ञान

रजिस्टर्ड नं० ए० ३७२

अप्रैल १९५९

उत्तर प्रदेश, बम्बई, मध्यप्रदेश, राजस्थान, बिहार, उड़ीसा, पंजाब तथा आंध्र प्रदेश के शिक्षा विभागों द्वारा स्कूलों, कालिजों और पुस्तकालयों के लिये स्वीकृत

विषय-सूची

प्रधान सम्पादक—डा० देवेन्द्र शर्मा

प्रकाशक--डा० डी० एन वर्मा, प्रधान मंत्री, विज्ञान परिषद, इलाहाबाद।

मुद्रक—श्री दीनानाथ भार्गव, तीर्थराज प्रेस, ९३ चक इलाहाबाद—३।

भाग ८९ संख्या २

मई १९५९ वृष २०१६ विक्र०, वैशाख १८८१ शा०

वार्षिक मूल्य ४ रुपए] [इस अङ्क का मूल्य ४० नए पैसे

विज्ञान परिषद् के मुख्य नियम

१—१९७० वि० या १९१३ ई० में विज्ञान परिषद् की इस उद्देश्य से स्थापना हुई कि भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक साहित्य का प्रचार हो तथा विज्ञान के अध्ययन को और साधारणतः वैज्ञानिक खोज के काम को प्रोत्साहन दिया जाय।

२—परिषद् में सभ्य होंगे। निर्दिष्ट नियमों के अनुसार साधारण सभ्यों में से ही एक सभापति, दो उप-सभापति, एक कोषाध्यक्ष, एक प्रधान मन्त्री, दो मन्त्री एक सम्पादक और एक अन्तरंग सभा निर्वाचित करेंगे जिनके द्वारा परिषद् की कार्यवाही होगी।

२२—प्रत्येक सभ्य को ६) वार्षिक चन्दा देना होगा। प्रवेश शुल्क ३) होगा जो सभ्य बनते समय केवल एक बार देना होगा।

२३—एक साथ १०० रु० की रकम देने से कोई भी सभ्य सदा के लिये वार्षिक चन्दे से मुक्त हो सकता है।

२६—सभ्यों को परिषद् के सब अधिवेशनों में उपस्थित रहने का, अपना मत देने का, उनके चुनाव के पश्चात् प्रकाशित परिषद् की सब पुस्तकों, पत्र, तथा विवरण इत्यादि को बिना मूल्य पाने का—यदि परिषद् के साधारण धन के अतिरिक्त किसी विशेष धन से उनका प्रकाशन न हुआ हो—अधिकार होगा। पूर्व प्रकाशित पुस्तकें उनको तीन चौथाई मूल्य में मिलेंगी।

२७—परिषद् के सम्पूर्ण स्वत्व के अधिकारी सभ्य-वृन्द समझे जायेंगे।

विज्ञान

विज्ञान परिषद् प्रयाग का मुख-पत्र

विज्ञान ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञान जानेतानि जीवन्तिविज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्ति। तै० उ० ।३।५।

भाग ८६	वृष २०१६ विक्र०; बैसाख १८८१ शाकाब्द; मई १९५९	संख्या २

अन्तरिक्ष-अभियान की तैयारी

मानव की जिज्ञासा का कोई अन्त नहीं। अपने ग्रह के सभी भागों की खोज कर लेने के उपरांत खोज करने की उसकी जिज्ञासा शांत होने के स्थान पर और अधिक तीव्र हो गई है और अब वह इस समस्त सृष्टि के अनन्त रहस्यों का उद्घाटन करने के लिए कमर कस मैदान में उतर पड़ा है।

यह तो निश्चित सा प्रतीत होता है कि निकट-भविष्य में एक दिन ऐसा अवश्य आने वाला है, जब मनुष्य अन्तरिक्ष यान पर सवार होकर चन्द्रलोक में सशरीर उतर सकेगा और सम्भवतः सौरमण्डल के अन्य अनेकों ग्रहों की यात्रा भी कर सकेगा।

आज वैज्ञानिकों के समक्ष सबसे बड़ा प्रश्न यह उपस्थित है कि इस अन्तरिक्ष यात्रा के लिये किस प्रकार के यान का विकास किया जाये? अन्तरिक्ष में छोड़े जाने वाले राकेटों और भू-उपग्रहों का एक प्रमुख लक्ष्य इस अन्तरिक्ष यान के निर्माण के सम्बन्ध में अधिकाधिक जानकारी और तथ्यों का संग्रह करना भी है। यद्यपि अभी कोई यह भविष्यवाणी नहीं कर सकता कि मनुष्य अन्तरिक्ष में कब यात्रा कर सकेगा और न अभी तक किसी ऐसे यान का परीक्षण ही किया गया है, जो मनुष्य को अन्तरिक्ष में ले जाकर उसे सकुशल पृथ्वी पर वापस ले आये। फिर भी, अन्तरिक्ष-यात्रा अब कल्पना की वस्तु नहीं रह गई। आज नहीं तो १० वर्ष के अंदर मनुष्य निश्चय ही इस प्रकार का साहसिक प्रयत्न करने वाला है।

अमेरिका तथा संसार के अन्य देशों के वैज्ञानिक आज उन समस्याओं के अध्ययन में संलग्न हैं, जिनका सुलझाना अन्तरिक्षगामी यान के निर्माण की दृष्टि से परमावश्यक है। एक ओर अमेरिकी इंजिनियर और वैज्ञानिक अन्तरिक्ष उड़ान तथा उसके लिए प्रयुक्त किए जाने वाले यानों के डिजाइनों इत्यादि के सम्बन्ध में निरंतर अनुसन्धान और परीक्षण कर रहे हैं, तो दूसरी ओर कल्पनाशील अमेरिकी इंजिनियर तथ्यों और कल्पना के संयोग से भावी अन्तरिक्ष-यान की रूपरेखा तैयार करने में जुटे हुये हैं।

मनुष्य का पहला लक्ष्य चन्द्रमा है परंतु वहां उतरने के पहले वहां की परिस्थितियों तथा मार्ग में पड़ने वाली बाधाओं की जानकारी प्राप्त कर लेना अनिवार्य है।

अन्तरिक्ष परीक्षणशाला

इस समस्त जानकारी को प्राप्त करने के उद्देश्य से वैज्ञानिकों ने सर्वप्रथम एक अन्तरिक्ष परीक्षणशाला की स्थापना करने का विचार किया है।

टेलिविजन, टेलिस्कोप और रडार इत्यादि यंत्रों से पूर्ण रूप से सुसज्जित गेंद के आकार की इस अन्तरिक्ष परीक्षणशाला की कल्पना 'राकेट डाइन' नामक अमेरिकी कम्पनी के वैज्ञानिकों ने की है। ६० फुट की गेंद के आकार की इस परीक्षणशाला का वजन २ लाख ५० हजार पौण्ड होगा और अमेरिका के अत्यधिक शक्तिशाली राकेट द्वारा यह पृथ्वी से २२ हजार मील की ऊंचाई पर स्थापित की जायेगी। इसके द्वारा अन्तरिक्ष के अनुसंधान में बहुत सहायता मिलेगी। अन्तरिक्ष-परीक्षणशाला से चन्द्रमा के सम्बन्ध में समस्त आवश्यक जानकारी प्राप्त करने के बाद वैज्ञानिक उस पहले मानव-रहित यान का निर्माण करेंगे, जो चन्द्रमा की परिक्रमा कर पृथ्वी पर वापस लौट आयेगा।

कैमरे की फ्लैश लाइट यंत्र के आकार का एक ऐसा मानव-रहित यान पहली बार एक अन्तरिक्ष स्टेशन से उड़ कर चन्द्रमा की परिक्रमा करेगा। इस यान में रेडियो-टेलिस्कोप और टेलिविजन तथा अन्य यंत्र फिट रहेंगे, जो चन्द्रमा के सम्बन्ध में सभी आवश्यक तथ्य संग्रहीत कर पृथ्वी को भेजेंगे। यह यान सूर्य-शक्ति से चलेगा और पृथ्वी से १५ हजार मील ऊपर उड़ान भरेगा। यह अन्य अन्तरिक्ष यानों के पथ-प्रदर्शन का भी कार्य कर सकेगा।

अयन-शक्ति चालित मानवयुक्त चन्द्रयान

मानव रहित राकेट यान द्वारा चंद्रमा की परिक्रमा कर लेने के उपरांत मनुष्य स्वयं अन्तरिक्ष यान में बैठ कर चंद्रमा के धरातल पर उतरने का प्रयत्न करेगा। इस यात्रा के लिये अमेरिका की मार्टिन कम्पनी के वैज्ञानिकों ने एक ऐसे अयन-शक्ति चालित यान की कल्पना की है, जिसका आकार बहुत कुछ चतुष्पाद हलिकोप्टर जैसा प्रतीत होता है, और जिसके डैने में तेज गति से चक्कर काटने वाले पंखे फिट होंगे। तेज गति से घूमने वाले यह पंखे यान को चन्द्रमा पर धीमी गति से उतारने में मदद देंगे। इस अयनशक्ति-चालित यान में एक साथ कई व्यक्ति सफर कर सकेंगे। यह यान अपने पथ और लक्ष्य पर अग्रसर होने के लिए सूर्य से मार्ग दर्शन प्राप्त करेगा और अपने साथ जल, भोजन और वायु का भण्डार भी ले जा सकेगा। यद्यपि अभी यह कल्पना ही है, परंतु यह सत्य है कि अमेरिका में वैज्ञानिक अयन-शक्ति-चालित राकेटों के विकास के लिये प्रयत्नशील हैं।

मार्टिन कम्पनी के वैज्ञानिक भी मनुष्य को अन्तरिक्ष में ले जाने वाले राकेट यान के निर्माण के सम्बन्ध में गम्भीरतापूर्वक कार्य कर रहे हैं। उन्होंने इसके लिये फाउण्टेन के आकार का चतुष्पाद राकेट यान का कल्पना-चित्र तैयार किया है, जिस पर मानव सभी खतरों से सुरक्षित रह कर यात्रा कर सकेगा औप पुनः सकुशल पृथ्वी पर लौट आयेगा।

चन्द्रमा पर रहने के लिए घर

चन्द्रमा के धरातल पर उतरने के बाद मनुष्य के समक्ष सबसे बड़ी समस्या रहने की होगी, क्योंकि वहां न तो कोई वायुमण्डल है, न हवा है और न पानी। अन्तरिक्ष से प्रबल वेग से आने वाली उल्काओं से भी रक्षा करने की आवश्यकता पड़ेगी। अमेरिकी वैज्ञानिकों ने इस आवश्यकता को पहले से ही अनुभव कर लिया है और उन्होंने एक ऐसे मकान का कल्पना-चित्र भी तैयार कर लिया है, जिस में चन्द्रमा पर उतरने वाला मानव सुरक्षित रह सकेगा। रेल के इंजन के अग्र भाग से मिलते-जुलते इस घर में एक परीक्षणशाला, मिस्त्री की दूकान, रेडियो, टेलिस्कोप आदि यंत्रों की व्यवस्था रहेगी। मकान की छत इस प्रकार से बनाई जायेगी ताकि उल्कापिण्डों के प्रहार से उसकी रक्षा हो सके। यह मकान ८३ फुट ऊंचा, ४६० फुट लम्बा और ३८० फुट चौड़ा होगा।

मालवाही यान

चन्द्रमा में मानव की बस्ती बस जाने पर ऐसे यानों

(शेष पृष्ठ ४० पर)

अन्तरिक्ष यात्रा के महारथी-त्स्याल्कोवस्की

शिव मोहनलाल निगम तथा डा० यतेन्द्र पाल वार्ष्णेय

अन्तरिक्ष के विषय में विचार कब और कैसे प्रारंभ हुए ? सबसे पहले किसने अन्तरिक्ष यात्रा के विचार लोगों के सम्मुख रखे ? इस प्रकार के प्रश्न आज जबकि इस ओर संसार के दो महान् राष्ट्रों द्वारा किये गये प्रयासों को देखते हैं, सभी के अन्दर उठना स्वाभाविक है। इन प्रश्नों के उत्तर से ही इस यात्रा के विषय में ज्ञान और भी रुचिकर हो जाता है। ये विचार आज से नहीं वरन् हजारों वर्ष से ही रखे जा चुके हैं। परन्तु इस विषय में वैज्ञानिक ढङ्ग से प्रयास गत शताब्दी के अन्तिम वर्षों से ही प्रारम्भ हुए। 'रेडियों की खोज किसने की' आदि प्रश्नों में रुचि रखने वाले व्यक्तियों के लिये इन प्रश्नों के उत्तर और भी रुचिकर होंगे। इस विषय में एक ही समय में दो व्यक्तियों के अन्दर विचार उठे जिनमें जर्मनी के हरमेन गान्सविंद (Hermann Ganswindth) प्रथम थे। परन्तु इन्होंने इस विषय पर आगे कोई ध्यान नहीं दिया और इस यात्रा का श्रेय दूसरे व्यक्ति रूस के राष्ट्रीय, परन्तु पोलैन्ड के वंशज श्री के० ई० त्स्यालकोवस्की (Koustantin Eduardovich Tsiolkovskii) का है।

इनके पिता पोलैन्ड के निवासी थे और अब रूस में स्थाई रूप से आ कर बस गये थे। इनके पिता की रुचि दर्शन तथा खोजों की ओर विशेष थी। त्स्यालकोवस्की का जन्म ५, सितम्बर १८५७ में रयाजान्सकी (Ryazanskii) नामक प्रान्त के इजेवस्क (Izhevsk) गांव में हुआ था। जबकि ये केवल १० वर्ष के ही थे, कि दुर्भाग्य से ये ज्वर से पीड़ित हुए और सम्पूर्ण शरीर में लाल चकोते पड़ गये। ज्वर चला गया परन्तु इनको सुनने की शक्ति को भी ले गया। इस कमी का प्रभाव उनके व्यक्तित्व पर काफी पड़ा। इस कारण वे केवल स्कूल ही न जा सके वरन् शर्मीले तथा सूक्ष्मग्राही प्रवृत्ति के बन गये। फिर भी एक प्रबल अभिलाषा थी कि इस कमी को किसी दूसरे क्षेत्र में विशेष योग्यता प्राप्त करके पूर्ण किया जाय। वे अक्सर कहा करते थे कि आज का असम्भव कल का सम्भव अवश्य बनेगा। कितना उत्साह था जिसने कि जीवन की अनेक कठनाईयों के बावजूद भी आगे बढ़ने के लिये प्रेरित किया। उन्होंने स्वयं को शिक्षित बनाया, कविताएँ लिखीं, तथा छोटे छोटे मॉडेल बनाये जिन में गुब्बारे (Balloons) तथा भाप-चक्की (Steam Turbine) द्वारा चलाई गई मशीने इत्यादि हैं।

अभी केवल १५ वर्ष के ही थे कि साधारण गणितीय ज्ञान इन्होंने प्राप्त कर लिया था। करीबन इसी समय इनके अन्दर किसी धातु का उपयोग करके गुब्बारे बनाने का विचार उठा। यह एक ऐसा विचार था जिस पर इन्हें अपने जीवन में कई बार विचार करना पड़ा। एक वर्ष पश्चात् एकाएक इनके अन्दर केन्द्रयसारी बल (Centrifugal force) द्वारा नक्षत्रों तथा ग्रहों तक जाने का विचार उठा। इस समय इन की प्रसन्नता की सीमा न थी क्योंकि इनका ख्याल था कि इन्होंने अन्तरिक्ष यात्रा की समस्या का हल पा लिया। इन्हीं विचारों को लेकर एक पूरी रात्रि भर मास्को की सड़कों पर घूमते रहे तथा उषाकाल के साथ अपनी गलती का साक्षात्कार इन्हें हुआ। इस समय इन्हें अपने अल्प ज्ञान पर उतना ही दुःख हुआ जितना कि पहले प्रसन्न हुए थे और बल्कि ५०-६० वर्ष की आयु तक अपने को स्वप्नों में इस बल द्वारा अन्तरिक्ष में जाते हुए देखा। इस अनुभूति ने उन्हें गणित का परिपक्व ज्ञान प्राप्त

करने के लिये बाध्य किया और गणित का अध्ययन प्रारम्भ कर दिया। इस प्रयास ने इन्हें गणित तथा भौतिकी का अध्यापक बना दिया जिसे उन्होंने करीबन ४० वर्ष तक निभाया।

जबकि त्स्यालकोवस्की २४ वर्ष के ही थे कि इन्होने अपने कार्य को St. Petersburg Physico-Chemical Society के सम्मुख रखा। इनका यह कार्य गैसों के सिद्धान्त तथा जीव विज्ञान से सम्बन्धित था। इनके इस कार्य के अध्ययन के पश्चात् यह पता लगा कि इस प्रकार का कार्य पूर्व किया जा चुका है। परन्तु इस समय यह बात विशेष उल्लेखनीय इसलिये है कि इन्होंने पूर्व कार्य के विषय में बिना किसी पूर्व ज्ञान के ही यह कार्य किया था। यहीं से इनकी इस प्रतिभा का अनुभव तत्कालीन वैज्ञानिकों को हुआ जिनमें आवर्तसारिणी के अविष्कारक मेन्डलीफ ने विशेष ध्यान दिया। इस हार के पश्चात् भी त्स्यालकोवस्की हतोत्साहित नहीं हुये और वैज्ञानिक खोजों में लगे रहे।

भाप-इन्जिन सम्बन्धी प्रयोगों को करने के पश्चात् अन्तरिक्ष-यात्रा के लिये एक विशेष प्रकार के जहाज के मॉडेल की कल्पना आप के अन्दर आई जिसे उन्होंने १८८७ ई० में प्रकाशित किया। मेन्डलीफ को इनके कार्य के प्रति विशेष रुचि थी इसी कारण ये अपने कार्य को Imperial Russian Technical Society के सम्मुख रख पाये और यही नहीं बल्कि १८९१ ई० में एक मॉडेल भी सोसाइटी के सम्मुख रखा। इनके इस प्रयास को देख कर इन्हें इस कार्य को करने के लिये ४७० रूबल दिये गये। इस प्रकार इनका इस ओर प्रयास चलता रहा और १८९५ ई० में अन्तरिक्ष में चलने वाले यन्त्र की कल्पना रखी जिसमें द्रव-ईंधन (Liquid fuel) का उपयोग किया गया था। इसका मॉडेल १८९८ में तैयार हो गया था और जिसे १९०३ में प्रकाशित भी कर दिया। द्रव-ईंधन का उपयोग चूर्ण-ईंधन Powder-fuel) के स्थान पर अधिक उपयोगी सिद्ध हुआ। इसे उपयोग करने के पश्चात् इन्जिन की गति ही नहीं बढ़ गई परन्तु उस पर नियन्त्रण भी किया जा सका जो कि चूर्ण-ईंधन के राकेट में सम्भव न हो पाया था।

आगे आपने केवल राकेट के मॉडेल की रचना पर ही नहीं ध्यान दिया वरन् उसमें आवश्यक अन्य सुविधाओं के लिये भी अथक प्रयत्न किये जिनके फलस्वरूप यह यात्रा आज इतनी सरल जान पड़ रही है। उपरोक्त खोज के बाद ही राकेट में ईंधन की जगह द्रवित हाइड्रोजन या हाइड्रोकार्बन का उपयोग द्रवित आक्सजन के साथ प्रारम्भ हुआ। आक्सीजन ईंधन के जलने में सहायक तत्व है। हालांकि द्रवित हाइड्रोजन का उपयोग कुछ विशेष कठनाईयों के कारण ईंधन के स्थान पर न हो सका फिर भी द्रवित आक्सीजन का उपयोग काफी मात्रा में हुआ।

त्स्याल्कोवस्कीद्ध की प्रसिद्ध का श्रेय केवल उपरोक्त खोज ही नहीं है। उन्होंने इस यात्रा में आने वाली गणतीय कठिनाईयों को भी हल किया। उन्होंने ऐसी समीकरणों को ज्ञात किया जिनके द्वारा—वेग, उर्जा तथा हवा के प्रतिरोध के प्रभाव की गणना की जा सकी। व्यवहार तथा सिद्धान्त का ऐसा सन्तुलित विकास बहुत कम वैज्ञानिकों के व्यक्तित्व में मिलता है। उनके इन समीकरणों ने अन्तरिक्ष में यात्रा को सरल कर दिया। वे अक्सर कहा करते की मानव सदा पृथ्वी पर नहीं रहेगा बल्कि उसकी ज्ञान तथा अन्तरिक्ष की ओर प्रवृत्ति उसे वातावरण की सीमाओं के पार पहुंचा देंगी और फिर वह सूर्य के चारों ओर अन्तरिक्ष पर विजय प्राप्त कर लेगा और आज वह स्वप्न साकार भी हो रहा है।

अपने इन कार्यों के साथ उन्होंने इस विषय पर कई लेख तथा वैज्ञानिक कल्पनाएँ भी लिखीं। तत्कालीन रूस की क्रान्ति का प्रभाव आपके कार्य में बाधा न डाल सका बल्कि उन्हें उत्साह ही मिला। १९३२ ई० ७५ वर्ष की आयु तक पहुचते पहुँचते आप के कार्यों

ने आप को महापुरुष का स्थान दे दिया। यहां तक आप के जन्म दिन को तत्कालीन प्रादेशिक शासकों ने भी महत्व दिया। इस प्रकार सम्पूर्ण जीवन सत्य की खोज में अथक प्रयास के साथ बिता कर ७८ वर्ष की आयु में सन् १९३५ ई० में अन्तरिक्ष में विलीन हो गये। आज भी उनका जीवन हम सभी को कठिनाईयों पर विजय प्राप्त कर असम्भव को सम्भव बनाने का अमर सन्देश दे रहा है।

क्या आप जानते हैं ?

१—भारत में कुल ४ करोड़ किलोवाट जल-बिजली पैदा की जा सकती है। अगर जल-बिजली पैदा करने के सारे साधन उपयोग में लाए जायें तो भारत सब देशों से ज्यादा बिजली पैदा करने लगे।

२—पहली योजना के पहले देश में कुल २३ लाख किलोवाट ताप और पनबिजली पैदा होती थी। पहली योजना में ११ लाख किलोवाट और होने लगी। दूसरी योजना में ३५ लाख किलोवाट बिजली और पैदा की जाएगी। इस तरह दूसरी योजना के समाप्त होने पर देश में कुल ६९ लाख किलोवाट बिजली पैदा होने लगेगी, जो १९५१ से दुगनी होगी।

३—अगर परिस्थितियां अनुकूल रहीं तो तीसरी पंचवर्षीय योजना में १२०-१३० लाख किलोवाट बिजली पैदा करने का लक्ष्य रखा जा सकता है।

४—१९५१ में ताप बिजली और जल-बिजली का अनुपात ७६ : २४ था, प्रथम योजना के अंत में ७२ : २८ हो गया और मार्च ३१, १९५९ को ७० : ३० हो गया। द्वितीय योजना के अंत में ताप बिजली और जल बिजली का अनुपात ५६ : ४४ हो जायगा। अर्थात् भारत जल-बिजली को बढ़ा रहा है।

५—पहली योजना शुरू होने के पूर्व देश में बिजली का उपयोग प्रति व्यक्ति १४ यूनिट था, उसके बाद २५ यूनिट हो गया। दूसरी योजना के अंत तक प्रति व्यक्ति ५० यूनिट बिजली खर्च होने लगेगी।

६—पहली योजना के अंत तक ७,००० गांवों में बिजली लगाई गयी। दूसरी योजना में १०,६०० और गांवों में बिजली लगाये जाने की आशा है। अब तक कुल १४,३३१ गांवों में बिजली लगाई जा चुकी है।

(पृष्ठ ३६ से आगे)
की आवश्यकता होगी जो वहां आवश्यक माल और रसद इत्यादि पहुँचा सकें।

अमेरिका के कुछ कल्पनाशील वैज्ञानिकों ने अन्तरिक्ष यान का ऐसा कल्पना चित्र तैयार किया है, जो बहुत कुछ उड़न तश्तरी से मिलता-जुलता है। यह काल्पनिक अन्तरिक्ष यान अणुशक्ति से चलेगा। इसकी गति ४ हजार मील प्रति घंटा होगी। इस में यात्री, माल और डाक आसानी से ढोयी जा सकेगी। जहां तक अणु-शक्ति चालित यान की बात है, यह असम्भव नहीं और निकट-भविष्य में ही वह साकार रूप ग्रहण कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त रेडियो कारपोरेशन आफ अमेरिका सम्वादवहन के लिये उपग्रहों का उपयोग करने के संबंध में विचार कर रही है। यदि उसके परीक्षण सफल रहे तो कुछ ही घंटों में दुनिया के एक भाग से संदेश दूसरे भाग में पहुँच जाया करेंगे।

अमेरिका की 'रिपब्लिक एविएशन कारपोरेशन' ने अन्तरिक्ष यान का एक ऐसा काल्पनिक माडेल तैयार किया है, जो शक्ल में मोटर-दौड़ में भाग लेने वाली मोटर से मिलता जुलता है। इस यान में बैठा यात्री अन्तरिक्ष के दृश्यों का अवलोकन कर सकेगा। यान की उड़ान के लिए बूस्टर राकेटों का इस्तेमाल होगा और चालक इच्छानुसार इंजनों को बंद कर सकेगा और पुनः चालू कर सकेगा। इंजन बंद होने पर यान ग्लाइडर की तरह अन्तरिक्ष में उड़ता रहेगा।

अन्य ग्रहों की यात्रा करने वाले यान

चंद्रमा पर विजय प्राप्त करने के उपरांत मंगल और शुक्र ग्रहों की बारी आएगी, परन्तु मानव अभी से उन पर विजय प्राप्त करने की तैयारी में जुटे हैं।

हजारों मील की गति से उड़ने वाला मानव-चालित राकेट यान

राकेट डाइन कम्पनी के वैज्ञानिक और इंजिनियरों ने सिगरेट के आकार के मानव-चालित एक ऐसे अन्तरिक्ष-गामी राकेट यान की कल्पना की है, जो हजारों मील प्रति घन्टे की गति से अन्तरिक्ष में उड़ सकेगा। यह अणु-शक्ति और अयनशक्ति चालित होगा। राकेट में डैने के आकार की वस्तु राकेट यान के अन्दर के भाग को ठण्डा रखने का काम करेगी।

मंगल ग्रह की यात्रा करने वाला विमान

बोरिंग एयरप्लैन कम्पनी के इंजिनियरों ने मंगल ग्रह का अनुसन्धान करने के लिए एक ऐसे यान की कल्पना की है, जो पृथ्वी से ४०० मील की ऊँचाई पर स्थित अन्तरिक्ष स्टेशन से उड़ान करेगा। तश्तरी के आकार के इस अन्तरिक्ष यान का व्यास ४० फुट और वजन ६०० पौण्ड होगा। और यह टैलिस्कोप-टैलिविजन-कैमरा तथा अन्य उपकरणों से पूरी तरह सुसज्जित होगा। यान अन्त-रिक्ष स्टेशन पर ही जोड़ कर तैयार किया जायगा। मंगल ग्रह की यात्रा के लिए इसे ३ वर्ष लगेंगे।

शुक्र ग्रह की यात्रा करने वाला अन्तरिक्ष यान

शुक्र ग्रह पृथ्वी से इतनी दूर है कि उस तक पहुंचने के लिए एक अन्तरिक्ष स्टेशन की आवश्यकता पड़ेगी। इसके लिए मार्टिन कम्पनी के इंजिनियरों ने बहुत कुछ पिस्तौल की आकार से मिलने-जुलने वाले अणुशक्ति-चालित अन्तरिक्ष स्टेशन की कल्पना की है। इस स्टेशन पर मौजूद वैज्ञानिक छोटे छोटे राकेट-यानों द्वारा शुक्रग्रह की यात्रा कर सकेंगे।

हृदय-विकार के निदान की अचूक विधि का आविष्कार

अमेरिका के अनुभवी और कुशल डाक्टर तथा वैज्ञानिक भयंकर रोगों से मानव जीवन की रक्षा करने के लिए निरन्तर अनुसन्धान कर रहे हैं। विभिन्न स्थानों, परीक्षणशालाओं और अस्पतालों में वे साहस और दृढ़ निश्चय के साथ अपने महान् पुनीत कार्य में संलग्न हैं। मेरीलैंड राज्य (अमेरिका) स्थित 'वेथेस्डा' भी एक ऐसा ही स्थान है। इस स्थान पर स्थित सात संस्थानों, एक चिकित्सा और औषधि अनुसन्धान-केन्द्र तथा एक अस्पताल में अमेरिका के राष्ट्रीय संस्थान के अनुभवी और कुशल डाक्टर एवं वैज्ञानिक विभिन्न रोगों और उनको दूर करने के तरीकों और उपायों के सम्बन्ध में व्यापक अनुसन्धान कर रहे हैं। ऐसा शायद ही कोई रोग हो, जो इन चिकित्सा-विशेषज्ञों की नजर से बचा हो। कभी-कभी उनके अनुसन्धान और खोज का समाचार बड़ी-बड़ी सुर्खियों से अखबारों में अवश्य छप जाता है, लेकिन बहुधा उनकी सफलताओं का उल्लेख केवल चिकित्सा-विज्ञान की पत्रिकाओं और रिपोर्टों में ही पढ़ने को मिलता है।

इस संस्थान के विशेषज्ञ अपने अपने क्षेत्रों में नई-नई खोजें कर रहें हैं और रोगों की चिकित्सा की नवीन और प्रभावशाली विधियों की खोज कर रहे हैं। उदाहरणार्थ, उक्त संस्थान के हृदय-रोगों के सम्बंध में खोज करने वाले विभाग को ले लीजिए। इस विभाग में कार्य करने वाले वैज्ञानिक हृदय-रोग से सम्बंधित ऐसे महत्वपूर्ण खोज कार्य में सलग्न हैं कि यदि उनके प्रयत्न सफल हुए तो विकृत और दोषपूर्ण हृदय से पीड़ित हजारों बालकों के जीवन को अधिक आशापूर्ण बनाया जा सकेगा।

इन विशेषज्ञों ने परीक्षण और अनुसन्धान द्वारा हृदय के रोगों और खराबियों का पता लगाने के लिए अणुशक्ति की सहायता से एक नई विधि खोज निकाली है। एक बोतल में ऐसी हानि रहित गैस भर ली जाती है, जो रेडियो सक्रिय होती हैं। इसके उपरान्त हृदय के भीतरी भागों के रक्त के नमूनों का संग्रह कर उनमें विद्यमान रेडियोसक्रियता की जांच की जाती है। इस जांच से ही यह पता लगा लिया जाता है कि हृदय के किस भाग में सूराख या खराबी है। यह पता लगाने के लिये भी विशेष परीक्षण किये जाते हैं कि खराबी जन्मजात है, अथवा बाद में पैदा हुई हैं। इस प्रकार की जाँच-पड़ताल बिना आपरेशन किये ही की जाती हैं।

यद्यपि ऐसी कृत्रिम मशीन का निर्माण डाक्टरों ने कर लिया है जो हृदय के आपरेशन के समय श्वांस की क्रिया जारी रखती है, परन्तु नई विधि से यह पता पहले ही चल जाता है कि कहां पर किस प्रकार की खराबी है। अतएव आपरेशन करते समय सम्भावित खराबी को दूर करने के लिये पूरी तैयारी कर ली जाती है। अब तक यह विधि बहुत ही सफल और प्रभावशाली सिद्ध हुई है। हृदय की विभिन्न कोठरियों के रक्त का नमूना एकत्र करने के लिये एक बहुत ही पतले ट्यूब का इस्तेमाल किया जाता है।

नवम्बर १९५७ में 'सरकुलेशन' पत्रिका में इस नई विधि की उपयोगिता के बारे में एक रिपोर्ट प्रकाशित हुई थी। इस रिपोर्ट पर डा० सैन्डर्स के साथ डाक्टर राबर्ट पी० ग्राएट, एण्ड जी० मारो और यूजीन ब्रौनवाल्ड के भी हस्ताक्षर थे।

इसके पूर्व भी हृदय के दाहिनी ओर के रक्त की परीक्षा करने की विधि व्यवहार में आ रही थी। हृदय के दाहिने भाग के रक्त की परीक्षा करने का उद्देश्य इस बात का पता लगाना रहता था कि हृदय के बायें भाग में शुद्ध होने वाला ताजा और आक्सीजनयुक्त खून दाहिने हिस्से में तो नहीं रख रहा है। चूंकि शुद्ध रक्त की नाड़ियोंमें अशुद्ध रक्त की शिराओं की अपेक्षा खून

का दबाव बहुत अधिक रहता है, अतः खून का बायीं ओर से दाहिनी ओर को बहना स्वाभाविक ही है।

इस प्रकार के परीक्षण में डाक्टर हाथ या पैर की किसी धमनी और हृदय के दाहिने भाग से रक्त का नमूना लेकर उनकी परस्पर तुलना करते हैं। यदि हृदय बिल्कुल ठीक होता है तो हाथ और पैर की धमनियों में बहने वाले रक्त में हृदय के रक्त की अपेक्षा औक्सीजन की अधिक मात्रा विद्यमान रहती है। हृदय के किसी भाग में सूराख होने पर हाथ या पैर की धमनी और हृदय के दाहिने भाग में मौजूद रक्त में आक्सीजन गैस की मात्रा लगभग बराबर होगी। लेकिन इधर कुछ समय से डाक्टर लोग इस प्रकार के परीक्षण के शत-प्रतिशत सही होने के बारे में सन्देह करने लगे हैं।

डा० सैण्डर्स ने जो नवीन विधि खोज निकाली है, यह उक्त विधि से कहीं अधिक सही और सफल सिद्ध हुई है। रोगी को जो गैस सुंघाई जाती है, उसमें १५ प्रतिशत नाइट्रस आक्साइड, २१ प्रतिशत औक्सीजन और ६४ प्रतिशत नाइट्रोजन रहता है। रोगी १ मिनट तक यह गैस सूंघता है। इसी अवधि में डाक्टर हृदय के दाहिने भाग और शरीर की किसी धमनी से रक्त का नमूना ले लेते हैं। यदि हृदय से लिये गये खून में तुरन्त नाइट्रस आक्साइड के होने का पता लग जाता है तो डाक्टर यह समझ जाता है कि हृदय के अन्दर या तो कोई सूराख है या रक्त-प्रवाह क्रिया में कहीं कोई अस्वाभाविक गड़बड़ी आ गई है, क्योंकि शिराओं में नाइट्रस औक्साइड पहुँचने में कुछ समय लगना चाहिये।

राष्ट्रीय स्वास्थ्य संस्थान के डाक्टरों ने इस विधि का परीक्षण २०० से अधिक रोगियों पर किया। इनमें से अधिांकश परीक्षण पहले से अधिक सफल सिद्ध हुये। सहसा डाक्टरों के दिमाग में यह विचार सूझा कि क्यों न नाइट्रस औक्साइड के स्थान पर रेडियोसक्रिय गैस का इस्तेमाल किया जाये। उनका यह नवीनतम परीक्षण पूरी तरह सफल रहा। रेडियोसक्रिय गैस क्रिपटोन—८५ और गाइगर यंत्र की सहायता से वह अपने प्रश्न का उत्तर एक मिनट में पाने लगे। इस गैस से निकलने वाला विकिरण मानव शरीर को किसी प्रकार का नुकसान नहीं पहुँचाता।

कहते हैं कि मगर-मच्छ अपने शिकार की विवशता पर आंसू बहाता है। परन्तु मगर के अश्रु नलियां नहीं होतीं और वे रो नहीं सकते। बात यह है कि जब वे काफी बड़ा शिकार निगलते हैं तो उनकी आँखों से पानी जैसा तर पदार्थ वह निकलता है।

स्टीम इन्जन या चाय की केतली से निकलने वाली सफेद 'बादल' सचमुच पानी का वायु-रूप द्रव्य वाष्प नहीं। वाष्प अदृश्य पदार्थ होता है जो जल को एक विशेष अंश (बुआयलिंग पुआइन्ट) तक उबालने से बनता है।
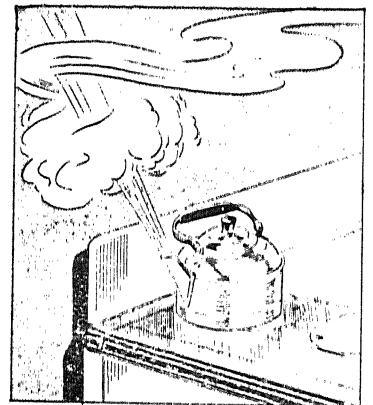
जुड़वां बच्चे और विकृत आकार

डाक्टर सत्यनारायण प्रसाद

अपने पिछले लेख में मैंने विकासशील मानव-शरीर में होने वाली उथल-पुथल का उल्लेख किया था। इस लेख में प्रकृति की उस व्यतिरेक का उल्लेख है जिसके कारण जुड़वां बच्चे अथवा विकृत आकार के प्राणी पैदा होते हैं।

साधारणतः एक बच्चा एक रजाणु या डिम्ब से उत्पन्न होता है और एक प्रसव में एक ही डिम्ब परिपक्वता प्राप्त करता है और वह बढ़कर नव-जात शिशु का रूप धारण करता है। रजाणु या डिम्ब पोस्ते के दाने के बराबर एक नन्हा सा अंडा है। निषेचन के पश्चात् इसका विभाजन प्रारम्भ होता है। फलस्वरूप एक कोशीय डिम्ब से बहुकोशीय शरीर का निर्माण होता है। यदि विभाजन की स्वाभाविक अवस्था के साधारण विचलन हो जाता है तो अनेक अनियमित परिस्थितियां उत्पन्न हो जाती हैं।

अभी हम कह चुके हैं कि विभाजन डिम्ब की विकास-शृंखला की प्रमुख कड़ी है। सर्वप्रथम इसके अन्तर्गत अन्डे द्विपार्श्व-संमिति के समतल पर दो युक्ता खन्डों में विभाजित हो जाते हैं। इस विभाजन के समय भी प्रकृति का कभी कभी अतिचार हो जाता है। फल यह होता है कि एक डिम्ब बजाय दो युक्ताखन्डों में बंटने के दो पूर्ण भागों में विभाजित होकर दो व्यक्तियों के रूप में विकसित होते हैं और इस प्रकार दो संयुक्त यमज या जुड़वाँ शिशुओं का जन्म होता है।

यमज जुड़वां इस प्रकार अपनी प्रारम्भिक स्थिति में जीव को शक्ति की दृष्टि से एकाँकी जीव होते हैं। दोनों एक ही डिम्ब से निर्मित होते हैं। अतः इस प्रकार विकसित होने वाले जुड़वां बच्चे स्वभावतः समान प्रकृति और एक ही लिंग-जाति के होते हैं। गर्भाशय के भीतर अपनी जीवनावधि में यह एक ही गर्भ झिल्ली में संबद्ध रहते हैं। इनके वाह्य तथा आन्तरिक अंगों के सूक्ष्म आकारों में भी समानता होती है। इसलिए इन्हें 'समरूपी शिशु' कहते हैं।

जिस प्रकार डिम्ब के दो भागों में विभाजित होने से दो संयुक्त यमज शिशु पैदा होते हैं। उसी प्रकार यदि वह चार भागों में पूर्णतया विभाजित हो जाय तो एक ही प्रसव में चार शिशुओं का जन्म हो सकता है। एक ही प्रसव में एक से अधिक शिशुओं के जन्म के सम्बन्ध में कुछ आंकड़े प्राप्त हुए हैं:—प्रति ८५ शिशु जन्मों में एक बार एक यमज शिशु का जन्म होता है, एक ही प्रसव में ३ शिशुओं का जन्म ७२२५ शिशु-जन्मों में होता है, एक प्रसव गत चार शिशुओं का जन्म एक बार प्रति ६१४१२५ शिशु-जन्मों में होता है, तथा प्रत्येक ४,४३,७०,५३,१२५ शिशुओं के जन्म में एक बार एक ही प्रसव में छः शिशुओं का जन्म एक साथ होता है।

अब तनिक कल्पना कीजिये कि यदि विभाजित होते समय डिम्ब आगे और पीछे इतना विभाजित हो जायं कि आगे दो सर बन जायं और पीछे चार पैर पर धड़ के स्थान पर दोनों जुड़े रहें तो इसके फलस्वरूप एक शरीर दो सर तथा चार पैर वाला संयुक्त यमज उत्पन्न होगा जैसा कि साथ में दिये गये चित्र से सिद्ध है। दूसरे दो सर वाले बछड़े के चित्र से पता चलता है कि डिम्ब केवल सामने की ओर अधिक विभाजित और पीछे साधारण स्वाभाविक अवस्था में रहा है इसीलिये सामने दो सर बन जाते हैं और बाकी शरीर सामान्य रहता है। ऐसे संयुक्त जुड़वां शिशुओं के विविध प्रकार होते हैं। किसी में दोनों शिशु वक्ष-प्रदेश के निचले भाग पर जुड़े रहते हैं, किसी में वक्ष प्रदेश तथा उदर प्रदेश पर जुड़े रहते हैं, किसी में मेरुदन्ड के निचले सिरे पर जुड़े रहते

हैं और किसी में वस्ति प्रदेश तथा निचले अवयव के बीच पूरे जुड़े रहते हैं।

डिम्ब का इस प्रकार का विभाजन किन परिस्थितियों पर आधारित है, यह नहीं कहा जा सकता। उस डिम्ब अथवा उसके भीतर किन्हीं अज्ञात तथा अस्वाभाविक परिस्थितियों के प्रभाव के फलस्वरूप ऐसा होता है कि गर्भित डिम्ब एक व्यक्ति के रूप में विकसित न हो कर दो रूपों में विकसित होता है। इन्हीं परिस्थितियों में उथल-पुथल होने के कारण आंशिक दृष्टि से कम संयुक्त जुड़वां शिशु उत्पन्न होता है।

कभी कभी गर्भित डिम्ब अपने स्वाभाविक स्थान में प्रतिष्ठित होने के बजाय कम उपयुक्त स्थान में स्थापित हो जाता है। प्रायः यह देखा गया है कि जिन गर्भ-नलिकाओं से होकर डिम्ब गर्भाशय को जाता है, उन्हीं में वह विविध कारणों से स्थापित हो जाता है। इन नलिकाओं के अन्दर जगह कम होती है और उनकी दीवारें भी पतली होती हैं। उनके अन्दर वह साधन तथा सुविधायें नहीं होती जो गर्भित डिम्ब के विकास के लिए आवश्यक है। ऐसी परिस्थितियों में भी विकृत आकार अथवा राक्षसी आकार वाले प्राणियों की उत्पत्ति होती है।

ऐसी परिस्थितियां अंगों के विकास में रोक, स्वाभाविक विकास से विचलन अथवा किसी एक अंग के विकास में आधिक्य उत्पन्न कर देती है। ऐसे आकार-भेद अनेक हैं पर यहां केवल उन्हीं का उल्लेख है जो अधिकतर पाए जाते हैं और जो आंशिक दृष्टि से कम विकृत आकार हैं।

शिशु की मुखाकृति में सबसे अधिक साधारण आकार भेद की अवस्था सम्भवतः एक अथवा अनेक भागों का चौड़ा हो जाना है। गर्भावस्था में दूसरे मास में मुखाकृति का अध्ययन यह बतलाता है कि प्रारम्भ में मुखाकृति के सब भाग अपेक्षाकृत चौड़े होते हैं :—मुख छिद्र अत्यधिक चौड़ा होता है, नाक चौड़ी और चपटी होती है तथा नेत्र एक दूसरे से अधिक दूरी पर स्थित रहते हैं। यदि विकास-काल की इस स्थिति में प्रतिरोध उत्पन्न हो, तो एक ऐसे प्राणी का जन्म हो जायगा जिसमें सब उपर्युक्त चिन्ह प्रदर्शित होंगे।

मुखाकृति के विकास-कार्य में प्रतिरोध का परिणाम अधिकतर 'हेयर लिप' (शावक-ओष्ठ या कटा हुआ ओठ) की रचना होती है। इसमें नाक के नीचे वाले गड्ढे के एक या दोनों ओर ऊपर वाला ओठ कटा रहता है। इस प्राकृतिक व्यतिरेक की इतनी दया होती है कि ऊपरी ओंठ के साथ साथ तालु भी फटा रहता है।

शिशु के नेत्र भी अनेक आकार-प्रकार के आकार भेदों का प्रदर्शन करते हैं। कभी कभी ललाट के मध्य में एक ही नेत्र विकसित होता है। परन्तु इस अस्वाय विकता के साथ साथ मस्तिष्क के अन्य क्षेत्रों में भी अधिक अस्वाभाविकता उत्पन्न हो जाती है जिसकी वजह से ऐसे नेत्र वाला शिशु प्रसव तक जीवित नहीं रह पाता। नेत्रों से सम्बद्ध अन्य आकार भेदों में एक दरार युक्त नेत्र पुतली भी है। अल्पावस्था के नेत्र-कोटरों के कोनों के सम्बद्ध हो जाने में विफलता के फलस्वरूप नेत्र विन्दु फटा हुआ रह जाता है।

इसी प्रकार के और भी कई उदाहरण देखने को मिले हैं ऐसे उदाहरण भी देखने को मिले हैं जिनका उल्लेख करना यहां सम्भव नहीं। फिर भी हम यह अवश्य बतला देना चाहते हैं कि अभी हाल में प्रकाशित चन्द्र प्रकाश के यौन परिवर्तन का मामला भी प्रकृति की ऐसी ही गलती के कारण हुआ। चन्द्र प्रकाश कभी भी लड़की नहीं था। वह अपने माता पिता तथा अनभिज्ञ दाई की गलती से सत्रह वर्ष तक चमेली देवी बना रहा। स्त्री व पुरुष जननेन्द्रिय की विकास-शृंखलायें प्रारम्भ में एक सी होती है। इसलिए शुरू में उन्हें पहिचानना तक मुश्किल हो जाता है। वाह्य जननेन्द्रिय का प्रथम चिन्ह छठें सप्ताह से दृष्टिगोचर होता है। यह उभार मार्ग के अधर पर एक प्रकूट के रूप में दिखलाई देता है। इसे 'जैनाइटल ट्यूबर्किल' कहते हैं। नर में यह जननेन्द्रिय बन जाता है और मादा में उसी की रचना सदृश अंग

'क्लाइटोरिस'। दसवें सप्ताह दो प्रकूट उत्पन्न होते हैं एक इसके बाईं ओर और दूसरी दाहिनी ओर। यह बढ़कर नर में मुष्क-स्यून (स्त्रोटम बनाते हैं और माता में लेबिया मैजोरा। चन्द्र प्रकाश के मामले में जननेन्द्रिय का विकास यहीं तक हुआ। स्क्रोटम नहीं बना इसीलिए वृषण टेस्टीज) अन्दर उदर में ही रहे, बाहर न निकल सके। स्क्रोटम और जननेन्द्रिय ही को देख कर दाइयाँ नर बच्चे को पहचानती हैं। जब स्क्रोटम गायब देखा तो उसे लड़की बतलाया और इस प्रकार वह जबरदस्ती लड़की बना रहा। इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि चन्द्र प्रकाश जननेन्द्रिय विकास में प्रतिरोध के कारण हुई असमान्यता के कारण व्यर्थ ही लड़की बना रहा। प्रकृति के एक गलत कदम ने उसे इस परेशानी में डाल दिया।

अगिन घास !

केरल की पहाड़ी ढलानों पर लाल डण्ठलवाली अगिन घास या इंची पुल काफी मात्रा में होती है। इसके पत्तों से जो तेल निकाला जाता है, उसके निर्यात से देश को हर साल लगभग १ करोड़ ५० लाख रु० की विदेशी मुद्रा मिलती है। यह घास मूलतः भारत की ही उपज है, यह विदेशों से नहीं लायी गयी। इसके लिए केरल की जमीन और जलवायु सबस अच्छी है। वहां मुख्यतः मध्य केरल और उत्तरी तथा दक्षिणी जिलों के पहाड़ी ढलानों पर लगभग ५०,००० एकड़ जमीन में यह घास पैदा होती है। कोचीन बंदरगाह से अंदर जाते हुए पश्चिमी घाट की तलहटी में इंची पुल के लहलहाते खेत दिखायी देने लगते हैं। अप्रैल में पहली वर्षा होने के बाद, इसके बीज बो दिये जाते हैं। यह घास तेजी से उगती है और मई के अंत में काटने लायक हो जाती है।

गाँव की स्त्रियां हंसिये से काटकर इसके बंडल बना देती हैं, जिन्हें बाद में तेल निकालने के लिए भट्टी में पहुंचाया जाता है। काटने के बाद यह घास और तेजी से बढ़ती है और इस प्रकार नवम्बर के अंत तक, अर्थात् सूखा मौसम आने तक यह ५-६ बार काट दी जाती है। फिर बरसात शुरू होने पर इसके निचले डण्ठलों से हरियाली फूटने लगती है और कुछ ही समय बाद घास फिर काटने लायक हो जाती है। इस प्रकार वहां घास काटने और उससे तेल निकालने का काम साल में नौ महीने चलता रहता है। पांच-छः साल बाद पौधे की आयु खतम हो जाती है और तब किसानों को नया बीज बोना पड़ता है। जो किसान इंचीपुल की खेती करते हैं, वे केवल इसी पर निर्भर नहीं रहते, बल्कि अन्य चीजों की खेती भी करते हैं।

केरल में अगिन घास की उपज छोटे-छोटे खेतों में होती है, कोई भी खेत ५ एकड़ से बड़ा नहीं होता। इसलिए वहां खेतों के निकट ही छोटी-छोटी भट्टियां होती हैं, जिन्हें किसान खुद बनाते हैं। सूखने पर घास अधिक तेल नहीं देती, इसलिए खेतों के निकट ही भट्टियों का होना जरूरी है। तेल तैयार होने पर ऊपर तैर आता है। उसे कुलछुलों से उठाकर बोतलों में भर दिया जाता है। तेल निकालने का काम काफी लम्बा और मेहनत का है। किसान १५०-२०० पौंड ताजी घास से २॥ घंटे मेहनत करने के बाद केवल १०-१५ औंस तेल निकाल पाते हैं। देश में इस तेल का व्यापार लगभग १०० वर्ष से होता आ रहा है। दुनिया में इस तेल की जितनी सप्लाई होती है, उसका ८० प्रतिशत, अर्थात् १,५०० टन भारत से होती है। यहाँ से १९५६-५७ में २,०२,४२६ गैलन, अर्थात् इसके कुल उत्पादन का ९७ प्रतिशत विदेशों को भेजा गया। यह तेल विटामिन 'ए' तैयार करने में काम आता है। इंचीपुल के तेल को मलयाली में पुलतैलम कहते हैं। यह कोचीन और अलवाय बंदरगाहों से बाहर भेजा जाता है। निर्यातक या व्यापारी निर्यात के पहले इस तेल को साफ करते हैं।

मिट्टी सीमेंट से सस्ती सड़कें

सड़क बनाने पर बहुत लागत आती है। उनकी मरम्मत आदि पर भी काफी खर्च होता है। साधारणतया सड़क बनाने में पत्थर की छोटी बड़ी रोड़ियां इस्तेमाल की जाती हैं। इन रोड़ियों का इस्तेमाल उन्हीं स्थानों पर सस्ता बैठता है, जो पहाड़ी क्षेत्रों में होते हैं अथवा जहां रोड़ियों को रेल द्वारा सस्ते में पहुँचाया जा सकता है। भारत का बहुत बडा भाग दरियाई और रेतीली धरतियों पर बसा हुआ है। ऐसे स्थानों पर पत्थर की रोड़ी पहुँचाने में बहुत अधिक लागत आ जाती है।

यह कठिनाई संसार के सभी देशों के सामने आई है और विभिन्न देश अपनी औद्योगिक और आर्थिक क्षमता के अनुसार इसे हल करने का प्रयत्न कर रहे हैं। सड़क की लागत घटाने के लिए यह आवश्यक है कि, जहां तक सम्भव हो सके, उन्हें बनाने के लिए वहां पर पाया जाने वाला सामान काम में लाया जाए।

जो वस्तु सब स्थानों पर मिल जाती है, वह मिट्टी है। इसलिए इस प्रकार की खोजबीन की गयी है कि जहां तक हो सके, स्थानीय मिट्टी को ही मजबूत बनाकर सड़क बनाने के काम में लाया जाए। मिट्टी को मजबूती देने के लिए उसमें विभिन्न वस्तुएं मिलाई जा सकती हैं। इनमें से एक सीमेंट है।

सीमेंट और मिट्टी को मिलाकर सड़क बनाने की ओर सबसे पहले अमरीकी इंजीनियरों का ध्यान १६१७ में गया। इस सम्बन्ध में कुछ परीक्षण भी किये गये। इन परीक्षणों से आशाजनक नतीजे मिले। १६३५ में पोर्टलैण्ड सीमेंट एसोसियेशन ने अनुसंधान का बड़ा कार्यक्रम चालू किया। इस कार्यक्रम में मिट्टी और सीमेंट को विभिन्न मात्राओं में मिला कर जांचा गया कि ये मिश्रण लाभदायक रीति से किन दशाओं में काम में लाये जा सकते हैं।

हम जानते हैं कि सब स्थानों पर मिट्टी की बनावट एक सी नहीं होती। वह दरियाई, तलछटी, रेतीली, पथरीली, चूनामय अथवा अन्य प्रकारों से मिश्रित हो सकती है। मिश्रण में विभिन्न प्रकार की मिट्टियां विभिन्न अनुपातों में मिली हो सकती हैं। विभिन्न प्रकार की मिट्टियों को मजबूत बनाने के लिए उनमें सीमेंट की विभिन्न मात्राएँ मिलाई जाती हैं। किस मिट्टी में सड़क बनाने के लिए कितना सीमेंट मिलाया जाना चाहिए, यह बिल्कुल सही तौर पर निश्चित किया जा सकता है। इसके लिए ए-एस-टी-एम अथवा ए-ए-एस-एच-ओ की प्रयोग विधियाँ काम में लाई जाती हैं।

रावफोर्ड नामक स्थान पर अमेरिका में रेतीली मिट्टी के साथ आयतन से १० प्रतिशत सीमेंट मिला कर सड़क बनाई गयी। इसके निर्माण में नमीघनत्व नियंत्रण की विधि काम में लाई गयी। इसे बनाने के लिए ठीक प्रकार की मशीनें भी इस्तेमाल नहीं की जा सकी थीं। पर यह सड़क पिछले १७ वर्षों से थोड़ी मरम्मत पर सन्तोषजनक काम दे रही है। इस पर १७ बार बर्फ गिर और पिघल चुकी है। इस सड़क में से २ टुकड़े निकाल कर उनकी मजबूती परखी गयी है। टुकड़ों पर दाब डालने सेपहले उन्हें पानी में सिझा लिया गया था। १७ वर्ष बाद इस टुकड़े को पीसने के लिए १,६५६ पौंड प्रति वर्ग इंच दाब की आवश्यकता पड़ी। जब वह सड़क बनाई जा रही थी तो ६ दिन बाद उसके टुकड़े को पीसने के लिए ४०० पौंड प्रति वर्ग इंच दाब देनी पड़ी थी। इसका अर्थ यह होता है कि मिट्टी-सीमेंट से बनाई गयी सड़क की मजबूती समय के साथ बढ़ती जाती है और तेज सर्दी-गर्मी का उस पर हानिकारी प्रभाव नहीं पड़ता।

मिट्टी-सीमेंट से बनाई सड़कों की चौड़ाई लगभग ६ इंच रखी जाती है और इसके ऊपर बिटुमिन या टार

की तह चढ़ा दी जाती है। आरम्भ में मिट्टी और सीमेंट को ठीक प्रकार से मिलाने में कठिनाई होती थी, पर अब ऐसे यंत्र तैयार हो गये हैं, जिनमें ये दोनों वस्तुएं सरलता से और बहुत अच्छी तरह मिलाई जा सकती हैं। मिट्टी-सीमेंट की सड़क बनाने में अधिक समय भी नहीं लगता। आधुनिक उपकरणों की सहायता से अमेरिका में औसतन आधा मील सड़क एक दिन में तैयार की जा सकती है। यदि विशेष सुविधा हो तो एक मील लम्बी सड़क एक दिन में पूरी की जा सकती है।

कुछ सड़कों पर, महत्वपूर्ण राजमार्गों पर, मोटरों का आना-जाना दिनों दिन बढ़ रहा है। ये मोटरें काफी तेज गति से चलती हैं। इससे राजमार्गों की कम चौड़ाई के कारण, अक्सर सामने से टक्कर हो जाने का खतरा पैदा हो जाता है। ऐसे समय में ड्राइवर अपनी मोटर को दुर्घटना से बचाने के लिए सड़क से नीचे पटरी पर ले आता है। पर साधारणतया पटरी की बनावट मजबूत नहीं होती। वर्षा के कारण वहां की मिट्टी और बजरी बह जाती है, उसमें गड्ढे पड़ जाते हैं और नालियां सी बन जाती हैं। इनके कारण उस पर आने वाली मोटर को खतरा हो सकता है। कभी-कभी ऐसा होता है कि ड्राइवर एक दुर्घटना से बचने के लिए सड़क छोड़ता है और पटरी पर आकर दूसरी दुर्घटना का शिकार हो जाता है। महत्वपूर्ण सड़कों के किनारे की इन पटरियों को बनाने के लिए मिट्टी-सीमेंट का मिश्रण काम में लाया जा सकता है।

कुछ देशों में, लगभग पिछले दस वर्षों से, इस विषय में अनुभव इकट्ठा किया जा रहा है। यह पाया गया है कि पुरानी तरह की सड़कों के किनारे प्रति वर्ष खराब हो जाते थे और उनकी मरम्मत पर काफी व्यय करना पड़ता था। पर मिट्टी-सीमेंट के बने ये किनारे या पटरियां बहुत दिन चलती हैं। उनकी मरम्मत लगभग नहीं के बराबर होती है। वे न पानी में बहती हैं, न उनमें छेद पड़ते हैं, न नालियां बनती हैं। इन पटरियों को बनाने के लिए परिस्थिति और सुविधा के अनुसार अनेक विधियां काम में लाई जा सकती हैं। आमतौर से यह चार से छः इंच मोटी बनाई जाती हैं।

मिट्टी-सीमेंट का उपयोग हवाई अड्डों पर उड़न पट्टी बनाने के लिए भी किया जा सकता है। साधारणतया डेढ़ वर्ग गज मोटी तह बनाने के लिए आधी बोरी पोर्टलैंड सीमेंट की आवश्यकता होती है। कभी-कभी निकट ही ऐसी सामग्री मिल जाती है, जिसके साथ सीमेंट की आवश्यकता और भी कम हो जाती है। इन मिट्टी-सीमेंट से बनी और बिटुमिन सतही उड़न पट्टियों की मजबूती परखी गयी है। यह पाया गया है कि लगभग ३०,००० पौंड भारी हवाई जहाजों को वे आसानी से संभाल लेती हैं। यदि कभी-कभी इससे भारी वायुयान भी उतरते चढ़ते हैं तो उनसे भी इस उड़न पट्टी को कोई हानि नहीं पहुँचती।

संक्षेप में मिट्टी-सीमेंट से सड़क बनाने के लाभ ये हैं: इस पर लागत कम आती है; स्थानीय सामान काम में आता है; बहुत दिनों तक काम देती है; विशेष मरम्मत और देखभाल नहीं करनी पड़ती; जल्दी और आसानी से बनाई जा सकती हैं और इंजीनियर को इस्तेमाल होने वाले विभिन्न सामानों को ठीक-ठीक जानकारी होने के कारण अटकल लगाने की कहीं गुंजाइश नहीं रहती है। इसी कारण, जहां सम्भव है, वहां, अब इस मिश्रण का अधिकाधिक उपयोग किया जा रहा है।

विज्ञान प्रगति से

———

पानी के बुलबुले आधुनिक विज्ञान के लिए एक पहेली

मनुष्य जिस वायु में सांस लेता है और जिस जल से अपनी प्यास बुझाता है, उस के महत्व को वह सामान्य तौर पर अनुभव नही करता। प्रकृति और ईश्वर का सहज सुलभ वरदान मान कर वह उन के अस्तित्व को स्वाभाविक मान लेता है। परन्तु वायु रहित स्थान में बन्द हो जाने पर अथवा चारों ओर फैले हुए मरुस्थल में फंस जाने पर वह इन के अभाव में उसी प्रकार व्याकुल हो उठता है, जिस प्रकार जल से अलग होते ही मछली तड़पने लगती है! तब पानी की एक-एक बूंद और हवा में एक खुली सांस लेने के लिये वह अपने समस्त वैभव को भी ठुकरा सकता हैं। वह जल जो हम और आप पीते हैं, तरह तरह के कार्यों में इस्तेमाल करते हैं, उतना साधारण और सामान्य पदार्थ नहीं, जितना हम इसे मान बैठे हैं। संसार के वैज्ञानिक इस सम्बन्ध में बराबर अनुसन्धान कर रहे हैं कि जल का आविर्भाव किस प्रकार होता है, उस में किस प्रकार की रासायनिक क्रियायें या प्रति क्रियायें होती हैं तथा उस का मौलिक रूप क्या है, परन्तु जल की रसायनिक प्रक्रियायें इतनी असमान्य हैं कि आज तो कोई भी वैज्ञानिक इन प्रश्नों का सही उत्तर नहीं दे पाया है। केलिफोर्निया इन्स्टिट्यूट ओव् टैक्नोलौजी के वैज्ञानिक भी अनेकों वर्षों से जल की रसायनिक प्रक्रियाओं, उस के आविर्भाव तथा उस के मौलिक स्वरूप की जानकारी प्राप्त करने के लिये निरन्तर प्रयत्नशील हैं। इस कार्य के लिये इन्स्टिट्यूट में एक विशेष परीक्षणशाला का निर्माण किया गया है। वैज्ञानिकों के अनुसार पानी में उठने वाले छोटे बुलबुले का जीवन अधिक से अधिक २३ मिनट होता है। उक्त परीक्षणशाला में ऐसी व्यवस्था की गई है, जिस की सहायता से एक सेकेन्ड में पानी के बुलबुले के कम से कम २० हजार चित्र उतार लिये जाते हैं। इस प्रकार बुलबुले के कुल जीवन काल का—उस के उद्भव से ले कर अन्त होने तक—समस्त इतिहास इन चित्रों के द्वारा प्राप्त कर लिया जाता है।

यदि जल पर अत्यधिक तीव्र गति से आघात किया जाए तो उस से एक प्रकार की नीली-सफेद आभा उत्पन्न होती है। विद्युत-यंत्र की सहायता से यह नीली-सफेद आभा विद्युत-तरंगों के रूप में परिणत होती है। ये विद्युत-तरंगें गामा विकिरण से युक्त होती हैं। इस प्रकार के विकिरण का उपयोग खाद्य-पदार्थों को दीर्घ-काल तक सुरक्षित रखने के लिये किया जा सकता है।

पानी में बुलबुले उठने की जो क्रिया होती है, वह बड़ी हानिकारक होती है। हर प्रक्रिया के फलस्वरूप पानी के नलकों में छेद हो जाते हैं, जहाज के पंखे बेकार हो जाते हैं तथा बड़े बड़े बांधों में लगे लोहे के विशाल फाटक तक गल जाते है। केलिफर्निया इन्स्टिट्यूट ओव् टैक्नोलौजी की परीक्षण शाला में इन्ही बुलबुलों के सम्बन्ध में कई वर्षों से निरन्तर अनुसन्धान हो रहा है। इस परीक्षण शाला में किये गये अनुसन्धानों से पता चला है कि सामान्य जल के सभी जल-कण आपस में पूरी तरह नहीं मिल पाते और उन के मध्य बहुत सी सूक्ष्म संधियां रह जाती हैं। पानी के अन्दर तेज गति वाला पंखे के घूमने के फलस्वरूप ये संधियां और चौड़ी तथा गहरी हो जाती हैं। इन्हीं संधियां में पानी की भाप से युक्त बुलबुलों का जन्म होता है। यदि पानी में किसी भी पदार्थ का सूक्ष्मातिसूक्ष्म कण मौजूद रहता है तो वह जल-कणों के सम्मिलन में बाधक होता है। लेकिन यदि कोई पदार्थ पानी में पूर्ण रूप से घुल जाए, अथवा जल को सभी बाहरी तत्वों से युक्त कर दिया जाये तो उस की मजबूती बढ़ जाती है। वस्तुतः इस प्रकार के कई परीक्षणों में वैज्ञानिकों ने पानी की धार के सहारे भारी बाटे टिका दिए, परन्तु पानी का तार नहीं टूटा।

इन बुलबुलों का अध्ययन करने में वैज्ञानिक अनेकों वर्षों से संलग्न हैं। इस से पता चलता है कि जल के सम्बन्ध में पूर्ण अनुसन्धान करने के लिए कितना समय चाहिए। उदाहरणार्थ तेजगति से उड़ने वाले जेट यानों के उपयोगार्थ ऐसा रसानिक पदार्थ तैयार करने के लिए, जिस पर वर्षा के जल का असर न पड़े, डा० पास्टर डि० स्वेल को चार वर्ष लग गये।

आज भी, हिम-कणों, जल के स्वरूप, औद्योगिक क्षेत्रों के जल में पाये जाने वाली विचित्र स्वाद और गंध और प्यास इत्यादि के सम्बन्ध में वैज्ञानिक लोगों को बहुत कम जानकारी है। कई दशाब्दों से निरन्तर प्रयत्न जारी रहने के बाद भी जल के वास्तविक स्वरूप की जानकारी अभी तक प्राप्त नहीं हो पाई हैं। जल कोई सामान्य पदार्थ नहीं, जैसी कि लोगों में धारणा है। कोई इसे हाइड्रोजन-२ और औक्सीजन-२ का संयोग मानते हैं, परन्तु अधिकांश वैज्ञानिकों में आज इस प्रश्न पर मतभेद है कि हाइड्रोजन के साथ औक्सीजन का कितना संयोग जल का निर्माण करता है! वह यह भी नहीं तय कर पाये हैं कि जल-कणों का अलग-अलग अस्तित्व है अथवा वह किसी बड़ी इकाई के पूरक अंश मात्र हैं।

वैज्ञानिक इस सम्बंध में अनुसंधान कर रहे हैं कि क्या समुद्र में फंसा मनुष्य खारे जल में जीवित रह सकता है। खारे पानी की मनुष्य के शरीर और अंगों पर क्या प्रतिक्रिया होती है, इस का भी अध्ययन किया जा रहा है। फ्रांस की नौसेना ने इस सम्बंध में एक परीक्षण किया था। इस परीक्षण में डा० एलियन वोमवार्ड ने १९५३ में कैनारी द्वीप से बाखोडास द्वीपतक लट्ठों के बेड़े पर यात्रा की थी। अमेरिकी और ब्रिटिश वैज्ञानिकों ने भी इस सम्बंध में अनेकों परीक्षण किये हैं।

इस से सम्बंधित एक दूसरी समस्या भी है। यह समस्या है खारे जल को शुद्ध कर पीने योग्य बनाने की, क्यों कि बहुत से स्थानों में शुद्ध जल का अभाव है।

अमेरिका तथा संसार के अनेक देश खारे पानी को मीठे जल में परिणत करने के सम्बंध में निरंतर परीक्षण कर रहे हैं। अकेले अमेरिका में प्रतिदिन २ खरब ६२ अरब गैलन जल खर्च होता है और यह आशा है कि १९७५ तक इस की मात्रा दुगनी हो जायेगी। अतएव मीठे जल की बढ़ती हुई आवश्यकताओं को दृष्टि में रखते हुये यह आवश्यक हो गया है कि समुद्र के खारे जल को मीठे जल में परिवर्तित करने का कोई सरल और सस्ता साधन ढूंढ़ निकाला जाए।

अमेरिका में १ हजार गैलन जल साफ करने पर लगभग २० सेन्ट लागत बैठती है और खारे जल को साफ कर मीठा जल तैयार करने वाले कारखाने प्रति हजार गैलन के लिए १.५० डालर से ले कर ३ डालर तक वसूल करते हैं। अतएव वैज्ञानिकों के समक्ष सब से बड़ी समस्य यह है कि खारे जल को शुद्ध करने पर आने वाली लागत को किसी प्रकार घटाया जाये। अमेरिकी गृह-विभाग इस सम्बंध में लगभग ५० परीक्षण-योजनाओं में संलग्न है।

लगभग ६ वर्ष के अन्दर अमेरिका में खारे जल को मीठे जल में परिणत करने के लिये एक नया यन्त्र तैयार हो जाएगा। इस में गहरे ट्रे नुमा बर्तनों में खारा जल भरा होगा। इन बर्तनों के नीचे से भाप गुजरेगी और इस भाप के जोर से खारे जल से भरे पात्र चक्कर काटने लगेगें। इसी प्रक्रिया के दौरान में बर्तनों में भरा जल वाष्प के रूप में परिणत होने लगेगा। खारे जल से भरे ट्रे नुमा बर्तनों के ठीक ऊपर दूसरे ट्रे नुमा बर्तन फिट होंगे। नीचे से उठने वाली भाप इन्हीं बर्तनों में जा कर जल के रूप में परिणत हो जाएगी और इस प्रकार ऊपर के सभी बर्तनी में एकत्र होने वाली भाप पानी के रूप में परिणत हो कर एक नलके की राह जलागार में चला जाएगा। यह सम्पूर्ण यन्त्र केवल १० फुट ऊंचा होगा और इसका व्यास भी १० फुट से अधिक नहीं होगा। यन्त्र में २० से ले कर २५ तक बर्तन फिट रहेंगे। एक दिन में यह यन्त्र १ लाख से लेकर २ लाख गैलन तक खारा जल साफ कर सकेगा। इस नये यन्त्र का विकास कैलिफोर्निया विश्व-विद्यालय के रसायनिक इन्जिनियर डा० लुइस ए० ब्रामले द्वारा तैयार किया

जा रहा है । इस के द्वारा १ हजार गैलन खारा पानी साफ करने पर ३० सेन्ट से अधिक खर्च नहीं आएगा ।

कुछ अन्य वैज्ञानिक खारे जल को साफ करने के लिये ऐसी छन्नियां तैयार करने में संलग्न हैं, जिन में सूर्य ताप का उपयोग किया जाएगा । इस प्रकार की छन्नियां भी काफी परिमाण में खारे जल को साफ कर सकेंगी ।

एक दूसरी विधि है खारे पानी को जमा कर साफ करने की । वैज्ञानिकों का कथन है कि पानी को उबालने के बजाय उसे जमाने पर कम शक्ति खर्च होगी और इस प्रकार की विधि द्वारा जो पानी प्राप्त होगा वह ९९ प्रतिशत शुद्ध होगा । बैटले मेमोरियल रिसर्च इंस्टिट्यूट कोलम्बस (ओहायो राज्य) के अनुसन्धान-कर्ताओं ने बर्फ जमाने की नियन्त्रित विधि का प्रयोग कर समुद्र जल को पेय जल के रूप में बदलने में पर्याप्त सफलता प्राप्त की है । इस विधि द्वारा जो जल शुद्ध किया गया, उस में लवण की मात्रा बहुत ही न्यून रही ।

समुद्रों में तथा पृथ्वी पर जल सम्बन्धी अनुसन्धान-कार्य बड़ी तेजी से हो रहा है । काहिरा विश्वविद्यालय के एक वैज्ञानिक एम० ए० एच० फल सैयद मिश्र की मरु भूमि में काफी नीचे मौजूद जल का पता लगाने के लिये एक नई विधि का उपयोग कर रहे हैं । विशेष यन्त्र की सहायता से वह रेडियो की ध्वनि-तरंगें पृथ्वी के गर्भ में भेजते हैं । कुछ रेडियो-तरंगें सतह के साथ साथ जाती हैं और कुछ भूमि-गर्भ में प्रविष्ट हो कर जल की सतह से टकराती हैं और उन की प्रति ध्वनि पुनः ऊपर की ओर वापस लौटती है । रेडियो ट्रांसमिटर से कुछ सौ फुट की दूरी पर रखे रेडियो संकेत ग्राहक यन्त्र द्वारा इन तरंगों की प्रति-ध्वनि ग्रहण कर ली जाती है और इस के आधार पर डा० सैयद यह पता लगा लेते हैं कि पृथ्वी के गर्भ में किस गहराई पर पानी मौजूद है ।

खारे पानी को मीठे पानी में बदलने के सम्बन्ध में अनुसन्धान करने के साथ वैज्ञानिकगण इस बात के लिए भी प्रयत्नशील हैं कि जल के सुलभ भन्डार को कम न होने दिया जाए । वैज्ञानिकों ने यह खोज निकाला है कि यदि झीलों और जलागारों पर हैक्साडिकैनोल नामक रसायनिक पदार्थ की परत पड़ जाये तो भाप बन कर उड़ने वाला ७५ प्रतिशत जल बचाया जा सकता है । अफ्रीका, आस्ट्रेलिया और अमेरिका में इस सम्बंध में अनेकों बार सफल परीक्षण भी किए जा चुके हैं । यह रसायन पानी के ऊपर तेल की तरह छाया रहता है और जलकणों को भाप बन कर नहीं उड़ने देता ।

यही नहीं, वैज्ञानिक आणविक विस्फोटों या आणविक पदार्थों के सम्पर्क में आने के कारण दूषित हो गए जल को शुद्ध करने के तरीकों की खोज में भी संलग्न हैं ।

—'साइन्स डाइजेस्ट' से

समुद्र के गर्भ में रहस्यों की खोज

अनेक लोगों की यह धारणा है कि हमें चन्द्रमा की अपेक्षा पृथ्वी के सम्बन्ध में कम जानकारी हासिल है। इसका मुख्य कारण यह है कि पृथ्वी का तीन चौथाई भाग जल-मग्न है। १९५७-५८ के भू-भौतिक वर्ष में २० देशों के ८२ जहाजों ने विश्व के समुद्रों की छानबीन की। इस छानबीन के परिणाम स्वरूप समुद्र के सम्बन्ध में नयी बातों का पता लगाने में महत्वपूर्ण सफलता मिली है।

अन्तर्राष्ट्रीय भू-भौतिक वर्ष ससार के इतिहास में अन्तर्राष्ट्रीय वैज्ञानिक सहयोग की दृष्टि से बहुत बड़ा प्रयत्न कहा गया है। इस अवधि में ६६ देशों के लगभग ६० हजार वैज्ञानिकों और टेक्निशियनों तथा उतने ही पर्यवेक्षकों ने संसार के सभी भागों में स्थिति लगभग ४ हजार केन्द्रों में पृथ्वी और उसके वातावरण के संवंध में खोजबीन की हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय भू-भौतिक वर्ष के सामुद्रिक कार्यक्रम का उद्देश्य मुख्यतः समुद्र के बहुत नीचे बहने वाली धाराओं के प्रवाह, समुद्र के तल में विश्व-व्यापी परिवर्तन तथा दीर्घकालीन तरंगों आदि के सम्बन्ध में अध्ययन करना था, किन्तु जब उस कार्यान्वित किया गया तो बहुत से नये एवं दिलचस्प तथ्यों का पता लगा।

उदाहरण के तौर पर, यह पता चला है कि 'गल्फ स्ट्रीम' के लगभग १० हजार फुट नीचे जल की एक तेज धारा मौजूद है, जो विपरीत दिशा में बहती है। 'गल्फ स्ट्रीम' अमेरिका के पूर्वी तट के साथ साथ उत्तर की ओर बहती है और फिर अतलान्तक पार करने के लिए पूर्व की ओर मुड़ जाती है। ऐसे पीपों का प्रयोग करके उस धारा का पता लगाया गया हैं, जो एक निश्चित गहराई से ऊपर नहीं जा सकते थे। उन पीपो को जल में छोड़ दिया गया था और जल के भीतर बहुत नीचे बहने वाली धारा के साथ बहते हुए उन से जो ध्वनि निकलतीं थी उसका अनुसरण कर के उक्त धारा का पता लगाया गया।

प्रशान्त सागर में एक ऐसी धारा है, जो पनामा से पश्चिम की ओर हो कर एशिया की ओर बहती है। अन्तर्राष्ट्रीय भू-भौतिक वर्ष के कार्यक्रम में भाग लेने वाले वैज्ञानिकों ने इस धारा के भी नीचे बहने वाली एक ऐसी शक्तिशाली धारा का पता लगाया है जो विपरीत दिशा में बह रही हैं।

भूमध्य-रेखा वर्ती प्रशान्त सागर में पूर्व दिशा में जल के बहाव के सम्बन्ध में की गई नई मापों से पता चलता है कि पूर्व के अनुमान से यह कम से कम तीन गुना अधिक है वैज्ञानिकों ने सुझाव दिया है कि प्रशान्त सागर के जल सन्तुलन और प्रवाह आदि के सम्बन्ध में बिल्कुल नये सिरे से अध्ययन किया जाना चाहिये।

इसी प्रकार एक अन्य आश्चर्यजनक खोज यह की गई है कि कुछ क्षेत्रों में समुद्र के जल के नीचे एक प्राचीन ज्वालामुखी पर्वत का लावा बह रहा है, जिस के ताप से आस पास के क्षेत्र अब भी गर्म रहते है। अन्तर्राष्ट्रीय भू-भौतिक वर्ष के कायंक्रम के अन्तंगत जो खोज बीन की गई है, उस से समुद्र तल के सम्बन्ध में बड़ी महत्वपूर्ण जानकारी हासिल हुई है। पता चला है कि हवाई द्वीप के दक्षिण में एक पर्वत है, जो अल्युशियन द्वीपों से शुरू होकर प्रशान्त सागर का उसी प्रकार विभाजन करता है जिस प्रकार अतलान्तक पर्वत श्रेणी अतलान्तक सागर को विभक्त करती है।

वैज्ञानिकों ने पता लगाया हैं कि पेरू के तट के परे जल के नीचे बहुत बड़ी पर्वतमाला है, जो नास्कारिज कहलाती हैं। यह पर्वत माला दक्षिण-पश्चिम को ओर

सम्भवतः १ हजार मील तक फैली हुई है और इसकी चौड़ाई लगभग २०० मील है। इसी प्रकार वैज्ञानिकों ने पता लगाया है कि विश्व के दूसरे छोर पर दक्षिणी ध्रुव सागर के नीचे एक ऐसी पर्वतमाला जलमग्न है, जिसकी उँचाई ५ हज़ार फुट है।

मेरियना दीप समूह के पूर्व में पश्चिमी प्रशान्त सागर की सतह के नीचे वैज्ञानिकों ने समुद्र गर्भ में स्थित 'नैरीडीप' नामक सबसे गहरी घाटी का अध्ययन किया। इस की अधिकतम गहराई ३६,०५६ फुट अथवा लगभग ७ मील पाई गई। इस घाटी के तल में से जो तलछट के नमूने ऊपर लाए गये, उनसे पता चलता है कि वहां जीव जन्तु नहीं हैं, किन्तु प्रशान्त सागर के कई अन्य गहरे स्थानों में अनेक प्रकार के जीव-जन्तु पाये गये।

इसके अलावा अन्तर्राष्ट्रीय भू-भौतिक वर्ष के कार्य-क्रम में भाग लेने वालों ने यह मालूम किया है कि प्रशान्त सागर के तल में लोहा, कोबाल्ट तथा तांबा आदि धातुएं मौजूद हैं। यदि उन्हें कम खर्च करके निकालना सम्भव हो सके, तो व्यापार की दृष्टि से उनका बड़ा महत्व होगा। निःसन्देह वैज्ञानिकों ने समुद्रों के विषय में छानबीन करके अनेक रहस्यों का पता लगा लिया है।

बड़े पैमाने पर कृत्रिम रबड़ का उत्पादन

'पोलिइसोपरेन' नामक कृत्रिम रबड़ का व्यापारिक दृष्टि से उत्पादन होने लगा है। अमेरिकी रबड़ कम्पनी ने पौलिइसोपरेन से ट्रकों के टायर बनाने प्रारम्भ कर दिये हैं। शैल कैमिकल कार्पोरेशन व्यापार के लिए यह कृत्रिम रबड़ तैयार करती है। यह रबड़ असली रबड़ से सस्ती है।

हाल में एक प्रेस सम्मेलन में अमेरिकी रबड़ कार्पोरेशन के अध्यक्ष जोन डब्ल्यू० मैकगवर्न और शैल गार्डी ने जो संयुक्त घोषणा की थी, वह रबड़ के सम्बन्ध में बड़ी ही महत्वपूर्ण समझी जाती है। उन्होंने अपनी संयुक्त घोषणा में बताया है कि अब तक सैनिक तथा गैर-सैनिक दोनों ही प्रकार के टायरों में प्राकृतिक रबड़ का प्रयोग किया जाता रहा है। किन्तु अब इस के लिये केवल प्राकृतिक रबड़ पर निर्भर रहने की आवश्यकता नहीं रहेगी।

आशा है कि इस कृत्रिम रबड़ का प्राकृतिक रबड़ के मूल्यों पर स्थायी प्रभाव पड़ेगा।

भूकम्पों पर विचार विनिमय

गोपाल शर्मन

गर्व से मस्तक उठाये पर्वतराज हिमालय की शीतल स्निग्ध छाया में स्थित रुड़की इंजीनियरिंग विश्वविद्यालय में फरवरी माह में भारत तथा अन्य देशों के भवन-निर्माता इंजीनियरों ने एकत्र होकर भूकम्प से भवनों की सुरक्षा करने के उपायों पर गम्भीर विचार-विनिमय किया। भारत में अति प्राचीन काल से प्रचलित लोकगाथा के अनुसार जब-जब हिमाच्छादित और निर्जन पर्वत शृंगों पर निवास करने वाले भगवान शिव रौद्र रूप धारण कर ताण्डव नृत्य करने लगते हैं तब-तब उनके चरणों की प्रत्येक थाप से धरती कम्पायमान होने लगती है और इसी के फलस्वरूप भूकम्पों की सृष्टि होती है।

रुड़की इंजीनियरिंग विश्वविद्यालय द्वारा भूकम्पों के सम्बन्ध में विचार करने के उद्देश्य से आयोजित उक्त गोष्ठी में भाग लेने के लिए ससार के अन्य देशों के वैज्ञानिक भी एकत्र हुए। भारत के विभिन्न प्रान्तों के इन्जीनियरों के विशेषज्ञों ने इस गोष्ठी में उत्साहपूर्वक योग दिया। अभ्यागत इन्जीनियरों में कई भूकम्पों के सम्बन्ध में अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के माने हुये विशेषज्ञ थे। इनमें डा० जार्ज डब्ल्यू० हौजनर और 'अर्थक्वेक रिसर्च इन्स्टिट्यूट' (टोकियो विश्वविद्यालय) के डा० नौबर्जा नाखू के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन इन्जीनियरों ने मुख्यतः इस प्रश्न पर विचार किया कि भवन-निर्माण में किन विधियों का प्रयोग किया जाये जिससे उन पर भूकम्पों का प्रभाव न पड़े।

भारत के विकास कार्यों पर दृष्टिपात करने से यह भली भांति स्पष्ट हो जाता है कि एशिया और अफ्रीका के विकासोन्मुख देशों में इस प्रकार की निर्माण विधियों की अत्यधिक आवश्यकता है। स्वाधीन भारत के ११ वर्षों के शैशव काल में सैकड़ों बहु उद्देश्यीय योजनायें अमल में लाई गईं। इन योजनाओं के अन्तर्गत बड़े पैमाने पर विशाल निर्माण कार्य या तो किए जा चुके हैं या हो रहे हैं। भारत सरकार के सार्वजनिक निर्माण, आवास और सप्लाई मन्त्रालय के सचिव श्री एच० आर० सचदेव ने उक्त गोष्ठी का उद्घाटन करते हुये कहा था कि विकास योजनाओं के अन्तर्गत जो विस्तृत और विशाल निर्माण-कार्य हो रहे हैं, उनकी मजबूती और सुरक्षा पर ही एक प्रकार से राष्ट्र की समृद्धि और सुरक्षा निर्भर करेगी। इन निर्माण कार्यों पर राष्ट्र का इतना अधिक मानव श्रम और धन व्यय हो रहा है कि हम किसी प्रकार भी उनकी हानि या क्षति सहन नहीं कर सकते..हमें इस सम्बन्ध में पूर्ण आश्वस्त हो जाना है कि विशाल विकास योजनाओं के असफल हो जाने के फलस्वरूप हमें आर्थिक विनाश और संकट का सामना न करना पड़े।

यदि हम भूतकाल पर एक दृष्टि डालें तो हमें पता चलेगा कि जिस वर्ष भारत में अनेक निर्माण योजनायें पूरी हुईं, उसी वर्ष, अर्थात् अगस्त १९५० में, आसाम में विनाशकारी भूकम्प आये। जब तक इन भूकम्पों के प्रभावों से बचने के लिए तुरन्त प्रभावशाली कदम नहीं उठाए जाते तब तक विशाल निर्माण-योजनाओं के क्षतिग्रस्त होने के भय से भी मुक्ति नहीं मिल सकती।

रुड़की विश्वविद्यालय के उपकुलपति डा० ए० एन० खोसला ने उक्त गोष्ठी के महत्व पर प्रकाश डालते हुये कहा कि भारत में भूकम्पों तथा भवनों पर उनके दुष्प्रभावों के विधिवत् और व्यवस्थित अध्ययन की दिशा में यह पहला महत्वपूर्ण कदम है। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत रुड़की विश्वविद्यालय में भूकम्पों के सम्बन्ध में अध्ययन

और अनुसन्धान के लिए एक स्कूल भी खोला जाने वाला है।

रुड़की इन्जीनियरिंग विश्वविद्यालय के तत्वावधान में आयोजित उक्त गोष्टी में विभिन्न देशों के इन्जीनियरों के मध्य हुआ विचार-विमर्श बहुत दिलचस्प और उपयोगी सिद्ध हुआ है। इसके पूर्व १६५६ में रुड़की विश्वविद्यालय के एक प्रोफेसर डा० जय कृष्ण ने ६ माह तक अमेरिका में इन्जीनियरिंग की शिक्षा प्रदान करने वाली प्रसिद्ध संस्था 'कैलिफोर्निया इन्स्टिट्यूट ऑव् टैक्नोलौजी' में अतिथि प्रोफेसर के रूम में कार्य किया था।

उक्त इन्जीनियरिंग संस्थान भूकम्प के प्रभाव को सहारने की क्षमता रखने वाली भवन-निर्माण विधियों के विकास में जो महत्वपूर्ण योग दे रहा था, उससे डा० जय कृष्ण विशेष प्रभावित हुये थे। यह स्वयं भवन-निर्माण इन्जीनियर होने के नाते यह भली भांति अनुभव कर रहे थे कि भारत में भी ऐसी विधियों के विकास की ओर पर्याप्त ध्यान दिया जाए, जिनमें भूकम्प के प्रभाव को सहारने की क्षमता हो और इस तथ्य को दृष्टि में रख कर उन्होंने उक्त इन्जीनियरिंग संस्था के भूकम्प इन्जीनियरिंग कार्यक्रम से सम्बन्धित विशेषज्ञों—डा० जौर्ज डब्ल्यू० हौजनर और डोनाल्ड ई० हडसन से सम्पर्क स्थापित किया। डा० जय कृष्ण ने उन्हें बताया कि स्वदेश वापस लौटने पर वह रुड़की विश्वविद्यालय में भी भूकम्प इन्जीनियरिंग के सम्बन्ध में एक स्कूल खुलवाने के लिए भरसक चेष्टा करेंगे। उक्त दोनों अमेरिकी इन्जीनियरों ने उनकी इस योजना के प्रति गहरी अभिरुचि प्रकट की।

भाग्यवश इसी अवसर पर रुड़की विश्वविद्यालय के उपकुलपति डा० ए० एन० खोसला ने अमेरिका की यात्रा की और उन्होंने उक्त अमेरिकी इन्जीनियरों से भेंट की। डा० हौजनर का कथन है कि इन भेंटों के फलस्वरूप ही भारत में भूकम्पों के कारण उत्पन्न होने वाली समस्याओं की तरफ हमारा ध्यान आकृष्ट हुआ।

अमेरिका से वापस लौटते समय डा० जय कृष्ण ने डा० हौजनर और डा० हडसन को रुड़की विश्वविद्यालय में आने के लिए आमन्त्रित किया। भारत वापस आने पर भी यह इस दिशा में निरन्तर प्रयत्नशील रहे। इस सम्बन्ध में अमेरिकी टैक्निकल मिशन से भी सम्पर्क स्थापित किया गया और अन्ततोगत्वा पिछले वर्ष अक्तूबर माह में टैक्निकल सहयोग मिशन के माध्यम से डा० हडसन की सेवायें रुड़की विश्वविद्यालय को सुलभ हो गईं।

इस प्रकार डा० जय कृष्ण की योजना साकार रूप ग्रहण करने लगी। लेकिन भूकम्प इन्जीनियरिंग के अध्ययन के सम्बन्ध में एक नियमित कार्यक्रम तैयार करने के पहले यह आवश्यक था कि इस क्षेत्र में देश के अन्दर अब तक की गई खोज की जानकारी प्राप्त की जाए, ताकि पुनरावृत्ति का भय न रहे। अतएव एक गोष्ठी बुलाने का निर्णय किया गया तथा इस गोष्ठी में शामिल होने के लिए भारत तथा भारत के बाहर की इन्जीनियरिंग संस्थाओं को आमन्त्रित किया गया। एक बार पुनः अमेरिकी टैक्निकल मिशन रुड़की विश्वविद्यालय की सहायता के लिए आगे आया और विस्कौंसिन विश्वविद्यालय से समझौता कर उसने स्वयं डा० हौजनर की सेवायें १ माह के लिए विश्वविद्यालय को सुलभ कर दीं ताकि वे गोष्ठी के संयोजकों को उचित परामर्श दे सकें और उनका पथ-प्रदर्शन कर सकें।

इस गोष्ठी में भारत तथा विदेशों की इन्जीनियरिंग संस्थाओं के ५० से अधिक प्रतिनिधियों ने भाग लिया। गोष्ठी में भूकम्प इन्जीनियरिंग के सम्बन्ध में अनेक अनुसन्धानात्मक लेख पढ़ कर सुनाए गये। इसमें कोई सन्देह नहीं कि यह गोष्ठी भूकम्प इन्जीनियरिंग के सम्बन्ध में भारत के इन्जीनियरों का ध्यान आकृष्ट करने में पूर्ण सफल सिद्ध हुई है।

इस प्रकार भारत में भूकम्प इन्जीनियरिंग के सम्बन्ध में अध्ययन और अनुसन्धान करने की दिशा में पहला कदम सफलतापूर्वक उठा लिया गया है। यद्यपि भविष्य में इस क्षेत्र में होने वाली प्रगति बहुत कुछ इन्जीनियरों और अनुसन्धान कर्त्ताओं के प्रयत्नों पर ही निर्भर

करेगी, फिर भी बाहर से मिलने वाली सहायता इस प्रगति को निश्चय ही अधिक गति प्रदान कर सकेगी। विश्वविद्यालय के उप कुलपति ने इस सम्बन्ध में विचार प्रकट करते हुये यह कहा भी है कि मुझे पूर्ण विश्वास है कि शिक्षा टैक्निकल कार्यों तथा अनुसन्धान कार्यों के विकास के लिए प्रयत्नशील संस्थाएं, जैसे टैक्निकल सहयोग मिशन, फोर्ड प्रतिष्ठान, यूनेस्को इत्यादि विश्वविद्यालय में भूकम्प इन्जीनियरिंग के अध्ययन और अनुसन्धान की व्यवस्था करने के लिए निश्चय ही उदारतापूर्वक अपना सहयोग प्रदान करेंगी।

मलेरिया उन्मूलन कार्यक्रम

१. मलेरिया के विरुद्ध मनुष्य के संघर्ष की दो महत्वपूर्ण घटनायें है। पहली, १८२० में सिनकोना की छाल से कुनैन का आविष्कार, दूसरे, १८९७ में रोनल्ड रास द्वारा इस बात की खोज कि मच्छर ही मलेरिया फैलाते हैं।

२. यद्यपि पहले भी देश में मलेरिया की रोकथाम के लिए कई उपाय किये गये थे, किन्तु अप्रैल १९५३ में राष्ट्रीय मलेरिया नियंत्रण कार्यक्रम चलाया गया और तभी से मलेरिया उन्मूलन का काम सिलसिलेवार तौर पर किया जाने लगा।

३. पहली पंचवर्षीय योजना में सार्वजनिक स्वास्थ्य कार्यक्रम में मलेरिया की रोकथाम को ही प्राथमिकता दी गयी।

४. १९५३-५४ से १९५६-५७, इन दो वर्षों में मलेरिया से पीड़ित होने वालों की संख्या में ६६ प्रतिशत कम हुई।

५. अप्रैल १९५८ में मलेरिया नियन्त्रण कार्यक्रम का उद्देश्य मलेरिया रोग की रोकथाम के स्थान पर मलेरिया रोग का समूल नाश कर दिया गया। हिसाब लगा कर देखा गया कि मलेरिया उन्मूलन कार्यक्रम कहीं अधिक सस्ता पड़ता हैं।

६. इस कार्यक्रम के अन्तर्गत १९५८-५९ से १९६०-६१ तक उन क्षेत्रों के मकानों, तलाबों और गौशालाओं में जहां बार बार मलेरिया फैलता है, मच्छर मारने की दवा छिड़की जायेगी।

७. मलेरिया उन्मूलन कार्यक्रम के दूसरे चरण में कुछ विशेष कर्मचारी रखे जायेंगे, जो इस बात की जांच करेंगे कि दवा छिड़कने से मलेरिया उन्मूलन में कितनी सफलता मिली है और आगे दवा छिड़कने की आवश्यकता है या नहीं। इसके बाद देख-रेख का यह काम तीन साल तक चालू रहेगा।

८. चालू तथा अगली योजना की अवधि में मलेरिया उन्मूलन कार्यक्रम पर ६३ करोड़ २४ लाख रु० खर्च होगा, जबकि मलेरिया नियन्त्रण कार्य-क्रम पर ५२ करोड़ २ लाख रु० खर्च होगा।

९. डी० डी० टी० दवा मच्छर मारने के काम आती है। नयी दिल्ली में १९५५ में डी० डी० टी० का एक कारखाना खोला गया। यह कारखाना अन्त र्राष्ट्रीय बाल आपात् कोष, विश्व स्वास्थ्य संगठन और भारत सरकार ने मिल कर खोला है। डी० डी० टी० का दूसरा कारखाना अल्वाई (केरल) में खोला जा रहा है। इसके लिये भारत सरकार आर्थिक सहायता दे रही है।
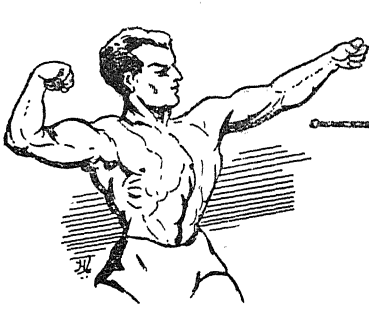
फिलेरियासिस रोग के प्रसार की रोकथाम

भारतीयों के स्वास्थ्य और उनकी आर्थिक स्थिति पर प्रभाव डालने वाले मच्छर-जनित संक्रामक रोगों में मलेरिया के बाद सबसे अधिक विनाशक रोग फिलेरियासिस है।

इस देश में यह रोग सबसे अधिक केरल के तटवर्ती प्रदेशों में होता है। वहां इस भयानक रोग ने लाखों लोगों को अपगं कर डाला है। अनेक अन्य राज्यों, मुख्यतः उड़ीसा में भी यह रोग काफ़ी पाया जाता है।

अपंग कर देने के अलावा, यह रोग उन लोगों के लिए सामाजिक अभिशाप भी है, जिन्हें बिमारी के बढ़ जाने पर फीलपाँव हो जाता है। अनेक क्षेत्रों में इस रोग का शिकार होने वाली लड़कियों का विवाह तक नहीं हो पाता।

डा० एन० जी० एस० राघवन के नेतृत्व में दिल्ली की मलेरिया इन्स्टियूट के फिलेरियासिस डिविजन के मातहत पिछले पांच वर्षों से राष्ट्र भर में नियन्त्रणकारी कार्यवाहियों का विस्तार किया जा रहा है। किन्तु फिलेरियासिस फैलाने वाले मच्छरों के सम्बन्ध में कुछ आधारभूत बातों का अभी तक पता नहीं चला है। इसके अलावा इस रोग के निदान सम्बन्धी कुछ पहलुओं का भी अभी पता लगाना बाकी है। उदाहरण के तौर पर केरल के तटवर्ती इलाकों तथा अन्य प्रदेशों में फिलेरियासिस फैलाने वाले मच्छर की आयु और प्रवृतियों के सम्बन्ध में अभी विस्तार पूर्वक पता लगाना होगा, हालांकि कुछ वर्ष पहले कुछ भारतीय अनुसन्धान कर्त्ताओं ने इस विषय में महत्वपूर्ण प्रारम्भिक खोजबीन की है।

मलेरिया इन्स्टियूट के फिलेरियासिस डिविजन को इस खोजवीन में इन दिनों दो अमरिकी विशेषज्ञ सहयोग दे रहे हैं। इन दिनों विशेषज्ञों की सेवाएं भारत-स्थिति अमेरिका से टेक्निकल सहयोग मिशन द्वारा प्रदान की गई है।

डाक्टरी कीट विद्या विशारद डा० जौर्ज जे० बर्टन जुलाई १९५८ में और जन स्वाथ्य चिकित्सक डा० पीटर जी० कौएटेकौस अक्टूबर १९५८ में इस देश में आये थे। ये दोनो विशेषज्ञ अपना कुछ समय दिल्ली की मलेरिया इन्स्टिट्यूट में और कुछ समय एर्नाकुलम (केरल) स्थिति मलेरिया के फिलेरियासिस प्रशिक्षण केन्द में बिताते हैं।

रोग का पूरा विवरण

हाल में मद्रास पहुँचने पर इन विशेषज्ञों ने लेखक को इस रोग का पूरा विवरण दिया।

संक्रामक चक्र मोटे तौर पर इस प्रकार चलता है :— जिस व्यक्तिको यह बीमारी लगती है, उसके शरीर में पतले और लम्बे कीड़े पलने लगते हैं। ये कीड़े रोगी के रक्त में आमतौर पर रात के आठ बज से लेकर प्रातः ४ बजे तक गतिशील रहते हैं।

फिलेरियासिस फैलाने वाला मच्छर इस अवधि के दौरान में रोगी मनुष्य को काट कर उसके शरीर से भ्रूण ग्रहण कर लेता है। ये भ्रूण एक से दो सप्ताह के भीतर मच्छर की छाती में पल कर छूत फैलाने वाले डिम्भ का रूप धारण कर लेते हैं। जब यह मच्छर किसी स्वस्थ-व्यक्ति को काटता है तो मच्छर के मुख के आगे बढ़े हुए भाग से वह डिम्भ निकलकर उसव्यक्ति की त्वचा से होकर शरीर में प्रविष्ट हो जाता है। एक साल या उससे कम समय में डिम्भ बढ़ कर कीड़े बन जाते हैं। ये कीड़े मनुष्य की लसिका वाहनियों और ग्रन्थियों में रहते हैं।

शुरू में फिलेरियासिस का रोगी अक्सर ज्वर तथा अन्य तकलीफों से पीड़ित रहता है। यदि रोग बढ़ जाये तो फीलपाँव हो जाता है। रोग की इस उग्र अवस्था में शरीर के अंग असाधारण रूप से फूल जाते हैं। ऐसा कीड़ों के शरीर से निकले स्राव द्वारा उत्पन्न अवरोध से होता है।

८० से ९० प्रतिशत तक यह रोग घरों में पलने वाले साधारण मच्छरों द्वारा फैलता है। मिट्टी के तेल को छोड़ कर, सामान्य कीटमार दवायें इन मच्छरों को मारने में सफल नहीं होतीं। दस से बीस प्रतिशत तक यह रोग मैन्सोनिया नामक एक अन्य किस्म के मच्छर से फैलता है। ये मच्छर जलीय वनस्पतियों में पैदा होते हैं।

'राष्ट्रीय फिलेरिया नियन्त्रण कार्यक्रम' के अन्तर्गत मुख्यतः फिलेरियासिस फैलाने वाले मच्छरों को नष्ट करने तथा पीड़ित क्षेत्रों में रोगियों के उपचार का प्रयत्न किया जाता है। अभी तक इस रोग की रोकथाम करने वाली कोई दवा नहीं निकली है।

हैट्राजन की प्रतिदिन २ गोलियां

फिलेरियासिस-उपचार आन्दोलनों में लोगों को 'हैट्राजन' नामक दवा की २ गोलियां प्रतिदिन के हिसाब से पांच दिन तक दी जाती है। ख्याल है कि दवा की इस मात्रा का प्रभाव एक वर्ष तक रहता है। इस विधि द्वारा नये रोगियों में रोग बढ़ने की संभावना कम हो जाती है, क्योंकि यह विश्वास किया जाता है कि यह दवा शरीर में घूमने वाले माइक्रोफिलेरिया नामक सब कीड़ों को मार डालती है। इसलिये मनुष्य का रक्त चूसते समय मच्छर इन कीड़ों को ग्रहण नहीं कर सकता। इस प्रकार रोग का प्रसार भी रुक जाता है।

अमेरिकी टैक्निकल सहयोग मिशन ने बहुत बड़ी मात्रा में यह दवा प्रदान की है। पीड़ित इलाकों में यह दवा लोगों को मुफ्त दी जाती है।

इस दवा के सेवन से, रोगी को अक्सर एक से तीन दिन तक चार पाई पर पड़े रहना पड़ता है। यही वजह है कि सभी लोग इस दवा का सेवन करने को तैयार नहीं होते, क्योंकि अधिकांश व्यक्ति बिना कमाये घर पर नहीं पड़े रह सकते।

इस सिलसिले में डा० बर्टन ने ताहिती नामक बस्ती का जिक्र किया। वहां पिछले ७ वर्षों में मच्छरों के विनाश के साथ-साथ हैट्राजन का प्रयोग करके फिलेरियासिस को फैलने से प्रायः पूरी तरह रोक दिया गया है। ऐसा इसलिए हो सका, क्योंकि एक तो मालिकों की ओर से बहुधा यह कह दिया गया कि जो लोग इस दवा के प्रयोग से बीमार पड़ेंगे उन्हें बीमारी के दिनों का भी वेतन मिलेगा, और दूसरे लोग स्वयं भी इस भयानक रोग से बचना चाहते थे। उन्होंने मच्छरों के स्थानों को खत्म करने में मदद दी और दवा के कारण होने वाली परेशानी के बावजूद उसे सहर्ष स्वीकार कर लिया।

उड़ीसा की लोहा खान योजना

अक्टूबर १६५५ में सिंगापुर में कोलम्बो योजना के सदस्य देशों का एक सम्मेलन हुआ था। तभी से भारत, जापान और अमेरिका को सरकारों के प्रतिनियियों ने उड़ीसा लौह खनिज योजना के सम्बन्ध में बातचीत चल रही हैं। अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग प्रशासन के निदेशक के नेतृत्व में एक अमीरीकी शिष्ट मंडल ने राउर केला चेत्र में रेल मार्ग के निर्माण की सम्भावनाओं पर विस्तार से बातचीत की। इसके बाद पिछले वर्ष जापानी इस्पात-उद्योग के प्रतिनिधियों के साथ बातचीत की गई, जिस के फलस्वरूप मार्च १६५८ में भारतीय लौह-खनिज वार्ता समिति और जापान के इस्पात मिशन के बीच में एक समझौता हुआ।

उड़ीसा की विशाल लौह-खनिज योजना को पूरा करने के सिलसिले में पहली कार्यवाही अब पूरी हो गई है। इस योजना के अन्तर्गत अन्य कार्यों के अलावा खान से लेकर समुद्रतट तक १३५ मील लम्बी रेल लाइन भी बिछाई जायेगी।

दक्षिण-पूर्वी रेलवे ने हाल में जब सम्बलपुर से तितिलागढ़ तक रेलवे लाइन के निर्माण के सम्बन्ध में जाँच पड़ताल की तो इस कार्यवाही से बहु-प्रयोजनीय उड़ीसा लौह-खनिज योजना का पहला दौर शुरू हो गया। इस योजना का उद्देश्य जापान को प्रतिवर्ष २० लाख टन लौह खनिज का निर्यात करना और भारतीय खनिज-चेत्र के विकास में मदद देना हैं।

आवश्यक वस्तुओं की प्राप्ति

अमेरिकी सहायता का उपयोग योजना से सम्बद्ध रेलवे और बन्दरगाह सम्बन्धी सुविधाओं के सुधार और विस्तार के लिए आवश्यक वस्तुए और सेवाए प्राप्त करने पर किया जायेगा। आशा हैं कि सम्भलपुर और तितिलागढ़ के बीच १११ मील लम्बी लाइन बिछाई जायेगी, इस इलाके को दक्षिण पूर्वी रेलवे से मिलाने के लिए लगभग २५ मील लम्बी एक और रेलवे लाइन भी बिछाई जायेगी और रेल द्वारा किरीबुरु से विशाखापत्तनम बन्दरगाह तक कच्चा लोहा ले जाने के लिए मालगाड़ के डब्बे और इंजन मुहैया किये जायेंगे। विशाखापत्तनमी बन्दरगाह की सुविधाओं का भी विस्तार किया जायेगा।

इस योजना पर कुल ६ करोड़ ७० लाख डालर खर्च बैठने का अनुमान है। इसमें से ३ करोड़ २५ लाख डालर का खर्च विदेशी मुदा के रूप में होगा और ३करोड़ ४५ लाख डालर के खर्च के लिए भारतीय मुद्रा की आवश्यकता होगी।

भूगर्भ भन्डारों का नक्शा

भारत के भू-सर्वेक्षण विभाग ने हाल में राउरकेला के इलाके में लौह-खनिज के भूगर्भ भण्डारों की पड़ताल करके उसका नक्शा तैयार किया था। जनवरी १६५८ में जापान की एक टेक्निकल सर्वेक्षण टोली भी इन भन्डारों का सर्वेक्षण कर चुकी है। इस हड़ताल से पता चला है

(शेष पृष्ठ ५६ के नीचे)

मनुष्य के दो मस्तिष्क हैं

वाशिंगटन के उपनगर मेरिलैन्ड के वेथेज्डा नामक स्थान पर स्थित यूनाइटेड स्टेट्स नेशनल इन्स्टिट्यूट ऑव् हैल्थ में मस्तिष्क के सम्बन्ध में गंभीरता पूर्वक विस्तृत अनुसन्धान किए जा रहे हैं। इसका कारण यह है कि औषधियों तथा शल्य चिकित्सा के क्षेत्रों में तो अनेक सफलतायें प्राप्त की जा चुकी हैं, किन्तु मानवी मस्तिष्क के क्रियाकलाप तथा उलझनों के सम्बन्ध में बहुत ही कम ज्ञान प्राप्त है। इस सम्बन्ध में अधिकांश अनुन्धान कार्य पशुओं के मस्तिष्क के सम्बन्ध में किये गए परीक्षणों तक सीमित हैं।

जब तक वैज्ञानिक लोग यह न जान लें कि मस्तिष्क के किन भागों का शारीरिक क्रियाओं से सम्बन्ध है, तब तक ये यह नही जान सकेंगे कि मानसिक विकारों के लिये किस स्थान की खोज की जाए। इसीलिए मस्तिष्क के सम्बन्ध में उक्त अनुसन्धान किए जा रहे है।

नेशनल इन्स्टिट्यूट ऑव् मैन्टल हेल्थ में मस्तिष्क के विषय में जो अनुसन्धान किए जा रहे हैं, उनमें इस सम्बन्ध में एक नई खोज की जा रही है। खोज का विषय है किस प्रकार मस्तिष्क शरीर को रोगी बना सकता है। मनुष्य के दो मस्तिष्कों के शासित होने की संभावना है। प्रथम एक ऐसा छोटा प्राचीन-मस्तिष्क, जो एक अंश में सांप से लेकर सभी पशुओं में समान रूप से विद्यमान है। दूसरा नया मस्तिष्क, जिस का सभी पशुओं में क्रमिक विकास होता है किन्तु जिसका मनुष्य में सबसे अधिक विकास हुआ है।

दो मस्तिष्कों के सिद्धान्त के अनुसार नया मस्तिष्क मनुष्य के समूचे मस्तिष्क का यह भाग है, जिसमें तर्क की शक्ति विद्यमान है। यह पुराने मस्तिष्क की तात्कालिक तथा जन्मजात प्रतिक्रियाओं के सम्बन्ध में चिन्तन करता है। यदि इस सिद्धांत की वैधता को सिद्ध किया जा सके, तो इस अनुसन्धान से मानसिक रोगों तथा उन शारीरिक रोगों के कारणों का पता लग सकता है, जो मानसिक क्रियाओं में गड़बड़ हो जाने से हो जाते हैं। आज चिकित्सक साधारणतः इस विषय में सहमत हैं कि मनुष्य का मस्तिष्क उसके शरीर में अस्थायी अथवा स्थायी परिवर्तन कर सकता है, किन्तु वे यह नहीं जानते कि किस प्रकार ये परिवर्तन होते हैं।

इस बात का पता लगाने के लिये, मानसिक स्वास्थ्य सम्बन्धी अमेरिकी राष्ट्रीय संस्थान में मस्तिष्क विशेषज्ञ पशुओं में मस्तिष्कों के विषय में गहरी खोजबीन कर रहे हैं। वे विशिष्ट मानसिक क्रियाओं को उत्तेजित करने तथा बन्द करने का प्रयत्न कर रहे हैं। उसका प्रथम उद्देश्य मस्तिष्क के उन क्षेत्रों का पता लगाना है, जिनका मूल मस्तिष्क (छोटे मस्तिष्क) की स्वाभाविक प्रतिक्रियाओं से सम्बन्ध है।

ऐसा विश्वास किया जाता है कि छोटा मूल मस्तिष्क मनुष्य की भावनाओं के जन्म का स्थान है। भूख, क्रोध, काम वासना तथा भय का इस से निकट सम्बन्ध है। इस छोटे मस्तिष्क के ऊपर तथा चारों ओर नया मस्तिष्क हैं। यह भूरे तथा श्वेत पदार्थ का बड़ा पिन्ड है, जिसके सम्बन्ध में अब यह विश्वास किया जाता है कि इसका बौद्धिक क्रियाओं से सम्बन्ध है।

मस्तिष्क सम्बंधी अनुसंधान कार्य के लिए नियुक्त दल के अध्यक्ष डा पौल डी० मैक्लीन का कथन है कि

(शेष पृष्ठ ५८ से आगे)

कि यहाँ ऊंची किस्म की कच्ची धातु प्रचुर मात्रा में हैं और भूतत्वों की स्थिति वैसी ही हैं जैसी कि इस क्षेत्र की अन्य चालू खानों में हैं। खान के लिए किरीबुरू का स्थान सबसे अधिक उपयुक्त समझा गया हैं।

एशिया के आर्थिक विकास के लिए अमेरिकी प्रेसिडेन्ट द्वारा कायम किये गये कोष से इस योजना को सहायता दिये जाने का कारण यह है कि इससे भारत अपनी रेल और बन्दरगाह सम्बन्धी सुविधाओं में सुधार और खनिज उद्योग का विस्तार कर सकेगा और जापान को उचित भाव पर दीर्घकाल तक लौह-खनिज प्राप्त हो सकेगा।

कार्य की दृष्टि से इन दोनों मस्तिष्कों में घोड़े और सवार का सम्बन्ध है। नया मस्तिष्क घुड़सवार है, जो घोड़े अर्थात् मूल मस्तिष्क का मार्ग-दर्शन करने तथा उस पर हावी हो जाने की क्षमता रखता है। उनके सिद्धान्त के अनुसार सामान्य घुड़सवारी के दृष्टान्तों के अनुसार घोड़ा भड़क अथवा डर भी सकता हैं या सवार को ले या पटक कर भाग भी सकता है। यदि मनुष्य को विवेक-शील व्यक्ति के समान कार्य करना है, तो उसे घुड़सवार के रूप में काम करने वाले विवेक एवं चिन्तनशील मस्तिष्क को सदैव उत्तम घुड़सवार के रूप में बनाए रखना आवश्यक है।

चिरकाल से चिकित्सक लोगों की यह धारणा है कि क्रोध का हृदय और रक्त चाप पर, शोक का श्वास लेने की क्रिया पर और असन्तोष का पेट पर बुरा प्रभाव पड़ सकता है।

दुर्भाग्यवश दो मस्तिष्कों के सिद्धान्त के अनुसार आधुनिक व्यक्ति के मस्तिष्क का मूल भाग किसी प्रकार की पहचान या निर्णय करने की शक्ति नहीं रखता। इससे वास्तविक कारण अथवा कारणों का ठीक ठीक पता नहीं चलता। यह कभी-कभी शरीर को सहायता पहुँचाने का प्रयत्न तो करता है, किन्तु उससे वास्तव में शरीर को हानि ही पहुंचती है।

जब तक नये मस्तिष्क को उच्च संकल्प-शक्ति द्वारा नियमन नहीं किया जाता, मूल मस्तिष्क हृदय की क्रिया को उत्तेजित करने के लिए उस समय तक शरीर से उत्तेजक रसों को चूसता रहता है, जब तक कि यह उत्ते-जना स्वास्थ्य के लिए हानिकारक नहीं हो जाती।

उदाहरणार्थ मूल मस्तिष्क शरीर की रक्षात्मक क्रियाओं को निर्देश कर सकता है कि वे हृदय की गति को तेज रखें। इसके विपरीत नया मस्तिष्क यह तर्क रखता है कि क्रोध उत्पन्न करने वाली उत्तेजना वास्तव में कोई बड़ा अपमान नहीं है और वह हृदय को मन्द गति से चलने का आदेश देता है।

नेशनल इन्स्टिट्यूट औव् हैल्थ के अनुसन्धानकर्ता मानसिक प्रक्रिया की अज्ञात गहराइयों के सम्बंध में खोजबीन कर रहे हैं। जब तक अनुसन्धान से प्रक्रिया का पता लगना आरम्भ नहीं होता है, यह जानने के लिए परीक्षण चलते रहेंगे कि मस्तिष्क के विशिष्ट भाग क्या-क्या क्रियायें करते हैं।

यह प्रकट होना प्रारम्भ हो गया है कि मूल मस्तिष्क की रासायनिक क्रिया नये मस्तिष्क की रासायनिक क्रिया से भिन्न है। प्रारम्भिक अनुसन्धान से यह स्पष्ट हो गया है कि मस्तिष्क को शान्ति प्रदान करने वाली नई औष-धियां प्रभावकारी सिद्ध हो सकती हैं, क्योंकि वे केवल मूल मस्तिष्क पर ही प्रभाव डालती हैं।

यद्यपि ये समस्यायें अत्यन्त जटिल हैं, तथापि यह ऐसा अनुसन्धान है जिससे शरीर के एक ऐसे अंग के सम्बंध में मनुष्य के ज्ञान में अत्यधिक वृद्धि की आशा की जा सकती है जिसकी क्रिया के सम्बंध में अभी तक मनुष्य को ठीक ठीक पता नहीं चल सका है।

परीक्षण सम्बन्धी कुछ पशुओं के मूल मस्तिष्क के विशिष्ट भागों को नष्ट कर देने से आत्म-रक्षा सम्बंधी उनकी मानसिक क्रियाओं में अन्तर पड़ गया है। जंगली पशुओं को ऐसी क्रियाओं द्वारा पालतू बना लिया गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि उनका स्वाभाविक भय और कष्ट के ज्ञान की भावना मिट गई। परीक्षण सम्बन्धी एक पशु मस्तिष्क के आपरेशन के बाद, बार बार गर्म वस्तु को छूता हुआ दृष्टिगोचर हुआ। यद्यपि ऐसा कोई भी कार्य निश्चय ही कष्टदायक था, फिर भी वह उसे बार-बार करता था। उसे यह याद नहीं रहता था कि यह कार्य कष्टदायक है।

परीक्षण सम्बन्धी अन्य ऐसे पशुओं ने जिनके मूल मस्तिष्क को नष्ट कर दिया गया था, आहार मिलने पर भी उसे नहीं खाया। फल खाने वाले कुछ पक्षी कच्चे मांस अथवा मछलियां खाने लगे। यहां तक कि धातु के पेंच तथा ढिबरी आदि को खाने की भी उन्होंने चेष्टा की। मस्तिष्क की चीर-फाड़ ने निश्चय ही उन्हें अपने शरीर के लिये आवश्यक आहार सम्बन्धी आवश्य-कताओं की पूर्ति करने की स्वाभाविक योग्यता से वंचित कर दिया था।
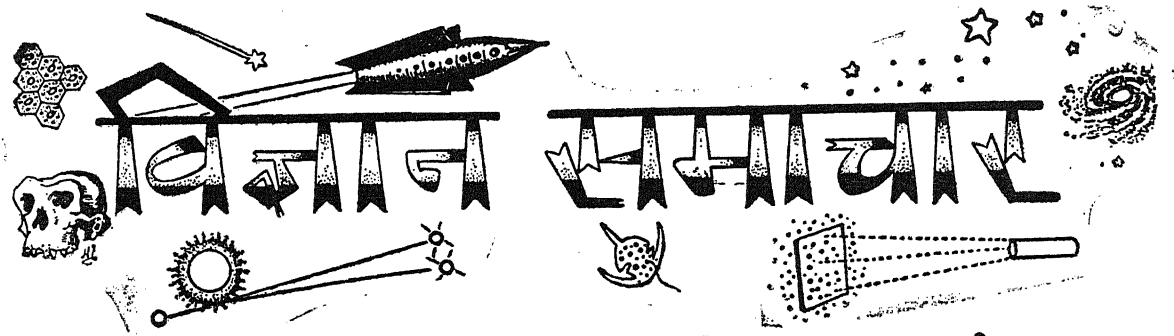
भारतीय कृषि अनुसन्धान परिषद् का कार्य

भारतीय कृषि अनुसन्धान परिषद् की वार्षिक रिपोर्ट इस वर्ष के आरम्भ में प्रकाशित हुई है। इस में भारत में अनाज की उपज बढ़ाने और उसकी किस्म सुधारने के महत्वपूर्ण अनुसन्धानों का ब्यौरा दिया गया है।

परिषद् ने इस विषय में पौधों के रोगों के अध्ययन से लेकर ढोरों की नस्ल सुधार तक नाना प्रकार के प्रयोग किए हैं।

अनाज की उपज को बढ़ाने में धान, गेहूँ और अन्य फसलों में हरी खाद के प्रयोग सम्बन्धी अनुसन्धानों से बहुत लाभ हुआ है। इनसे पता चला है कि हरी खाद के प्रयोग से धान की उपज ३१.७७ मन प्रति एकड़ तक हो जाती हैं, जब कि साधारण खादों से २७. २१ मन प्रति एकड़ ही उपज हुई है।

१९५७-५८ में परिषद् ने जमीन को अधिक उपजाऊ बनाने के प्रयोग भी किए। जैसे, परती जमीन को खेती योग्य बनाने के लिए मिट्टी का परीक्षण, मैला, कूड़ा करकट आदि के सड़ने से उनमें जीवाणुओं की उत्पत्ति और उनका मिट्टी के भौतिक तथा रासायनिक गुणों पर प्रभाव और मिट्टी के विश्लेषण के तरीकों में एक रूपता लाने का प्रयत्न आदि।

आसाम, जम्मू-कश्मीर, पश्चिमी बंगाल और देहरादून की वन अनुसन्धानशाला में जड़ी-बूटियों की खेती और उनके उपयोग के बारे में जो अनुसन्धान हो रहा है, उनको परिषद् ही चलवा रही है।

नागपुर में तूफान सूचक रडार

अभी हाल ही में नागपुर के सोने गांव हवाई-अड्डे पर एक रडार लगाया गया है। इससे तूफान की दिशा और गति की सही सूचना मिल सकेगी। नागपुर का हवाई-अड्डा देश के मध्य में स्थित है। रात की हवाई डाक का भी यह मुख्य केन्द्र है। इस रडार की सहायता से हवाई जहाजों को मौसम की गड़बड़ की पहले से ही सूचना दी जा सकेगी।

ऐसा ही रडार बम्बई के सांताक्रुज हवाई-अड्डे पर लगा हुआ हैं और मद्रास, गुआहाटी तथा गया में भी लगाया जाएगा। कलकत्ता के दमदम और नयी दिल्ली के सफदरगंज हवाई-अड्डों पर पहले से ही बड़े शक्तिशाली रडार लगे हुए हैं। भारत के मुख्य हवाई-अड्डों पर इन रडार यंत्रों के लगने से हवाई यात्रा और निरापद तथा आराम देह हो सकेगी।

डिब्बा बन्द खाद्यों का परीक्षण

मैसूर की केन्द्रीय खाद्य विज्ञानशाला ने एक वैकुअम टेस्टर बनाया है। यह टेस्टर डिब्बे में बन्द खाद्यों के परीक्षण में बहुत काम का होगा।

यह नया टेस्टर पहले के टेस्टरों से बहुत अच्छा है। इसे आसानी से ले जाया जा सकता है। इससे परीक्षण करने में कुछ सेकेण्ड ही लगते हैं और डिब्बे पर कोई निशान आदि भी नहीं पड़ता। इसके प्रयोग में केवल हवा निकालने के एक पम्प की ही और आवश्यकता होती है।

राष्ट्रीय विकास निगम इस टेस्टर को बड़े पैमाने पर बनवाने का प्रबन्ध कर रहा है।

कच्चे मैंगनीज का उपयोग

कुछ समय से जमशेदपुर की राष्ट्रीय धातु कर्मशाला में घटिया किस्म के कच्चे मैंगनीज के बेहतर उपयोग के तरीकों का अध्ययन हो रहा है। इस अध्ययन के परिणाम, १८४ पृष्ठ की एक पुस्तिका में प्रकाशित किए गए हैं।

राष्ट्रीय धातु कर्मशाला और भारतीय खान कार्यालय की खोजों का विस्तृत वर्णन किया गया है और घटिया मैंगनीज के उपयोग के सभी ज्ञात तरीकों को भी अच्छी तरह समझाया गया है।

इस लेख में बताए हुए तरीकों से घटिया किस्म का मैंगनीज भी काम में लाया जा सकेगा। देश में बढ़िया किस्म का मैंगनीज अधिक नहीं है। अतः इस पुस्तिका के प्रकाशन से बड़ा लाभ होगा।

कच्चे मैंगनीज के निर्यात से देश को काफी विदेशी-मुद्रा मिलती है। प्रति वर्ष ३० करोड़ रुपया की कीमत का १६ लाख टन कच्चा मैंगनीज बाहर भेजा जाता है। यदि इसी गति से मैंगनीज निकाला जाता रहा तो, केवल ३० वर्ष में ही अच्छी किस्म के मैंगनीज का भंडार समाप्त हो जायेगा।

गाय और संगीत

अमेरिका के कुछ गोपालकों का विश्वास है कि संगीत सुन कर गायें प्रसन्न होती हैं और अधिक दूध देती हैं। इसी लिए बहुत से ग्वाले गाय दुहते समय बाजा बजवाते हैं। अमरीका के एक पशुपालन प्रोफेसर डाक्टर वेडल स्मिथ ने इस विषय में प्रयोग किये हैं और उनका कहना है कि संगीत से प्रसन्न होने के बजाय गाय चौंक जाती है और दूध कम देती है, क्योंकि चौंकने से उसके थनों की माँस पेशियों में खून कम जाता है इसका नतीजा यह होता है कि दूध कम उतरता है।

बिनु बादर बिजुरी कहां चमकी ?

आसमान बिलकुल साफ था। ऋतु विज्ञान वालों ने भविष्यवाणी की थी, मौसम में कोई गड़बड़ी नहीं। आसमान साफ रहेगा। और इनकी भविष्यवाणी के भरोसे घूमने निकल पड़े। लेकिन यह क्या ? आसमान साफ है, सूरज चमक रहा है, लेकिन पानी गिरने लगा। अरे यह तो मूसलाधार वर्षा हो रही है, और आसमान में बादल का बस जरा सा थिगड़ा है।

लेकिन इस मूसलाधार बारिश में यह पतली रस्सी जैसी क्या दिख रही है ? हमारे आगे आगे एक बड़ी लारी जा रही है, और यह रस्सी उससे जुड़ी जान पड़ती है। यह क्या हम सपना देख रहे हैं ? कहीं सुना था कि पुरखों के पास एक बांस था जिससे आकाश को खोद कर पानी बरसा लेते थे लेकिन यह तो लतीफे की बात है।

यहां विज्ञान अपना चमत्कार दिखा रहा है। सोवियत संघ की विज्ञान अकादमी के कुछ वैज्ञानिक जिनके नेता प्रो० बी० वरियागिन हैं, पानी बरसाने वाली मशीन बनाने में लगे हैं। प्रयोगशाला में अनेक परीक्षण हो चुके हैं और सफल रहे हैं। ऐसी आशा करनी चाहिए कि थोड़े ही अर्से के बाद इस तरह पानी बरसा लेना सोवियत संघ में मामूली बात हो जाएगी।

तो यह जो वर्षा हुई थी, उसी मशीन की करामात है। आकाश में एक गुब्बारा है जिसमें एक अजीब "यात्री" है। यह यात्री है तेजस्क्रिय आईसोटोपों से भरा डिब्बा। ये आइसोटोप हवा को और उसकी नमी को दूषित नहीं करते, बल्कि तेजस्क्रियता के प्रभाव से हवा की यह अदृश्य नमी गुरुत्वाकर्षण के प्रभाव से बूंदें बन कर बरसने लगती है और उनकी जगह धरती के वायुमण्डल और अक्षय साधनस्रोत महासागर की भाफ लेती हैं और वह भी बरसने लगती है। इस प्रकार मूसलाधार वर्षा होने लगती है।

चन्द्रलोक में कृत्रिम "वायुमण्डल" का निर्माण

चन्द्रलोक में कृत्रिम "वायुमण्डल" तैयार करना अत्यन्त जरूरी है जिससे कि भविष्य में व्योम-यान वहाँ उतर सकें।

चन्द्रलोक में उतरने की कठिनाइयों का विश्लेषण करते हुए प्रो० ग्योर्गी पौक्रोव्स्की 'यंग टेक्नीक' नामक पत्रिका में लिखते हैं कि ये कठिनाइयाँ वायुमण्डल के अभाव के कारण हैं क्योंकि व्योम-यान को धीरे-धीरे नीचे उतरने में वायुमण्डल ब्रेक का काम करता है।

प्रो० पोक्रोव्स्की यह सुझाव देते है कि चन्द्रमा की सतह पर पहुँचते समय व्योम-यान एक छोटा क्षेपणयंत्र छोड़ सकता है जो उल्कागति से व्योम-यान से पहले ही चन्द्रमा की सतह पर पहुंच सकता है। ऐसा बताते हैं कि चन्द्रमा की सतह धूल के मोटे चादर से ढकी है और ज्यों ही क्षेपणयंत्र चन्द्रमा में जाकर गिरेगा त्यों ही बड़े परिमाण में धूल ऊपर को उठेगी। चूँकि उस समय बड़े परिमाण में ताप पैदा होगा इसलिए कुछ धूल तो भाफ का रूप धारण कर घनीभूत गैस बन जाएगी।

हिमालय की बर्फ में भी कीड़े-मकोड़ों की असंख्य जातियाँ

आप समझते होंगे कि भीड़-भाड़, बड़े बड़े शहरों में ही होती है। ऐसी बात नहीं है। हिमालय के निर्जन, बर्फीले क्षेत्रों में कीड़े-मकोड़ों की असंख्य जातियां बसती हैं और कीड़े-मकोड़ों की बड़ी-बड़ी बस्तियां होती हैं। पत्थरों की दरारों और गढ़ों आदि में या पत्थरों और शिलाओं के नीचे ये तेज हवाओं और सर्दी से बचकर बढ़ते रहते हैं।

आश्चर्य की बात यह है कि एक ही गढ़े में या शिला के नीचे कई जाति के कीड़े, जैसे बिच्छू, मकड़ी आदि एक साथ रहते हैं और यहाँ की जलवायु के कारण इनका स्वभाव आदि इनके मैदानी सजातीयों से कुछ भिन्न हो जाता है।

यह जानकारी प्राणिशास्त्रियों के तीन दलों ने हाल में ही हिमालय में जाकर प्राप्त की है। उन्होंने १५,००० से भी अधिक कीड़े-मकोड़े इकट्ठे किये हैं। प्रो० एम० ए० मणि, जब आगरा विश्वविद्यालय में थे, तब इन दलों को हिमालय ले गये थे। आजकल आप भारत के प्राणि सर्वेक्षण विभाग के उपनिदेशक हैं। इस खोज से हिमालय के जीव-जन्तुओं आदि के बारे में और अधिक जानकारी मिली है और जीव-शास्त्र सम्बन्धी कई नई बातें ज्ञात हुई हैं। हिमालय के ये कीड़े-मकोड़े अधिकतर काले होते हैं। यह भी कम आश्चर्य की बात नहीं कि सदा बर्फ में रहने वाले कीड़े-मकोड़े, सफेद की बजाय काले क्यों होते हैं। इनके अलावा यहां बहुत से पंखहीन कीड़े भी होते हैं। ऐसा लगता है कि इन कीड़ों ने घातक प्राकृतिक परिस्थिति को भी, अपने अनुकूल बना लिया है। अधिकांश कीड़े मांसाहारी हैं, किन्तु कुछ शाकाहारी भी पाये गये हैं।

जब ये कीड़े भूखे होते हैं, तो इनके दल के दल बाहर बर्फ पर जाकर उन तितलियों, पतंगों, टिड्डों और पिस्सुओं आदि को खाते हैं, जो हवा में उड़कर बर्फ पर जा पड़ते हैं और वहीं जम जाते हैं। इस प्रकार प्रकृति की कृपा से इन्हें मैदानी कीड़ों का जमा हुआ मांस हिमालय पर ४ से ६ हजार फुट की ऊंचाई पर खाने को मिल जाता है।

शाकाहारियों के लिए कोई और दूसरी छोटी-मोटी वनस्पति मिल जाती है।

जहां ये कीड़े मकोड़े रहते हैं, वहां बहुत ठन्ड पड़ती है और भयानक गति से खुश्क हवाएँ चलती हैं। गर्मियों में यहां की हवा इतनी खुश्क हो जाती है कि ५ से ६ हजार फुट तक की ऊंचाई की वर्फ पिघलती नहीं, सीधी भाप बनकर उड़ जाती है।

इस प्रकार ये कीड़े मकोड़े हिमालय की असह्य जलवायु में गढ़ा और दरारों में और शिलाओं के नीचे सुरक्षित रहकर खूब बढ़ते जा रहे हैं।

—:०:—

सम्पादकीय

हानिकारक विज्ञान साहित्य

स्वाधीनता के पश्चात् मात्र भाषा हिन्दी को उचित स्थान देने के लिये जो प्रयास किये गये हैं वह सराहनीय हैं। पर स्वाधीनता के पिछले ११ वर्षों में भी उचित ढङ्ग का वैज्ञानिक साहित्य हमारे सामने नहीं आ सका। इस बात का मुख्य कारण हैं हमारे देश के प्रकाशक। उन्होंने देश की सेवा करनी चाही परन्तु केवल रुपया कमाने के लिये देश के लिये नहीं। इसलिये उन्होंने छोटे छोटे वेतन पर साधारण व्यक्ति नियुक्त कर लिये और उनसे अंग्रेजी पुस्तकों का उल्टा-सीधा अनुवाद करा लिया। हमारे एक प्रकाशक ने केवल एक ही लेखक से जन्तु-विज्ञान, वनस्पति शास्त्र रसायन शास्त्र, ज्योतिष, इत्यादि पर पस्तकें लिखवाईं हैं। एक व्यक्ति जो किसी एक भी विषय का विशेषज्ञ नहीं है अनेक विषयों में उत्कृष्ट साहित्य क्यों कर प्रस्तुत कर सकता है समझ में न आने वाली बात है। पर उन पुस्तकों को पुरस्कृत किया जा रहा है ताकि अन्य प्रकाशक भी ऐसी ही पुस्तकें प्रस्तुत करावें।

फल यह होता है कि यदि कोई विशेषज्ञ प्रकाशक के पास पहुँचता है तो प्रकाशक महोदय उसे एक पुस्तक का दो सौ रुपया देना चाहते हैं उसमें भी चाहते हैं कि चित्र लेखक ही दें। प्रकाशकों का इसमें कोई दोष नहीं। वह व्यवसायी हैं लाभ उनका ध्येय है परन्तु दोष उनका है जो ऐसे साहित्य को स्वीकार करते हैं और सम्मानित करते हैं।

प्रकाशकों के अलावा हमारे देश में प्रगति शीलता का एक और शत्रु है। वह है किसी व्यक्ति विशेष की सामर्थ्य। यदि कोई व्यक्ति किसी मंत्री का संबन्धी है या वह किसी मंत्री के नाम का दिन में कई बार उपयोग अपने घनिष्ट संबन्ध को दिखलाने में कर सकता है तो फिर वह बिना लिखे बड़ा लेखक बन सकता और बिना कार्य किये बड़ा वैज्ञानिक। कहने का तात्पर्य यह है कि हमारे यहाँ प्रतिभा का कोई मूल्य नहीं।

उदाहरण के लिए हम एक पुस्तक "विकास वाद" प्रस्तुत करते हैं। स्वर्गीय डाक्टर बीरबल साहनी की पुण्य स्मृति में लिखित इस पुस्तक को हिन्दुस्तानी एकेडेमी ने प्रकाशित किया है। इस पुस्तक के पृष्ठ ३७ पर 'सेक्स का विकास" के विषय में लिखा है "सेक्स के विकास की चरम सीमा कीड़ों में पाई जाती है जिनमें तीन सेक्स होते हैं। (१) पुरुष (२) स्त्री (३) मजदूर। लैङ्गिक विकास के विचार से कीड़े मानव से भी अधिक विकसित हैं..."। आज दस वर्ष बाद एक सम्मानित संस्था द्वारा प्रकाशित उत्तर प्रदेशीय सरकार द्वारा पुरस्कृत इस पुस्तक को जब हमारे बच्चे पढ़ेंगे तो वे निश्चय ही तीसरे सेक्स की खोज में चिन्तित होंगे। इस पुस्तक की प्रस्तावना लेखक आचार्य नरेन्द्र देव हैं। भला ऐसी पुस्तक को त्रुटि पूर्ण कौन मान सकता।

इस पुस्तक में ऐसी ही अनेक दुःख देने वाली त्रुटियां हैं। परन्तु इसका कोई इलाज नहीं मालूम होता। यदि राष्ट्र के भविष्य को अज्ञान के घोर अन्धकार में गिरने से बचाना है तो विज्ञान के ऐसे ऐसे साहित्य को नष्ट कराना तथा अच्छे नये साहित्य की वृद्धि का प्रयास करना हमारा ध्येय होना चाहिये। केवल निस्वार्थ कार्य करने मात्र में ही हमें इस दिशा में सफलता मिल सकती है।

लेखकों से निवेदन

१—रचना कागज के एक ही ओर स्वच्छ अक्षरों में पर्याप्त पार्श्व एवम् पंक्तियों के बीच में अन्तर देकर लिखी होनी चाहिये। यदि टाइप की हुई हो तो और भी अच्छा है।

२—चित्रों से सज्जित गवेषणापूर्ण लेखों को "विज्ञान" में प्राथमिकता दी जावेगी।

३—प्रेषित रचना की प्रतिलिपि अपने पास रक्खें। आवश्यक डाक टिकट प्राप्त होने पर ही अस्वीकृत रचना लौटाई जावेगी।

४—स्वीकृति की सूचना यथा सम्भव शीघ्र ही दी जवेगी। किसी भी लेख में संशोधन, संवर्धन अथवा परिवर्तन करने का अधिकार सम्पादक को होगा।

५—"विज्ञान" में प्रकाशित लेखों पर "विज्ञान" का पूर्ण अधिकार होगा।

नीचे लिखे पते पर पत्र व्यवहार करें—

प्रकाशन विभाग

विज्ञान-परिषद्, विज्ञान-परिषद्-भवन

म्योर कालेज, थार्नहिल रोड,

इलाहाबाद—२

विज्ञान
मई १९५९

रजिस्टर्ड नं० ए० ३७२

उत्तर प्रदेश, बम्बई, मध्यप्रदेश, राजस्थान, बिहार, उड़ीसा, पंजाब तथा आंध्र प्रदेश के शिक्षा विभागों द्वारा स्कूलों, कालिजों और पुस्तकालयों के लिये स्वीकृत

विषय-सूची

प्रधान सम्पादक—डा० देवेन्द्र शर्मा

प्रकाशक—डा० डी० एन वर्मा, प्रधान मंत्री, विज्ञान परिषद, इलाहाबाद।
तीर्थराज प्रेस, ९३ चक इलाहाबाद—३ में मुद्रित।

भाग ८९ संख्या ३

जून १९५९ मिथुन २०१६ विक्र०, ज्येष्ठ १८८१ शा०

वार्षिक मूल्य ४ रुपए] [इस अङ्क का मूल्य ४० नए पैसे

विज्ञान परिषद् के मुख्य नियम

१—१९७० वि० या १९१३ ई० में विज्ञान परिषद की इस उद्देश्य से स्थापना हुई कि भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक साहित्य का प्रचार हो तथा विज्ञान के अध्ययन को और साधारणतः वैज्ञानिक खोज के काम को प्रोत्साहन दिया जाय।

२—परिषद् में सभ्य होंगे। निर्दिष्ट नियमों के अनुसार साधारण सभ्यों में से ही एक सभापति, दो उप-सभापति, एक कोषाध्यक्ष, एक प्रधान मन्त्री, दो मन्त्री, एक सम्पादक और एक अन्तरंग सभा निर्वाचित करेंगे जिनके द्वारा परिषद् की कार्यवाही होगी।

३—प्रत्येक सभ्य को ६) वार्षिक चन्दा देना होगा। प्रवेश शुल्क ३) होगा जो सभ्य बनते समय केवल एक बार देना होगा।

४—एक साथ १०० रु० की रकम देने से कोई भी सभ्य सदा के लिये वार्षिक चन्दे से मुक्त हो सकता है।

५—सभ्यों को परिषद् के सब अधिवेशनों में उपस्थित रहने का, अपना मत देने का, उनके चुनाव के पश्चात् प्रकाशित परिषद् की सब पुस्तकों, पत्र, तथा विवरण इत्यादि को बिना मूल्य पाने का—यदि परिषद् के साधारण धन के अतिरिक्त किसी विशेष धन से उनका प्रकाशन न हुआ हो—अधिकार होगा। पूर्व प्रकाशित पुस्तकें उनको तीन चौथाई मूल्य में मिलेंगी।

६—परिषद् के सम्पूर्ण स्वत्व के अधिकारी सभ्य-वृन्द समझे जायेंगे।

विज्ञान परिषद् द्वारा

हरि शरणानन्द वैज्ञानिक पुरस्कार

सूचना

बड़े हर्ष के साथ विज्ञान परिषद्, प्रयाग सूचित कर रही है कि इस संस्था की ओर से प्रतिवर्ष सर्वोत्कृष्ठ मौलिकता लिये किसी विषय के वैज्ञानिक हिन्दी ग्रन्थ पर दो हजार रुपये का नगद "हरि शरणानन्द वैज्ञानिक पुरस्कार" दिया जायगा। यह प्रथम पुरस्कार उन वैज्ञानिक ग्रन्थों में से किसी एक को दिया जायगा जो जनवरी १९५४ के बाद प्रकाशित ग्रन्थों में से सर्वश्रेष्ठ होगा।

उक्त विज्ञप्ति के द्वारा विज्ञान परिषद्, प्रयाग पुरस्कार के लिये प्रत्येक वैज्ञानिक विषय की पुस्तकें आमन्त्रित करता है।

१--प्रत्येक पुस्तकों की ८ प्रतियां १५ जुलाई, १९५९ तक विज्ञान परिषद्, प्रयाग के कार्यालय में आ जानी चाहिये।

२--पुस्तकें शुद्ध हिन्दी भाषा में प्रकाशित हुई हों।

३--अनुवाद के ग्रन्थों पर विचार नहीं किया जायगा।

४--इन प्रकाशित पुस्तकों में विज्ञान परिषद्, प्रयाग, नागरी प्रचारणी सभा, वाराणसी, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग अथवा भारत सरकार के शिक्षा मन्त्रालय द्वारा स्वीकृत में से कोई भी वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्दावली व्यवहृत हुई हो मान्य होगी।

ग्रन्थ लेखकों को पुरस्कार सम्बन्धी विषयावली परिषद् से मंगाकर देखना चाहिये।

मंत्री,
विज्ञान परिषद्,
प्रयाग।

हमारी प्रकाशित पुस्तकें

विज्ञान

विज्ञान परिषद् प्रयाग का मुख-पत्र

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्ति। तै० उ०।३।५।

भाग ८९ | मिथुन २०१६ विक्र०; ज्येष्ठ १८८१ शाकाब्द; जून १९५९ | संख्या ३

संसार की सबसे अधिक ऊँचाई पर स्थित वैज्ञानिक परीक्षणशाला

चाकलेटिया वैज्ञानिक परीक्षणशाला संसार की सबसे अधिक ऊँचाई पर स्थित वैज्ञानिक परीक्षणशाला है। यह बोलेविया (लेटिन अमेरिका) के ला पाज नामक नगर से कुछ दूरी पर १७,१०० फुट की ऊँचाई पर स्थित है। इस वैज्ञानिक परीक्षणशाला की गणना ऊँचाई पर स्थित संसार की सर्वोत्तम परीक्षणशालाओं में की जाती है। यह परीक्षणशाला एक पर्वत पर २५०० वर्ग फुट क्षेत्र में स्थित है। परीक्षणशाला के साथ ही १२ वैज्ञानिकों के रहने की उत्तम व्यवस्था भी की गई है। परीक्षणशाला तथा वैज्ञानिकों के निवास स्थान को बिजली से गर्म करने की भी व्यवस्था है और परीक्षणशाला में काम करने वालों के लिए हर प्रकार का आराम देने का प्रयत्न किया गया हैं। १० हजार फुट से अधिक ऊँचाई पर स्थित होने के कारण यहां पर आक्सीजन की कुछ कमी है। इसलिए यहां आने पर प्रारम्भ में कुछ असुविधा अवश्य होती है, परंतु धीरे-धीरे व्यक्ति वातावरण का पूरी तरह अभ्यस्त हो जाता है। आक्सीजन की कमी के समय मनुष्य यहां पर देर तक काम नहीं कर सकता और जल्दी थक जाता है। फिर भी सप्ताह में चार दिन वहां रह कर काम करने में वैज्ञानिकों को कोई कठिनाई नहीं पड़ती। चार दिन के बाद वैज्ञानिक परीक्षणशाला से उतर कर ला पाज नगर चले आते हैं और पुनः तरो-ताजा हो जाते है।

१९४१ में स्किग (बर्फ पर फिसलने के) खेल को प्रोत्साहन देने के लिए प्रयत्नशील एक क्लब का ध्यान इस स्थान की ओर गया था। इस क्लब में एक वैज्ञानिक भी थे, जिनका नाम इजमेल इस्कोवर था। क्लब के प्रयत्नों से वहां की सरकार ने इस पर्वतीय क्षेत्र को एक राष्ट्रीय पार्क घोषित कर दिया और पर्वत पर चढ़ने के लिए सड़क बनाने के हेतु कुछ धनराशि भी मन्जूर कर दी। यह सड़क १९४१ में बन कर तैयार हो गई। १९४२ में क्लब ने उक्त स्थान पर एक सराय का निर्माण कर दिया ताकि स्किंग के शौकीन लोग वहां विश्राम कर सकें। श्री इस्कोवर ने इस अवसर का लाभ उठा कर १९४३ से वहां से अन्तरिक्ष मन्डल का निरीक्षण करना शुरू कर दिया, लेकिन स्थान के अभाव में वह अपना काम और आगे नहीं बढ़ा सके।

मेसाचूसेटस स्कूल औव टेक्नौलोजी से ब्रह्मांड किरण विज्ञान के सम्बन्ध में उच्च प्रशिक्षण प्राप्त करने की इस्को-

वर १९५२ में पुनः ला पाज लौट आये। वापस लौट कर बोलेविया सरकार के सहयोग से उन्होंने सराय से कुछ दूर पर स्थित एक खाली गैरज नुमा भवन में अपने वैज्ञानिक यन्त्र लगा दिए। इसके उपरान्त उन्होंने एक छोटा सा विद्युत शक्ति उत्पादक यन्त्र भी प्राप्त कर लिया। इस प्रकार उनका काम छोटे पैमाने पर चल निकला। ला पाज विश्वविद्यालय ने भी परीक्षणशाला के लिए स्थायी भवन का निर्माण और एक ट्रक खरीदने के लिए उन्हें कुछ धनराशि प्रदान की। शीघ्र ही ला पाज विश्वविद्यालय और ब्राजिल के मध्य इस परीक्षणशाला का और अधिक विस्तार करने के बारे में एक दस वर्षीय समझौता हो गया। इसके बाद से इस वैज्ञानिक परीक्षणशाला के विकास में ब्राजिल ने धन-जन से बहुत सहायता की है।

श्री इस्कोवर के समक्ष एक सबसे बड़ी समस्या थी कि परीक्षणशाला के लिए बिजली किस प्रकार प्राप्त की जाए। ला पाज से परीक्षणशाला तक बिजली लाने पर बहुत अधिक खर्च बैठता था। लेकिन श्री इस्कोवर ने हिम्मत नहीं हारी। उन्होंने दूरदर्शिता से काम लिया। खोज करने पर उन्हें निकट ही एक ऐसी खान का पता चल गया जहां तक बिजली के तार आये थे। यह खान कुछ समय चल कर बन्द हो गई थी और तार बिलकुल बेकार पड़े थे। श्री इस्कोवर की समस्या तुरन्त हल हो गई। सरकार से इजाजत लेकर उन्होंने वहां से बिजली प्राप्त कर ली। वस्तुतः यह उनकी एक महान सफलता थी।

इस परीक्षणशाला में अधिकांश परीक्षण अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग द्वारा किये जाते हैं। संसार के कई देशों ने इस परीक्षणशाला के लिए आवश्यक वैज्ञानिक उपकरण प्रदान किए हैं। श्री इस्कोवर परीक्षणशाला का और भी अधिक विस्तार करने की योजना बना रहे हैं।

यह परीक्षणशाला इस बात का जीता-जागता उदाहरण है कि दृढ़ लगन और साहस के साथ कार्य कर मनुष्य असम्भव को सम्भव कर दिखाता है। जनता का सहयोग, सरकार की सहायता तथा राष्ट्रीय उत्साह द्वारा कठिन समस्यायें किस प्रकार सुलझाई जा सकती हैं, यह सबक हम इस साहसपूर्ण और सफल प्रयत्न से ले सकते हैं।

क्या आप जानते हैं?

भारत में सीमेंट का उत्पादन

१. पिछले ६-७ वर्षों से भारत में सीमेंट के उत्पादन में काफी वृद्धि हुई है। १९५३ में देश में २४ कारखानें थे, जिनकी उत्पादन क्षमता ४३ लाख टन थी। १९५७ में २९ कारखाने हो गए, जिनकी उत्पादन क्षमता ६६ लाख टन थी और वास्तविक उत्पादन ५६ लाख टन हुआ। १९५८ में सीमेंट का उत्पादन ४ लाख ६० हजार टन और बढ़कर ६० लाख ६० हजार टन हो गया।

२. १९५८ में दो नए कारखाने खुले और २ कारखानों की क्षमता बढ़ा दी गयी।

३. अब सीमेंट आसानी से मिलती है। यद्यपि सीमेंट के दाम और वितरण पर कन्ट्रोल जारी है, फिर भी केन्द्रीय सरकार के सुझाव पर राज्य सरकारों ने सर्व साधारण के लिए परमिट की प्रथा उठा दी है।

४. सीमेंट बनाने की जितनी मशीनों के आयात की अनुमति दी गयी है, उनसे २३ लाख टन सीमेंट का और उत्पादन होगा। अर्थात् दूसरी योजना के अन्त तक देश में २ करोड़ टन सीमेंट बनने लगेगी।

५. अमेरिका के विकास ऋण कोष और शिल्प सहयोग मण्डल से सीमेंट उद्योग के विकास के लिये काफी सहायता मिली है। इससे मशीनों आदि खरीदने के लिए विदेशी मुद्रा उपलब्ध हुई है।

६. आशा है १९६२ तक, सीमेंट बनाने की मशीनों का काफी हिस्सा भारत में ही बनने लगेगा।

७. निर्यात के लिए २ लाख टन सीमेंट रखी गयी है। इसमें से १,४८,००० टन का तो सौदा हो चुका है और ७६,००० टन सीमेंट का निर्यात भी हो चुका है।

रासायनिक खाद के और कारखाने

देश में रासायनिक खादों का उत्पादन जिस तेजी से बढ़ाया जा रहा है, उसके बल पर कहा जा सकता है कि १९६१ के अन्त अथवा १९६२ के आरम्भ में नत्रजनी खाद का उत्पादन ३ लाख ८० हजार टन तक पहुँच जाएगा। उसका मतलब हुआ कि अमूनियम सलफेट का उत्पादन लगभग २० लाख टन होगा, जो देश के वर्तमान उत्पादन का ५ गुना और सिन्द्री के उत्पादन का ६ गुना है।

सिन्द्री का कारखाना देश की औद्योगिक उन्नति का प्रतीक हो गया है, इसमें बने उर्वरकों से देश में ३५ लाख टन और अन्न उत्पन्न किया गया है, यदि इसे हम विदेशों से मंगाते तो हमें १०० करोड़ रुपया खर्चना पड़ता।

अब सब किसान समझ गये हैं कि उर्वरकों के उपयोग से अनाज और व्यापारी फसल दोनों की पैदावार बढ़ती है। मसलन एक एकड़ धान में १५० से २०० पौंड अमूनियम सल्फेट डाला जाए तो धान की उपज ४५० से ६०० पौंड तक हो सकती है।

अनाज की ही तरह चाय और कहवा के उत्पादकों में भी रासायनिक उर्वरकों की बड़ी मांग है। अपनी आवश्यकता पर खाद देश में नहीं होती अतः हमें आयात करना पड़ता है। १९५७-५८ में १६ करोड़ रुपये के उर्वरक विदेशों से मंगाने पड़े।

अस्तु अब अधिक रासायनिक खाद बनाने के लिए सिन्द्री कारखाने का विस्तार किया जा रहा है। इनके अलावा उत्तर में नांगल, दक्षिण में नेवेली और पूर्व में राउरकेला में रासायनिक खाद के नये कारखाने बनाये जा रहे हैं। इसके साथ ही वाराणसी में एक निजी कारखाना बन रहा है, अलवई कारखाना भी बढ़ाया जा रहा है, और इस्पात के नये कारखानों में भी उप-वस्तुओं के रूप में नत्रजन उर्वरक तैयार किया जाएगा।

सिन्द्री का विस्तार पूरा हो गया। और १९५९ के आरम्भ से ही और खाद बनना शुरू हो जाएगा और उत्पादन पहले से ६० प्रतिशत अधिक हो जाएगा, अर्थात् हर साल ५ लाख ५० हजार टन अमूनियम सलफेट बनने लगेगा। इसके साथ ही दो नये उर्वरक यूरिया और अमूनियम सल्फेट नाइट्रेट भी बनने लग जाएंगे। इनमें नत्रजन अधिक होता है और ये हमारी भूमि के लिए उपयोगी हैं।

कारखाने के विस्तार में लगभग १३ करोड़ रुपया खर्च हुआ। इसमें सिन्द्री की कोयला भट्टियों से निकली हुई गैस को काम में लायी गया है। इस विस्तार में जो रुपया लगा, उसका काफी अंश सिन्द्री कम्पनी ने अपने पास से लगाया और विस्तार का काफी काम भी वहां के इंजीनियरों ने किया।

नांगल का उर्वरक कारखाना बिजली से चलेगा। इसमें १ लाख ६० हजार किलोवाट बिजली खर्च होगी। आशा है, भाखड़ा से १९६० तक बिजली मिलने लगेगी और १९६० के आरम्भ में ही इस कारखाने में खाद बनने लगेगी।

कारखानें की मशीनों और हैवीवाटर या भारी पानी के यंत्रों की पहली खेप आ गयी है। इमारतें भी बनने लग गयीं हैं। इस कारखाने पर लगभग २५ करोड़ रु० खर्च बैठेगा। यह कारखाना ७०-८० हजार टन नत्रजन उर्वरक बनायेगा। इस नये उर्वरक का नाम नाइट्रोलाइम स्टोन होगा। अर्थात् यहां अमूनियम सलफेट के रूप में ३ लाख ५० हजार टन उर्वरक तैयार होगा। यह कारखाना अणु शक्ति पैदा करने के लिए १२-१५ टन भारी पानी भी तैयार करेगा।

राउरकेला में नये ढङ्ग से इस्पात बनाया जायगा। यहां से उप उत्पादन के रूप में ८० हजार टन तक नत्रजन और नाइट्रो लाइम स्टोन उर्वरक पैदा किये जायेंगे।

खाद के इस कारखाने पर १६ करोड़ रु० खर्च बैठेगा। १६६१ के अन्त तक यहां उत्पादन होने लगेगा। इसके निर्माण में सिन्द्री कम्पनी पूरा सहयोग दे रही है। आशा है यहाँ का उत्पादन दुनियाँ में नहीं तो भारत में सबसे सस्ता पड़ेगा।

यह कारखाना नेवेली लिगनाइट योजना का अंग है। यह मद्रास राज्य में है। यहां लिगनाइट से ७० हजार टन नत्रजनी यूरिया तैयार हो सकेगा। आशा है १६६१-६२ के अंत तक यहां उत्पादन होने लगेगा।

वाराणसी में एक निजी फर्म १० हजार टन नत्रजन बनाने वाला एक कारखाना लगा रही है। यहां अमूनियम क्लोराइड बनेगा। आशा है १६५६ में यहां उत्पादन होने लगेगा। अगले साल इस कारखाने का और भी विस्तार होगा।

उर्वरकों को अप्रैल १६५६ के औद्योगिक नीति प्रस्ताव की सूची 'बी' में रखा गया है। अतः सरकार निजी औद्योगिकों को भी इस क्षेत्र में मदद देने को तैयार है, बशर्ते वह विदेशों से मशीन आदि मंगाने की स्वतः व्यवस्था कर सकें।

सरकार बम्बई के तेल शोधन के दो कारखानों की गैस से भी उर्वरक बनाना शुरू करने का प्रयत्न कर रही है।

भारत में उर्वरक निर्माण के विशेषज्ञ भी अब काफी हो गये हैं। सिन्द्री कारखाने के सभी यंत्रज्ञ और कारीगर भारतीय हैं। राउरकेला के उर्वरक कारखाने के आधे भाग को भी वे ही खड़ा कर रहे हैं।

नये कारखानों को बनाने में नयी से नयी विधियों का ध्यान रखा जा रहा है। सिन्द्री कारखाना जिप्सम और पत्थर के कोयले पर निर्भर है पर नये कारखाने, बिजली, बरबाद जाने वाली गैसों और ऐसे ही दूसरे कच्चे मालों को काम में लाएंगे।

अन्न की पैदावार बढ़ाने के लिए रासायनिक खादें जरूरी हैं, अतः देश के चारों ओर इनके कारखानों का जाल बिछाया जा रहा है।

पंचवर्षीय योजनाओं में नारियल की उपज बढ़ाने के प्रयत्न

आशा है कि भारत में १६६०–६१ के अन्त तक, प्रतिवर्ष ३५ करोड़ नारियल और पैदा होने लग जायेंगे। द्वितीय योजना आरम्भ होने के समय देश में ४३ करोड़ नारियल हर साल पैदा होता था।

भारत में नारियल की पैदावार बढ़ने से देश में साबुन, शृंगार सामग्री और नकली मक्खन आदि बनाने के लिए उसका तेल अधिक मात्रा में मिलने लगेगा। सूखे नारियल की भी पश्चिमी देशों में मिठाई आदि के लिए बड़ी मांग है। अतः सूखी गिरी के निर्यात से विदेशी मुद्रा भी कमाई जा सकेगी।

संसार में नारियल पैदा करने वाले देशों में भारत का दूसरा स्थान है। फिर भी यहां इतना नारियल नहीं होता कि हमारी घरेलू जरूरतें भी पूरी हो सके। और नारियल से बनी वस्तुओं के आयात पर हमें १५ करोड़ रुपये सालाना खर्च करने पड़ते हैं। अगर हम इनमें आत्मनिर्भर बन जाएं, तो विदेशी मुद्रा की काफी बचत हो सकती है।

नारियल की खेती की अच्छी विधि और कीड़ों तथा रोगों से पेड़ों की रक्षा के तरीकों को बताने और दिखाने के लिए दूसरी योजना में प्रदर्शन केन्द्र खोलने के लिए धन की व्यस्था की गयी है। इसके अलावा खाली जमीन पर नारियल के और पेड़ लगाने और अच्छी जाति के पौधों के लिए वियाढ़ आदि लगाने की भी व्यवस्था है। नारियल अनुसंधान और प्रदर्शन केन्द्रों में नारियल लगा कर लोगों को दिखाया गया है कि ठीक ढंग से खेती करने, खाद देने तथा कीड़ों और रोगों का समय पर इलाज करने से, हर वृक्ष में ५५ नारियल उपजाये जा सकते हैं।

दूसरी पन्चवर्षीय योजना में अनेक राज्यों में नारियल के नमूने के बाग लगाने की व्यवस्था की गयी। केरल में ऐसे २३४ बाग लगाये गये हैं। इनके अलावा मद्रास में १५०, आंध्र में ५० और उड़ीसा में-भी २४ बाग लगाने का प्रस्ताव है।

केरल सरकार ने नारियल के पेड़ों को रोगों से बचाव के लिए दवा छिड़कने का कार्य–क्रम बनाया है। रोगों से कितना नुकसान होता है, उसका अंदाज इसी से लगाया जा सकता है कि केरल में प्रति वर्ष इससे दो करोड़ रुपये के नारियल नष्ट हो जाते हैं। नारियल में लगने वाले कीड़ों को खाने वाले कीट पतंग की खोज के लिए कोम्फी कोड़े में एक केन्द्र खोला गया है। इसी तरह के केन्द्र मद्रास और आन्ध्र में भी खुल रहे हैं और बम्बई में भी दो केन्द्र खोले जायेंगे।

नारियल का पेड़ आठ या दस बरस के बाद फलना शुरू करता है, इसलिए पेड़ों का उपजाऊ पन बढ़ाने के साथ-साथ नये पेड़ लगाने की कारवाई करना भी जरूरी है। इसलिये यह कार्यक्रम तीसरी योजना में भी जारी रहेगा। जहाँ जमीन कमजोर है वहाँ रसायनिक और साधारण खाद का भी प्रबन्ध किया गया है। एक एकड़ के लिए करीब ५६० पौन्ड खाद लगती है, जिस का मूल्य ६० रुपया होता है।

गर्मी के दिनों में पेड़ सूखने लगते हैं। इसलिए फिल्टर पाइन्ट नल लगाये जाएंगे, एक फिल्टर पाइन्ट १० एकड़ जमीन को तरी देगा। अनुमान है कि इससे प्रति एकड़ १३० रुपया की दर से अधिक उपज होगी। यह याद रखना चाहिए की नारियल बारा मासी फल है।

आन्ध्र, मद्रास, मैसूर और पश्चिम बङ्गाल में नहरों के किनारों और अन्य खाली जमीनों पर पेड़ लगाये जायेंगे। केरल और लद्द द्वीप में, उथली समुद्री गड़हियों को सुखाकर यहां पेड़ लगाये जायेंगे। अंडमन निकोबार के बन भी नारियल की खेती के लिए बड़े उपयुक्त हैं। अनुमान है कि उनसे तृतीय योजना में नारियल की खेती के लिये प्रायः २०,००० एकड़ नई भूमि प्राप्त हो सकेगी।

अनुमान है कि द्वितीय योजना की समाप्ति तक देश में नारियल की मांग ८७ करोड़ नारियल तक पहुंच जाएगी। किन्तु उपज केवल ३५ करोड़ नारियल ही बढ़ेगी और करीब ५० करोड़ की कमी रह जाएगी। इसे योजना में पूरा करना आवश्य है।

तीसरी योजना में नारियल की उपज बढ़ाने में २५ करोड़ ९६ लाख रु० खर्च का अनुमान है। इसमें से ५१ लाख अनुसंधान पर खर्च होंगे। बाकी २६-२१ करोड़ में से काफी अंश फिर वसूल हो सकता है। इसके अतिरिक्त योजनाओं से सरकार को आमदनी भी होगी। अतः सब हिसाब लगाकर तृतीय योजना में इस कार्यक्रम पर कुल २ करोड़ ७५ लाख रुपये का ही शुद्ध खर्च होगा।

—:०:—

क्या आप जानते हैं ?

भारत में प्लास्टिक का उत्पादन

१—भारत में प्लास्टिक उद्योग वैसे हाल में ही शुरू हुआ है, लेकिन १९४६ से १९५६ के बीच इसने काफी उन्नति की है।

२—१९४६ में प्लास्टिक और प्लास्टिक के सामान का उत्पादन लगभग ७५ लाख रु० का था, १९५१ में २ करोड़ रु० का और १९५६ में ८ करोड़ रु० का कच्चा माल और प्लास्टिक का सामान तैयार किया गया।

३—पहली पंचवर्षीय योजना में प्लास्टिक की चीजें बनाने पर अधिक ध्यान दिया गया। इस अवधि में देश में प्लास्टिक के रेडियो केबिनेट, टेलिफोन रिसीवर, पोलिस्ट्रीन के ग्रामोफोन रेकार्ड, इन्जेक्शन और पोलिथीन की फूंक कर बनायी जाने वाली चीजें, चश्मे के फ्रेम, फाउन्टेन पेन और दांत साफ करने के ब्रश आदि चीजें भी काफी बनने लगी हैं।

४—देश में संयुक्त राष्ट्र संघ के एक टेक्निकल विशेषज्ञ की देख रेख में प्लास्टिक के कारखानों के औजार वगैरह भी काफी बनने लगे हैं, विदेशों से प्लास्टिक के सामान बनाने के सांचे भी अब कम मंगाये जाते हैं। १९५३ में २९१ सांचे मंगवाए गए थे, लेकिन १९५५ में ८७ ही मंगाए गए।

५—१९५८ में अनुमानतः १२ से १४ करोड़ रु० तक का प्लास्टिक और प्लास्टिक का सामान तैयार हुआ।

६—प्लास्टिक के उद्योग का विस्तार करने के लिये ढलाई की और अधिक मशीनों की जरूरत पड़ेगी। सरकार इन मशीनों को देश में ही बनाने के लिए कारखाना खोलने वाली है।

७—अनुमान है कि प्लास्टिक उद्योग के लिये ७ वर्षों में कम से कम १० करोड़ रु० की मशीनों की जरूरत पड़ेगी।

८—ढलाई और साँचे बनाने के काम में सहायता करने के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ ने दो टेक्निकल विशेषज्ञ दिये हैं।

९—आज देश में करीब ढाई करोड़ पौंड प्लास्टिक के सामानों की खपत है। आशा है तीसरी योजना के खतम होने तक खपत पांच गुनी बढ़ जायगी।

———

भारत में कोयला—२

ओम शंकर द्विवेदी, प्रयाग विश्वविद्यालय

वितरण:—यदि हम भारत के कोयला क्षेत्र दर्शाने वाले मानचित्र पर दृष्टिपात करें तो यह पूर्णतयः स्पष्ट हो जावेगा कि भारत के प्रमुख कोयला क्षेत्र त्रिभुजा कार रूप में फैले हुए हैं और यदि हम उज्जैन (मध्य प्रदेश), डिगबोई (आसाम) तथा विजयवाड़ा (आन्ध्र प्रदेश) को मिलाकर एक त्रिभुज खीचें तो वह इन सभी क्षेत्रों को परिगत कर लेगा। भारत के पूर्ण कोयला उत्पादन का ६६% के भी अधिक उत्पादन इन्हीं त्रिभुजवर्ती क्षेत्रों से प्राप्त होता है। यहां हम कोयले का वितरण प्रान्तों के अनुसार देंगे।

राजमहल क्षेत्र:—यह क्षेत्र कई उप क्षेत्रों के मिलने से बना है और जिनमें से मुख्य क्षेत्र हैं।

(१) हूनरा और जिलवारी क्षेत्र:—यहां फूलवेरा गाँव के निकट डकैता पहाड़ी के नीचे एक ६ फीट मोटी खान है। जिलवारी में दो खानें हैं जिसमें कि ऊपरी खान ६ फीट मोटी है।

(२) चुपर भीता क्षेत्र—मालिकवाथन के निकट स्थित है और ७ मील लम्बा है। यहां दो कोयला खाने हैं जिनमें से एक ६ तथा दूसरी ६ फीट मोटी है।
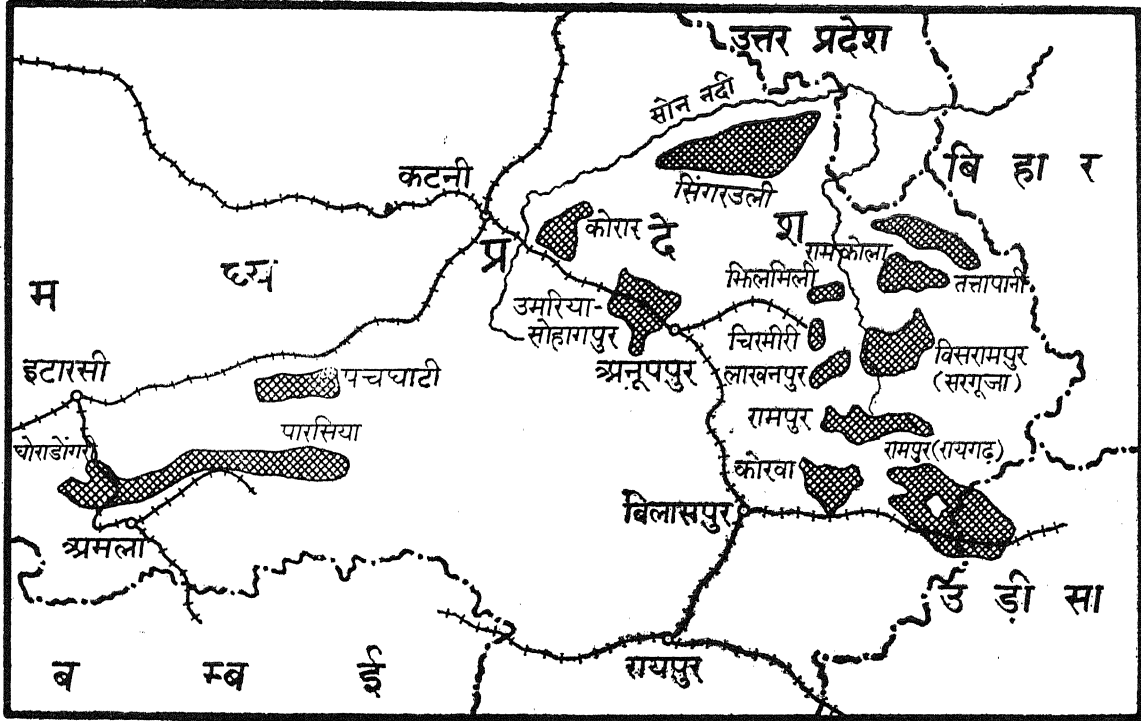
बिहार:—यह प्रान्त भारत के सभी कोयला उत्पादक प्रान्तों में प्रथम स्थान रखता है। यहां के प्रमुख कोयला क्षेत्र निम्न हैं—

(३) पचवारा क्षेत्र—के कोयले में आद्रता की मात्रा बहुत अधिक है। यहाँ कोयला वारगो और चिलगो स्थानों पर खोदा जाता है।

(४) **ब्रह्माणी क्षेत्र**—यहाँ का पूर्ण क्षेत्रफल लगभग ७० वर्ग मील है तथा भंडारों का अनुमान २००० लाख टन है।

देवगढ़ क्षेत्र:—यह क्षेत्र निम्न उपक्षेत्रों से मिलकर बना है।

(१) **साहाजूरी क्षेत्र**—यहाँ दो कोयला खानें १८-२५ फीट तक मोटी हैं तथा भंडारों का अनुमान २२० लाख टन है। इस क्षेत्र का कोयला निम्न श्रेणी का है।

(२) **कुन्दित करैया क्षेत्र**—खैरबानी गाँव के निकट दो पतली कोयला खाने स्थित हैं।

(३) **जाइन्ती क्षेत्र**——यहाँ का कोयला निम्न वाष्पीकरण का है। यहाँ स्थित खान की मोटाई ४ फीट ४ इंच है। इस क्षेत्र के कोयला भंडार का अनुमान २० लाख टन है जिसमें से कि १० लाख टन कोक कोयला बनाने योग्य है।

हजारीबाग क्षेत्र:——यहाँ के निम्न प्रमुख क्षेत्र हैं——

(१) **गिरिडीह या करहरबारी क्षेत्र**—भारत में सर्व प्रथम कोयले का पता यहीं लगा। यहाँ कोयले का क्रमबद्ध खनन कार्य सन् १८५१ से आरम्भ हुआ। इस क्षेत्र की कोयला युक्त चट्टानों का क्षेत्रफल ११ वर्ग मील है। जिसमें से कि ७ वर्ग मील क्षेत्र से ही कोयला प्राप्त होता है। यहाँ की तीन मुख्य खाने हैं, ऊपरी तथा निम्न करहरबारी और पहाड़ी खान। ऊपरी करहरबारी खान ४ से १० फीट तक मोटी है, तथा समाप्त प्रायः है। निम्न करहरबारी १० से २४ फीट तक मोटी है इस खान का कोयला उत्तम कोक बनाने योग्य है जो कि धातु गलाने के कार्य आता है। इस क्षेत्र के पूर्ण कोक योग्य कोयले के भंडार का अनुमान २०० लाख टन है, किन्तु यह कोयला २५ वर्ष से अधिक समय तक नहीं चलेगा।

(२) **चोपे क्षेत्र**—यहाँ एक ही ४ फीट मोटी खान ज्ञात है।

(३) **इटखोरी क्षेत्र**—इस क्षेत्र में तीन कोयला खाने हैं जिनमें से कि निम्नतम ८ फीट, मध्यवर्ती ४ फीट तथा ऊपरी अज्ञात मोटाई की है। क्षेत्र वर्ती कोयले के भंडार का अनुमान १५ लाख टन है।

दामोदर घाटी क्षेत्र:——भारत के सम्पूर्ण उत्पादन का आधे से भी अधिक केवल इसी क्षेत्र से आता है। यह क्षेत्र केवल कोयले की मात्रा में ही नहीं किन्तु गुण धर्म में भी भारत में प्राप्त सभी कोयलों से श्रेष्ठ है। इस भाग के प्रमुख कोयला क्षेत्र निम्न हैं—

(१) **झरिया क्षेत्र**—यह क्षेत्र रानीगंज कोयला क्षेत्र से ३० मील पश्चिम तथा कलकत्ता से १४० मील उत्तर पश्चिम में स्थित है। इस क्षेत्र में सर्वप्रथम खनन कार्य १८६४ ई० में आरम्भ हुआ। यहां की प्रमुख खाने बाराकार श्रेणी की हैं और लगभग १५० वर्गमील से भी अधिक क्षेत्र में फैली हैं। सन् १९१९ ई० में भारत के कुल उत्पादन का ५३% कोयला इन्हीं खानों से प्राप्त किया गया था। हाल तक ही ये खाने भारत के पूर्ण उत्पादन का ४०% पैदा करतीं थी किन्तु अब अन्य खानों का उत्पादन काफी बढ़ जाने से यह पूर्ण उत्पादन का ३६% ही उत्पन्न करतीं हैं। यहाँ कोयला परत की महत्तम मोटाई २०० फीट है। पूर्वी आधे भाग की औसत मोटाई ७५ फीट है। झरिया क्षेत्र की कोयला युक्त चट्टाने नीचे से ऊपर की ओर १८ खानों में विभक्त हैं जिनमें से नीचे की नौ खानों से कोक बनाने योग्य उत्तम गुणधर्म का कोयला प्राप्त किया जाता है।

झरिया क्षेत्र के पूर्ण खनन योग्य कोयले के भन्डार निम्न प्रकार से हैं।

भूतल से ५०० फीट की गहराई तक २०००० लाख टन
भूतल से १००० फीट की गहराई तक ३५०० ,,
,, २००० ,, ४५०० ,,

भूतल से २००० फीट की गहराई तक निहित कोक योग्य कोयले के भन्डार का अनुमान ८६०० लाख टन है। खनित भाग में बालू भरण क्रिया करने पर यह क्षेत्र ६० से ७० वर्ष तक कोयले का उत्पादन कर सकता है। इस क्षेत्र में अन्य नए भन्डारो का पता लगाने के लिए

किरकन्द नामक स्थान पर व्यधन (Driling) कार्य आरम्भ किया गया था जो कि अब भी चल रहा है।

(२) **चन्द्रपुरा क्षेत्र**—यह क्षेत्र झरिया क्षेत्र के पश्चिमी सिरे पर स्थित है और इसका क्षेत्रफल ४०० एकड़ है। चन्द्रपुरा रेलवे स्टेशन के पास ६-७ परवलयाकार (Elliptical) खानें पाई जाती हैं, जिनमें से एक २५ और दूसरी १० फीट मोटी है। कोयला अच्छे प्रकार का है।

(३) **बोकारो क्षेत्र**—व्यधनछिद्रों (Boring) द्वारा, अब तक इस क्षेत्र में २९ कोयला खानों का पता लगाया जा चुका है जिनकी कि मोटाई ४ से ६६ फीट तक है। यहाँ की कोयला युक्त चट्टानें २२० वर्ग मील के क्षेत्र में फैली हुई हैं जहाँ से कि बोकारो नदी का उद्भव होता है। इस क्षेत्र की पूर्व से पश्चिम की ओर लम्बई ४० मील तथा उत्तर से दक्षिण की ओर चौड़ाई ७ मील है। यहाँ प्राप्त कोयला उत्तम प्रकार का है और कोक बनाने में प्रयुक्त होता है। कोयले में उपस्थित फासफोरस की मात्रा ०.३% से भी कम है। कारगली खान जो कि पूर्वी बोकारो क्षेत्र में स्थित है यहाँ की सबसे महत्वपूर्ण खान है जिसकी कि एक भाग में मोटाई १२५ फीट है। यहाँ के प्राप्ति योग्य भन्डार ८,००० लाख टन है जिसमें से कि ३००० लाख टन उत्तम कोक के निर्माण योग्य है। सन् १९५६-५७ के वित्तीय वर्ष में इस क्षेत्र से ११०००२० टन कोयला प्राप्त हुआ जिसका कि मूल्य ७४६८७२६ रु० ६ आ० था।

(४) **रामगढ़ क्षेत्र**-इस क्षेत्र की कोयला युक्त चट्टाने ३० वर्ग मील में फैली हुई हैं। प्राप्त कई कोयला खानें मोटी भी हैं किन्तु कोयला निम्न श्रेणी का है।

(५) करन पुरा क्षेत्र—यह उत्तरी करनपुरा तथा दक्षिणी करनपुरा दो कोयला क्षेत्रों के मिलने से बना है जिनका कि क्षेत्रफल लगभग ५५० वर्गमील है। दक्षिणी करनपुरा क्षेत्र की बहुत सी कोयला खानें ५० फीट मोटी हैं, यहाँ की अरगदा खान ६० फीट मोटी है। उत्तरी करनपुरा क्षेत्र में भी बहुत सी खाने ७२ फीट मोटी हैं। तुलनात्मक द्रष्टि से दक्षिणी करनपुरा क्षेत्र का कोयला उत्तरी से अच्छे प्रकार का है किन्तु यह भी अर्धकोकिंग (Semicaking) प्रकार का ही है। इन क्षेत्रों के २००० फीट तक गहराई के कोयला भन्डारो का अनुमान ७५०० लाख टन है।

(६) औरंगा क्षेत्र—यह क्षेत्र १०० वर्गमील में फैला हुआ है। यहाँ बहुत सी खानें पाई गई है जिनमें से कुछ तो ४० फीट तक मोटी हैं।

(७) हुतार क्षेत्र—यह क्षेत्र औरंगा क्षेत्र से १० मील पश्चिम, पालामऊ जिले में स्थित है तथा क्षेत्रफल लगभग ८० वर्ग मील है। इस क्षेत्र में बहुत सो कोयला खाने भिन्न भिन्न मोटाई की पाई गई हैं जिनमें से एक की मोटाई १३ फीट ८ इंच है। यहाँ के कोयले में आद्रता की मात्रा अधिक है और यह कोक बनाने योग्य नहीं है। अभी तक इस क्षेत्र की पूर्णतयः खोज नहीं हुई है।

(८) डाल्टनगंज क्षेत्र—इस क्षेत्र में सर्व प्रथम सन् १८२६ई० में कोयला पाया गया किन्तु खनन कार्य सन् १८४० ई० के बाद ही आरम्भ हुआ। सन् १६०१ में रेलवे लाइन से जुड़ जाने के कारण इसका विकास तीव्रगति से हुआ। यहाँ का ३२ वर्गमील क्षेत्र कोयला युक्त बाराकार चट्टानों से ढका हुआ है। राजहरा स्टेशन के निकट स्थित एक खान की मोटाई ३० फीट है। छिद्रणो से यह ज्ञात होगया है कि इस क्षेत्र में १४ खाने हैं जो कि ६ इंच से लेकर ५ फीट तक मोटी हैं। राजहरा के निकटवर्ती १ वर्ग मील क्षेत्र के कोयला भन्डार का अनुमान ६० लाख टन है।

पश्चिमी बंगालः भारत के कोयला उत्पादन के विचार से बंगाल का दूसरा स्थान है। इस प्रान्त की प्रमुख कोयला खानें निम्न प्रकार से हैं।

(१) रानीगंज क्षेत्र—यह कोयला क्षेत्र पश्चिमी बंगाल के मुख्यतः वर्धवान और अंशतः वांकुरा, संथाल परगना और वीर भूमि जिलों में स्थित है। यहाँ की कोयला खाने पश्चिम में विहार प्रान्त में भी चलीं गई हैं। इस खान का क्षेत्रफल ६०० वर्ग मील है किन्तु यह सत्य है कि इस क्षेत्र की पूर्वी सीमा बहुत आगे तक है जहां कि कोयला युक्त चट्टानें मीटे मृतिका के परत के नीचे दबी पड़ी है, निजी तथा रेलवे द्वारा किए गए छिद्रों से इसका प्रमाण मिल चुका है। इस क्षेत्र में बाराकार तथा रानीगंज दोनों ही प्रकार की खाने स्थित हैं। बाराकार परत से सम्बन्धित निम्न खाने हैं।

दामागरिया खान—कोयला कोक युक्त नहीं हैं।

लाइबडीह खान—उत्तम प्रकार के कोक योग्य कोयला

रामनगर खान—कोक योग्य कोयला

बेगुनियां खान—कोक योग्य कोयला

रानीगंज तह से सम्बन्धित मुख्य खाने हैं। पानी हाथी खान, दीशेरगढ़ खान, जामबाद-नेगा खान तथा घुसिक खान!

रानीगंज कोयले क्षेत्र में २००० फीट गहरे तक स्थित सभी प्रकार के कोयले के भण्डार ६०००० लाख टन हैं जिसमें से कि कोक में परिवर्तन योग्य कोयले के भण्डार २३०० लाख टन हैं। इस क्षेत्र का आधुनिक उत्पादन पूर्ण भारत के उत्पादन का लगभग ३०%है। कलकत्ता औद्योगिक केन्द्र के समीप स्थित होने के कारण भारत के लिए इस क्षेत्र का महत्व बहुत ही अधिक है।

(२) दारजिलिंग क्षेत्र—यहां टिन्ढ़रिया, लिशू तथा रामती नदियों के क्षेत्र में कोयला पाया जाता है। टिन्ढ़रिया कोयला खान की मोटाई ११ फीट है। लिशू क्षेत्र का कोयला उत्तम प्रकार के कोक में परिवर्तित करने योग्य है इस क्षेत्र के कोयले में राख की मात्रा १३-२६% तक है। कोयला भण्डारों का अनुमान ५० लाख टन है।

मध्य प्रदेश:—भारत के कोयला उत्पादक प्रान्तों में मध्य प्रदेश का तीसरा सर्वोच्च स्थान है तथा यहां के

प्रमुख कोयला क्षेत्र निम्न हैं। रीवा क्षेत्र–इसके निम्न उप क्षेत्र हैं।

(१ **सिंगरउली क्षेत्र**--यह क्षेत्र सोन नदी के दक्षिण में स्थित है तथा उत्तर प्रदेश के मिर्जापुर जिले तक फैला हुआ है। इस क्षेत्र का क्षेत्रफल ५०० वर्ग मील है। यहां नउनागढ़ के निकट एक १८ फीट मोटी खान है। दूसरी खान परारो के निकट स्थित है तथा इसकी मोटाई ६ फीट है। यह अकेला क्षेत्र पूर्ण भारत के उत्पादन का ४% उत्पादित करता है।

(२) **उमरिया क्षेत्र**---इस क्षेत्र का प्रथम विकास सन् १८८२ ई० में हुआ। यह क्षेत्र कटनी--विलासपुर रेलवे लाइन पर ही स्थित है। यहां का क्षेत्रफल ६ वर्ग मील है। सामुद्रिक पुरातत्वीय अवशेषों का पाया जाना इस क्षेत्र की प्रमुख विशेषता है। यहां ६ कोयला खाने हैं जिनमें से कि ४ खनन योग्य हैं। पूर्ण तहों की मोटाई २५ फीट है तथा कोयले के अधुमानित भन्डार २४० लाख टन है।

(३) **जोहिल्ला नदी क्षेत्र**---इस क्षेत्र में उत्तरी जोहिल्ला तथा दक्षिणी जोहिल्ला दो क्षेत्र सम्मिलित हैं जिनमें से कि प्रथम का क्षेत्रफल ११॥ वर्ग मील तथा द्वितीय का ३½ वर्ग मील है। यहां स्थित ऊपरी खान की मोटाई १७ फीट तथा नीचे की खान ६ फीट मोटी है। लगभग ५०० फीट की गहराई तक कोयला भन्डार का अनुमान ३०० लाख टन है।

(४) **सोहाग पुर क्षेत्र**—यहां खनन कार्य सन् १६२१ से आरम्भ हुआ। कोयला युक्त चट्टानों का क्षेत्रफल १२०० वर्ग मील है तथा यहां ६ कोयला खाने हैं जो कि ३ से ५ फीट तक मोटी हैं। इस क्षेत्र का कोयला अच्छे प्रकार का है जिसमें कि राख की मात्रा १०–१५% तक पाई जाती है।

छत्तीस गढ़ क्षेत्र—इस क्षेत्र के निम्न उप विभाग हैं और ये सभी उप विभागों की खाने गोण्डवाना चट्टानों से सम्बन्धित हैं।

(१) **तत्ता पानी—राम कोला क्षेत्र**—इसमें पूर्वी और पश्चिमी दो क्षेत्र सम्मिलित हैं जिनका कि क्षेत्रफल लगभग ८०० वर्ग मील है किन्तु कोयला युक्त चट्टानों का क्षेद्रफल केवल १०० वर्ग मीलही है पूर्वी क्षेत्र अर्थात तत्ता पानी में तीन खाने हैं जो क्रमशः ३ फीट, ६ फीट २ इंच तथा ८ फीट मोटी हैं। राम कोला अर्थात पश्चिमी क्षेत्र में दो खाने क्रमशः ३ फीट तथा १७ फीट मोटी हैं।

(२) **झिलमिली क्षेत्र**—यहां तीन चार कोयला खाने हैं जो कि ४ फीट से अधिक मोटी हैं। यहां का कुछ कोयला कोक बनाने योग्य भी है तथा भन्डरो का अनुमान ६५ लाख टन है।

(३) **सनहट क्षेत्र**—इस क्षेत्र का क्षेत्रफल ३३० वर्ग मील है तथा यहां का कोयला क्षेत्र तीन विभागों में बांटा जा सकता है।

(क) पूर्वी क्षेत्र जिसमें कि एक पेटी १६ मील लम्बी है और यहां ५ फीट मोटी चार खाने हैं।

(ख) नागर क्षेत्र जिसमें कि एक खान ३॥ से १० फीट तक मोटी है।

(ग) चर्चा क्षेत्र में एक ३ फीट मोटी खान है।

(४) **झगड खन्ड क्षेत्र**—क्षेत्रफल २२ वर्ग मील है तथा यहां तीन कोयला खाने ५-८ फीट मोटी हैं। इस क्षेत्र में प्राप्त कोयला स्तरो में बालू के पत्थर के डाइक प्रवेश कर गये हैं।

(५) **कुरसिया क्षेत्र**—यह कुरसिया गाँव के निकच स्थित है। इसका क्षेत्रफल ४८ वर्गमील है। यहां का कोयला अच्छे प्रकार का है।

(६) **विखराम पुर क्षेत्र**–राजनसूही के निकट बहुत सी कोयला खाने ५ से ६ फीट तक मोटी है और ४०० वर्ग मील क्षेत्र में फैली हुई है। कोंटिया के निकट कई एक तथा वगारा के निकट भी दो खाने पाई गई हैं। गागर नाला के निकट स्थित खान का कोयला अच्छे प्रकार का है और इसमें ७% ही राख है। महान नदी पर की खान की मोटाई ७½ फीट है।

(७) **लाखनपुर क्षेत्र**—इस क्षेत्र का क्षेत्रफल १३५ मील के लगभग है। यह दो क्षेत्रों के मिलने से बना है। पहला पूर्व में स्थित है जिसे कि लाखनपुर क्षेत्र कहते हैं और इसका क्षेत्रफल ५० वर्ग मील है दूसरे पश्चिमी क्षेत्र को लिंगह क्षेत्र कहते हैं और इसका क्षेत्र-फल ८५ वर्ग मील है। लाखनपुर क्षेत्र में दो खाने हैं जो क्रमशः २ फीट और ५॥ फीट मोटी हैं। लिंगह क्षेत्र में भी दो ही खाने हैं जो क्रमशः ३॥ तथा ७॥ फीट मोटी हैं।

(८) **पंचवाहिनी क्षेत्र**—यह ४॥ वर्ग मील क्षेत्र में फैला हुआ है। यहाँ दो कोयला खाने हैं जो कि २ फीट मोटी हैं।

(९) **सिन्दूरगढ़ क्षेत्र**—यह क्षेत्र २० वर्ग मील के क्षेत्रफल में फैला हुआ है। यहां बहुत सी मूल्यवान खानों का पता चला है। इस क्षेत्र में स्थित बुकभुखू के निकट एक खान १० फीट मोटी है, किन्तु इस खान का कोयला अच्छे प्रकार का नहीं है। अमलीवहार के निकट दूसरी खान है जो ४ फीट मोटी है, इसका कोयला अच्छे
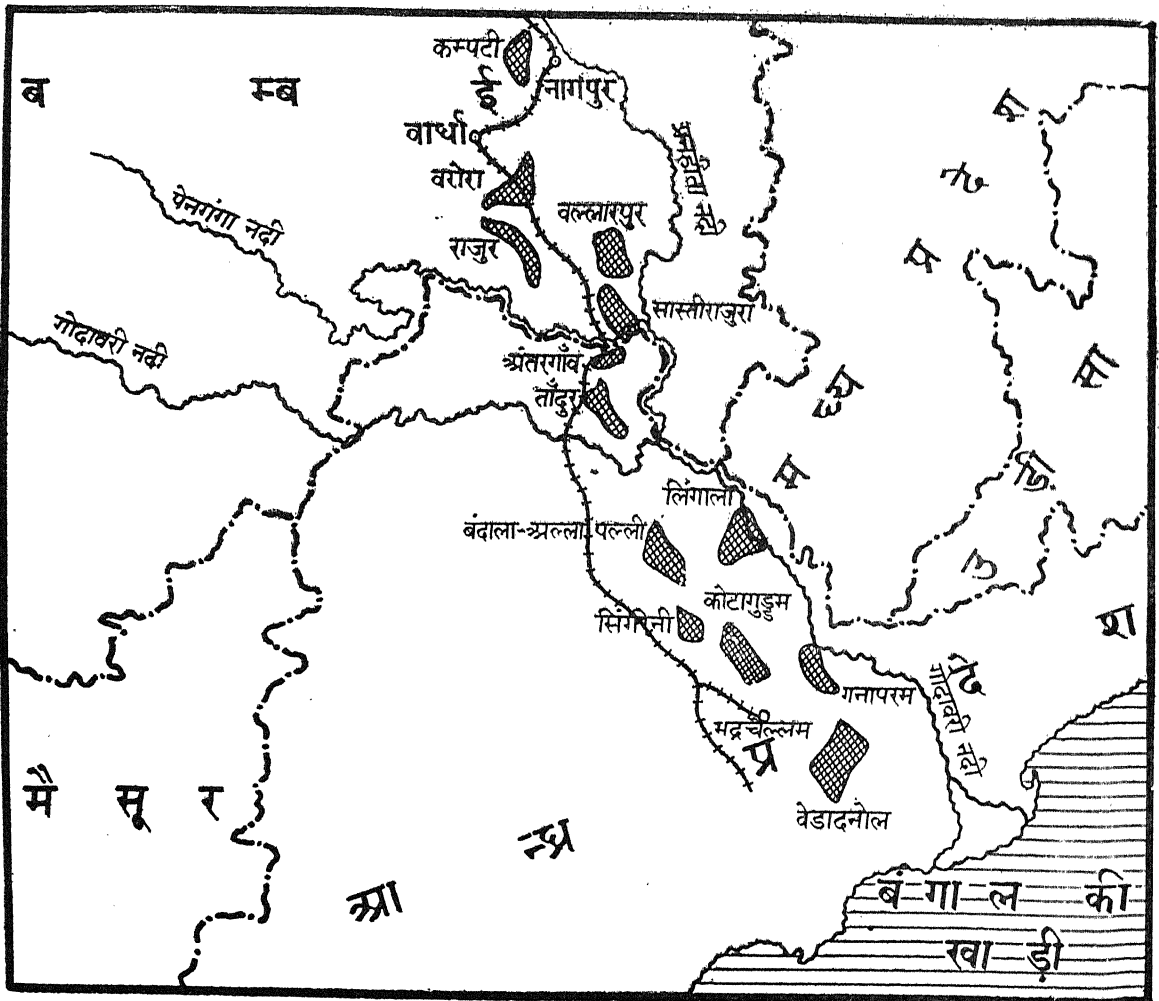
प्रकार का है और इसमें ६॥% ही राख की मात्रा है। यहां के भन्डारों का अनुमान ४०० लाख टन है।

(१०) **कोरबा क्षेत्र**–यह क्षेत्र दक्षिण-पूर्वी रेलवे के चम्पा स्टेशन से २४ मील पश्चिम में स्थित है। कोयला युक्त चट्टानों का क्षेत्रफल २०० वर्ग मील है। यहां की दो कोयला खाने क्रमशः ७० फीट और १५० फीट मोटी हैं और सोनपुरी खान ७२ फीट मोटी है। राजगमार गांव के लगभग १ मील पश्चिम में, फुलुकंडीह नाला क्षेत्र में बहुत ही अच्छे प्रकार के कोयले की एक ६ फीट मोटी खान है। इस क्षेत्र के कोयला भन्डारों का अनुमान २५०० लाख टन है जिसमें से केवल २५० लाख टन ही इस योग्य है जो कि अच्छे कोक में परिवर्तित किया जा सके।

(११) **रायगढ़-हिगर क्षेत्र**—यहाँ स्थित बाराकार श्रेणी के कोयला क्षेत्र २०० वर्ग मील क्षेत्र को ढके हुये हैं। यहां बहुत सी कोयला खाने हैं किन्तु केवल तीन ही ६ फीट मोटी हैं इनमें से एक कालो नदी पर और शेष दो वेन्द्रा नदी के मुहाने पर स्थित हैं।

(१२) **दक्षिणी रायगढ़ क्षेत्र**—इसका क्षेत्रफल लगभग २५ वर्ग मील है। दिवदोरा के निकट छिद्रण से एक १४ फीट मोटी खान का पता लगा है।

सतपुड़ा क्षेत्र—इस क्षे के मुख्य उपक्षेत्र निम्न हैं—

(१) **मोहपानी क्षेत्र**—इस क्षेत्र में सन् १९०४ ई. से खनन कार्य आरम्भ हुआ। यहां चार ज्ञात खाने हैं जिनमें दो २० से २५ फीट मोटी हैं। कोयले के भन्डार का अनुमान ४० लाख टन है।

(२) **शाहपुर क्षेत्र**–यहां गुरगन्डा, मरदानपुर तथा कतासुर क्षेत्रों में कोयला पाया जाता है। यहां बाराकार की पतली पट्टी है और खाने लगभग ५ फीट मोटी है।

(३) **पथाखेरा क्षेत्र**–यह क्षेत्र १६ वर्ग मील में फैला हुआ है। यहां तीन खानों का पता लगा है जिनमें से एक ४ फीट ८ इंच दूसरी ६ फीट तथा तीसरी १४ फीट मोटी है। कोयला अच्छे प्रकार का है और इसके भन्डार का अनुमान १५० लाख टन है।

(४) **कन्हान घाटी क्षेत्र**—यह क्षेत्र कन्हान नदी से पेंच घाटी तक फैला हुआ है। इस क्षेत्र में विभंग (Faults) पाए जाते हैं। इस क्षेत्र की कुछ खानें १५ से १९ फीट तक मोटी है। यहां का कोयला अच्छे प्रकार का तथा कोक बनाने योग्य है।

पेंच घाटी क्षेत्र–यहां सन् १९०५ ई० से उत्पादनात्मक कार्य आरम्भ हुआ। इस क्षेत्र के भी ९-१० उप क्षेत्र हैं। गाजन दोट क्षेत्र में एक ५ फीट मोटी खान ८ फीट शेल (Shale) के नीचे पाई गई है। बारकुही रेलवे स्टेशन के निकट एक खान ७ फीट मोटी है और इसके ऊपर दूसरी खान ४ फीट मोटी है। भंडरिया-भुतरिया क्षेत्र में एक खान ८ फीट मोटी है। चन्दामेटा-डोगर चिकली क्षेत्र में भी कई खानें पाई गयी हैं जिनमें से एक ९॥ फीट मोटी है। कोयला निम्न श्रेणी का है तथा भन्डार का अनुमान १५० लाख टन है। इकलैरा-न्यूटन चिखली में एक ८ फीट मोटी अच्छे कोयले की खान है। परसिया-खिरसादोह क्षेत्र में तीन कोयला खाने क्रमशः ६ फीट ५ फीट तथा ४॥ फीट मोटी हैं। दिघावानी-छिन्दा में तीनों खाने १४½ फीट मोटी हैं तथा एक स्थान पर १५॥ फीट मोटी है।

बम्बई:—बम्बई में वर्धाघाटी कोयला क्षेत्र ही मुख्य है। यहां सन् १८३१ ई० कोयला पाया गया। इस क्षेत्र के मुख्य कोयला उत्पादक क्षेत्र निम्न हैं—

(१) **बान्दार क्षेत्र**—इस क्षेत्र में चार कोयला खानें क्रमशः ७ फीट, १७ फीट, ३ फीट और ६ फीट मोटी हैं। यह क्षेत्र रेलवे शाखा से दूर होने के कारण विकसित न हो सका। भन्डार का अनुमान १०८० लाख टन है।

(२) **बरोरा क्षेत्र**—इसका क्षेत्रफल लगभग ४२० एकड़ है यहां दो कोयला खाने क्रमशः २२ और १० फीट मोटी हैं। नये छिद्रणों से यहाँ ४ खानों का पता लगा है। भन्डार का अनुमान १२० लाख टन है।

(३) **राजुर या वुन क्षेत्र**—यह क्षेत्र योतमाला जिले में स्थित है। पिस गांव के निकट भूतल से ७७ फीट की गहराई तक २७ से ३१ फीट तक कोयला पाया जाता है तथा राजुर के पास भूतल से १६० फीट की गहराई तक १८ से ३० फीट तक कोयला पाया जाता है। गणेशपुर में २४५ फीट छिद्रण करने पर भी यही फल प्राप्त हुआ कोयले के अनुमानित भन्डार २४०० लाख टन है।

(४) **घुगस-तेलवासा क्षेत्र**—जुनारा में ६२ फीट कोयले का निर्धारण छिद्रणों से किया जा चुका है। यहां एक कोयला खान की मोटाई ५६ फीट है। तेलवासा में छिद्रणों द्वारा तीन खनन योग्य खानों का पता लगा है जो कि भूतल से १२५ फीट की गहराई तक ही क्रमशः ८ फीट, २१ फीट और १३ फीट मोटी है। मध्य खान का कोयला अच्छे प्रकार का है। घुगुस में ३७ फीट और ३३ फीट मोटी दो खानें हैं। कोयला आर्द्रता युक्त और निम्न श्रेणी का है।

(५) **चन्दा क्षेत्र**—यहाँ १६ और २६ फीट मोटी दो खाने भूतल से क्रमशः ८१ और १२० फीट की गहराई पर पायी गई हैं।

(६) **बल्लालपुर क्षेत्र**—सास्ती के निकट छिद्रण से ६२ फीट की गहराई पर एक ३२ फीट मोटी खान का पता लगा है।

आन्ध्र प्रदेश:—यहां के प्रमुख क्षेत्र निम्न हैं।

(१) **सास्ती क्षेत्र**—यह वर्धा नदी के पश्चिम, सास्ती के दक्षिण पूर्व तथा बम्बई और आन्ध्र प्रदेश की सीमा पर स्थित है। इसका क्षेत्रफल २०० वर्ग मील है। सास्ती के निकट सभी खानों की मोटाई ५० फीट है। भूतल से ७८ फीट नीचे एक खान की मोटाई २७ फीट है। पाओनी के पास एक ६० फीट मोटी खान ज्ञात हुई है। कोयला अच्छे प्रकार का हैं।

(२) **अन्तरगाँव अकसापुर क्षेत्र**—लाठीघाट के उत्तर तथा अन्तर गांव के निकट एक ६ फीट मोटी खान है। दूसरी खान अनार पहाड़ी में अंतर गांव के पश्चिम में एक नमि (anticline) में स्थित है। यहां के कोयले में राख की मात्रा २०% है।

(३) **तांदुर क्षेत्र**—यह क्षेत्र तांदुर और गोदावरी नदी के बीच १०० वर्ग मील के क्षेत्र में फैला हुआ है। अरेगुरा के निकट एक १५ फीट मोटी खान है। यहां के कोयले में १२·२% राख और ६·४% आर्द्रता पाई गई है। यह क्षेत्र बाराकार श्रेणी का ही है। इस क्षेत्र के दक्षिण में सारंगवाली येनकाता पुरम तथा टेट मातला में भी कोयला पाये जाने की सम्भावना है।

(४) **कारलापल्ली क्षेत्र**—पेन गङ्गा की सहायक नदी कारलापल्ली के क्षेत्र में बाराकम् चट्टानें पाई जाती हैं। इस क्षेत्र का क्षेत्रफल लगभग १·५६ एकड़ है और यहाँ दो कोयला की खान ६ और ६ फीट मोटी है।

(५) **वान्दाला अल्ला पल्ली क्षेत्र**—यहां स्थित कोयला खान की मोटाई ६ फीट है यह क्षेत्र अभी उजाड़ सा है। भविष्य में इसके विकास की सम्भावना है।

(६) **लिंगाला क्षेत्र**—इसका क्षेत्रफल ५ वर्ग मील है। यहाँ चार कोयला खानें हैं जिनमें से तीन खाने २ फीट मोटी हैं और पश्चिम की ओर झुकीं हैं। एक ५ फीट मोटी खान गोदावरी नदी के मध्य तक फैली है।

(७) **सिंगरेनी क्षेत्र**—सिंगरेनी के लगभग ५ मील उत्तर-पूर्व में येलान्दला पद के निकट इस क्षेत्र में गोण्डवाना चट्टानें पाई जाती हैं। इस क्षेत्र का क्षेत्रफल १६ वर्ग मील है जो कि ११ मील लम्बा और लगभग २ मील चौड़ा है। छिद्रण द्वारा भूतल से ५० फीट और २५० फीट के बीच चार खानों का पता लगाया गया है। ऊपरी खान का कोयला अच्छी श्रेणी का है तथा इसकी मोटाई ६ फीट है। बीच की दो खानें पतली हैं। निम्नतम खान की मोटाई लगभग ३४ फीट है। हाल ही के छिद्रणों से इस मोटी खान के नीचे ६ खानों का पता लगा है इनमें से तल से ऊपर की खान (किङ्ग-खान) ६ से ७ फीट मोटी है और इसका कोयला उत्तम श्रेणी का है, इसके कोयले में ७% आर्द्रता और ११% राख है। किंग और मोटी खान के भंडार का अनुमान

भारत
के
कोयला क्षेत्र
काश्मीर
तथा जम्मू
पश्चिमी पाकिस्तान
पंजाब
राजस्थान
उत्तर प्रदेश
नेपाल
भूटान
खसिया क्षेत्र
डिगबोई
आसाम
आसाम क्षेत्र
मनीपुर
पू० पाकिस्तान
बर्मा
बिहार
उज्जैन
मध्य प्रदेश
बंगाल
तालचर
उड़ीसा
विजयवाड़ा
मद्रास
कोयला क्षेत्र
राज्यों की सीमायें

१५६० लाख टन है किन्तु अधोगमन Subsidense) के कारण खनन योग्य कोयला भंडार का अनुमान ३६० लाख टन है। सन् १६५७ में इस खान से १६ लाख २० हजार टन कोयला निकाला गया और चालू वर्ष में २१ लाख ६० हजार टन कोयला निकालने का अनुमान है।

(८) **कोटागुड्डम क्षेत्र**---यह सिंगरेनी से २४ मील पूर्व में स्थित है। यहां ४०० फीट तक कोयला खाने पाई जाती हैं।

(६) **गनापरम बेड़ादनोल क्षेत्र**---गनापरम क्षेत्र में राजा हजोम पल्ली नामक गांव के सन्मुख अच्छी श्रेणी के कोयले की एक खान पाई गई है जिसकी कि सामान्य मोटाई ५॥ फीट है। बेडादनोल क्षेत्र में भी कोयला खाने हैं किन्तु इनका अभी विकास नहीं हुआ है।

उड़ीसा :---यहां भी कोयला गोण्डवाना प्रकार की चट्टानों से प्राप्त होता है और मुख्य उत्पादन केन्द्र निम्न हैं ---

(१) **तालचर क्षेत्र**---यह क्षेत्र उड़ीसा की ब्राह्मणी घाटी में कटक से ६५ मील पश्चिम में स्थित है। इसका पूर्ण कोयला क्षेत्र लगभग २०० वर्ग मील हैं किन्तु खनन योग्य खाने केवल ११ वर्ग मील में ही स्थित हैं। इस क्षेत्र की ऊपरी खान ६ फीट तथा नीचे की १३ फीट मोटी है। यहां का कोयला अच्छे प्रकार का नहीं है यद्यपि इसमें राख की मात्रा कम है और आर्द्रता भी १०% से अधिक नही है। यहां के कोयला भंडारों का अनुमान १८४० लाख टन है।

(२) **रामपुर (सम्बलपुर) क्षेत्र**---यहां स्थित खानों को इब नदी की खाने भी कहते हैं। कोयला अच्छे प्रकार का है। रामपुर के निकट स्थित २०० वर्ग मील में फैले हुए ६०० फीट तक की गहराई के कोयला भंडारों का अनुमान १००० लाख टन है।

(३) **हिन्गीर क्षेत्र**- यहां के कोयला युक्त क्षेत्र का क्षेत्र फल लगभग ४० वर्ग मील है किन्तु इसका पूर्ण विकास नहीं हुआ है। यहां रानीगन्ज और बाराकार दोनों ही प्रकार की चट्टाने पाई जाती हैं। कुछ वर्ष पूर्व यहां ३०-३५ फीट की गहराई पर एक २ फीट मोटी खान पाई गई। यहां अच्छे प्रकार के कोयले की एक ४५ फीट मोटी खान भी ज्ञात है।

आसाम :---आसाम के कोयला भन्डार तृतीयक युग के हैं जिन में से कुछ का विवरण नीचे दिया जा रहा है।

ऊपरी आसाम क्षेत्र-इसके निम्न उप विभाग हैं।

(१) **नामफुक-नामचिक क्षेत्र**- यह कोयला क्षेत्र नामफुक और नामचिक नामक नदियों के दक्षिणी भाग में दो तीन मील तक फैला हुआ है। इस क्षेत्र में भूतल से ३६० फीट तक लगभग ६० फीट मोटी कोयला स्तर हैं। इनमें से एक खान २६ फीट मोटी है। खाने बहुत ही झुकी अवस्था में पाई जाती हैं।

(२) **माकूम क्षेत्र** यह क्षेत्र लखीमपुर और सिवसागर जिलों की दक्षिणी सीमा पर स्थित है। यहां लिगनाइट कोयले की एक खान १५ से ८० फीट मोटी है। अन्य कई पतली खाने भी हैं। सभी खानों का झुकाव तीव्र है। हेरिस ने सन् १६०० से यहां के कोयला भन्डारों का अनुमान ६०० लाख टन लगाया था।

(३) **जयपुर क्षेत्र**— यह क्षेत्र नजीरा क्षेत्र से २० मील उत्तर-पूर्व में स्थित है। कोयला युक्त चट्टानें २३ वर्ग मील क्षेत्र में फैली हैं। यहां के केवल ५० फीट की गहराई तक के ही कोयला भन्डारों का अनुमान ५०० लाख टन है।

(४) **नजीरा क्षेत्र** यहां लगभग १६ मील लंबी एक कोयले की पट्टी पाई गई है जिसका झुकाव दक्षिण-पूर्व की ओर अधिक है, यहां की तिरू, दिकू और सफराई की घाटियों में भी ६०० फीट की गहराई तक १५० लाख टन के भन्डार का अनुमान है जिसमें से अधिकांश जलस्तर से ऊपर है।

खासी तथा जयन्तिया क्षेत्र—यह कोयला भन्डार इयोसीन काल के हैं जो कि चेरा पूंजी के चारों ओर स्थित हैं। यहां का क्षेत्र फल लगभग ३० वर्ग मील है तथा कोयला भन्डार का अनुमान १० लाख टन से अधिक है। कोयला कोक योग्य है जिसमें राख की

मात्रा ५ से २०% तक ही है किन्तु गंधक की मात्रा अधिक है।

गारो क्षेत्र—यहां इयोसीन काल के बहुत से क्षेत्र पाये जाते हैं दारंगिरी के बेसिन में लगभग २० मील के प्रसार में कोयला पाया जाता है। खानों की औसत मोटाई ५½ फीट है तथा अनुमानित भन्डार ७६० लाख टन हैं।

मद्रास :—यहां के दक्षिणी अकार्ट जिले के कुड्डालोर क्षेत्र में बालू का पत्थर में दबे लिगनाइट कोयले के भन्डार हैं। यह क्षेत्र वृधाचलम और कुड्डालोर ताल्लुकों में ४—५ मील की लम्बाई में नेवली रेलवे स्टेशन के निकट फैले हुए हैं। यहां लगभग ५२ वर्ग मील क्षेत्र में कोयला मिलने की आशा की जाती है जिसमें से २३ वर्ग मील क्षेत्र में एक लिगनाइट कोयले को भूतल से १६५ फीट की गहराई पर खान का निश्चय हो चुका है। यह खान १०½ फीट से ५१ फीट तक मोटी हैं तथा मध्यमान मोटाई २२ फीट है। यहां का लिग-नाइट अच्छी श्रेणी का है जिसमें कि निश्चित कार्बन की मात्रा ३५%, आद्रता १४% तथा वाष्पीभूत पदार्थ ४३% हैं। इसमें गंधक १% फासफोरस नगण्य तथा राख की मात्रा भी कम है। इस प्रकार के यहां स्थित कुल भन्डारों का अनुमान ४६८० लाख टन है।

राजस्थान :—राजस्थान के कोयला क्षेत्रों में पलना ही उल्लेखनीय है। यह स्थान बीकानेर से १३ मील दक्षिण पश्चिम में स्थित है। कोयला खानों की कुल मोटाई लगभग २० फीट है। इस कोयले में आद्रता की मात्रा २० से ३०% तक है।

अभी हाल ही में जोधपुर से ४० मील दक्षिण में ३३० फीट की गहराई पर लिगनाइट कोयले की एक १० फीट मोटी खान पाई गई हैं।

काश्मीर :—इस प्रान्त में कोयला रियासी (जम्मू) जिले में चिनाव नदी के दोनों ओर फैला हुआ है। यह कोयला अच्छे प्रकार का है। यहां तृतीयक युग की दो खानों का पता लगा है जिनका कि कोयला एन्थ्रसाइट प्रकार का है।

उत्पादन :—गत कुछ वर्षों में भारत में कोयले का उत्पादन निम्न प्रकार से रहा।

वर्ष	उत्पादन-लाख टनों में
१९५२	३६२.३
१९५३	३५८.४
१९५४	३६७.७
१९५५	३८२.१
१९५६	३९४.०
१९५७	४३४.०

गत दो वर्षों में अर्थात् सन् १९५६ तथा ५७ में भारत से कोयले का निर्यात क्रमशः १७२८५०८ तथा १७५३८७३ टन हुआ।

भारत का कोयला निम्न श्रेणी का है, इसमें कार्बन की मात्रा कम तथा आद्रता की मात्रा अधिक है इसका वितरण भी असमान है। कोयला खानों तक यातायात के साधन पूर्ण विकसित नहीं हैं तथा भारतीय कोयला समुद्र तट से दूर स्थित है। इन सब असुविधाओं को दृष्टि में रख कर कहा जा सकता है कि भारत वर्ष में कोयला उद्योग का भविष्य उज्वल नहीं है। फिर भी देश इस समय अपनी कोयले की आवश्यकता की दृष्टि से आत्म निर्भर है। अनुमान है कि हमारे कोयला भन्डार लगभग १०० वर्ष चलेंगे, वास्तव में यह चिन्ताजनक है किंतु देश के प्रमुख विज्ञान वेत्ताओं की खोजें इस लम्बी अवधि में कोयले को स्थानापन्न करने वाले किसी अन्य शक्ति स्रोत का विकास अवश्य कर लेंगी।

कोयला धोने के कारखाने —टाटा आइरन एन्ड स्टील कम्पनी जमशेदपुर तथा इन्डियन आइरन एन्ड स्टील कम्पनी आसनसोल को धुला हुआ कोयला प्रदान करने के तीन निजी कारखाने जनदोवा, पश्चिमी बोकारो और लोदान कोयला खानों में स्थित हैं। दूसरा कारखाना नेशनल कोल डेवपलमेन्ट कारपोरेशन द्वारा जापानी शिल्पियों के द्वारा कारगली क्षेत्र में लगभग तैयार हो चुका है। ये कारखाना बोकारो और कारगली खानों का कोयला धोएगा। दुगड़ा, पथरडीह तथा मोजूडीह में भी एक एक कारखाना बनेगा।

ट्रानसिस्टर–२

(विशेषतायें तथा विभिन्न प्रकार)

शशि मोहन, जे० के० इन्स्टीट्यूट आफ एपलाईड फिजिक्स प्रयाग विश्वविद्यालय

ट्रानसिस्टर शब्द से सामान्यतः अभिप्राय जंकशन ट्रानसिस्टर से होता है। वास्तव में ट्रानसिस्टर शास्त्र का सारा अध्ययन इन्हीं ट्रानसिस्टर विशेष के सम्बन्ध में किया जाता है। इन ट्रानसिस्टरों में कुछ ऐसे गुण होते हैं जो इनको वाल्व पर प्राथमिकता देते हैं। वे इस प्रकार हैं :–

१. **अनन्त जीवन काल**–सैद्धांतिक रूप से ट्रानसिस्टर का जीवन काल अनन्त होना चाहिये क्योंकि इसमें कोई भी ऐसी वस्तु नहीं होती जो क्षीण हो। फिर भी अभी तक पर्याप्त अनुसन्धान द्वारा इसे सिद्ध नहीं किया जा सका है। साधारणतः ट्रानसिस्टर अधिक धारा प्रवाह, अथवा झटका लगने से बेकार हो जाते हैं। इस दिशा में उन्हें सुदृढ़ बनाने का प्रयास किया जा रहा है।

२. न्यून-शक्ति उपभोग—साधारण वाल्व में लगभग सम्पूर्ण शक्ति उपभोग उसके तापक तंतु में होता है। ट्रानसिस्टर में ऐसा कोई तंतु नहीं होता और इसी कारण ट्रानसिस्टर में शक्ति का उपभोग न्यून मात्रा में ही होता है। वास्तव में दी हुई शक्ति का ८५% के लगभग भाग कार्य रूप में उपलब्ध हो जाता है।

३. गर्म होने में समय न लगना–तापक तंतु न होने के कारण ट्रानसिस्टर को गर्म होने में समय नहीं लगता। साधारणतः यह वाल्व की कोई विशेष कमी नहीं प्रतीत होती परन्तु कभी कभी समय इतना महत्वपूर्ण होता है कि वाल्व द्वारा बनाये गये यंत्र जब तक कार्य योग्य हो पाएं तब तक सारा प्रेक्षण ही समाप्त हो सकता है। ऐसी दशा में ट्रानसिस्टर का यह गुण अत्यधिक महत्वपूर्ण हो जाता है।

४न्यू. न संकेत स्तर पर कार्य कुशलता–साधारणतः ट्रानसिस्टर संकेत के उन न्यून-स्तरों पर कार्य कर सकते हैं जिन पर वाल्व नहीं कर सकते। ट्रानसिस्टर का प्रयोग करके बनाये गये कुछ अभिलेखक-यंत्र १०० गज दूर की कानाफूसी को अविकृत रूप में अभिलेखित कर सकते हैं।

५. लघु-आकार--इनका आकार अभी तक बनाये गये किसी भी वाल्व की अपेक्षा बहुत छोटा होता है। सामान्य रूप से एक ट्रानसिस्टर का आयतन एक घन इंच का दसवां भाग होता है।

६. पूरक-संमिति प्रयोग–दो वाल्व को पुश-पुल रीति में चलाने के लिये हमें कला प्रतिलोयन हेतु एक ट्रानसफार्मर की आवश्यकता होती है। परन्तु दो एन-पी-एन तथा पी-एन-पी ट्रानसिस्टर को समानन्तर में जोड़ कर ट्रानसफार्मर के बिना ही यह कार्य सम्पन्न हो सकता है। इसको ट्रानसिस्टर का पूरक—संमिति प्रयोग कहते हैं।

इन सब विशेषताओं के होते हुए भी जंकशन ट्रानसिस्टरों में एक महान कमी है कि वह उच्च कम्पनांक पर कार्य कुशल नहीं हो सकते हैं। इस क्षेत्र में इनके अग्रज विन्दु-स्पर्शीय ट्रानसिस्टर इन से आगे हैं। जंकशन ट्रानसिस्टर को विशेष रीतियों से इस क्षेत्र में लाने का प्रयत्न किया जा रहा है और नये नये ट्रानसिस्टर प्रयोगशालाओं में बन कर कुछ तो बाजार तक पहुँच गये हैं और कुछ शीघ्र ही पहुँचने का प्रयास कर रहे हैं। इसी कारण ऐसे विशेष ट्रानसिस्टरों का वर्णन किया जाता है।

अ--विन्दु स्पेशेर्शीय ट्रानसिस्टर-ट्रानसिस्टर का निर्माण सर्वप्रथम हुआ था-१६४८ में जो पहला ट्रानसिस्टर बना था वह इसी प्रकार का था जैसा चित्र संख्या--१ में अंकित किया गया है। एन अथवा पी प्रकार की जर्मेनियम की एक सिल्ली पर चालक धातु के
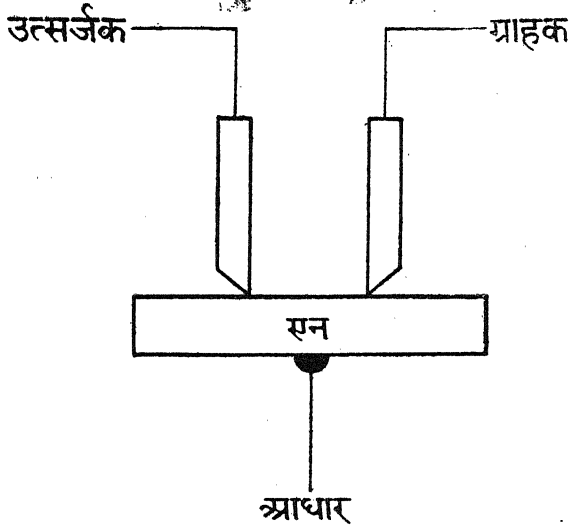
चित्र--१

सूक्ष्म तथा अति समीप, विन्दु स्पर्श होते हैं। इन विन्दु स्पर्शीय तारों में एक उत्सर्जक तथा दूसरा ग्राहक होता है। जर्मेनियम को सिल्ली से जोड़ कर निकाला गया तार आधार होता है। ट्रानसिस्टर का नाम करण आधार में प्रयोगिक जर्मेनियम के अनुसार होता है। यदि यह जर्मेनियम एन प्रकार की है तो ट्रानसिस्टर भी एन प्रकार का कहलाता है।

यह विन्दु स्पर्शीय ट्रानसिस्टर, जंकशन ट्रानसिस्टर से कई बातों में भिन्न होते हैं। उदाहरण स्वरूप, सम आधार प्रयोग में भी उनका धारा-प्रवर्धन गुणाँक, एक से अधिक होता है। जंकशन ट्रानसिस्टर में यह गुणांक इकाई से कम ही रहता है। उस गुणांक को ट्रानसिस्टर का अलफा (d) कहते हैं और अभी तक यह बात भली भांति समझी नहीं जा सकी है कि विन्दु स्पर्शीय ट्रानसिस्टर का d एक से अधिक किस प्रकार हो जाता है। इसके अतिरिक्त सम उत्सर्जीय प्रयोग में यदि निकास-परिपथ को लघु कर दिया जावे तो वह ट्रानसिस्टर प्रवर्धक, अस्थाई होकर दोलन करने लगते हैं। इनके इस गुण का महत्व स्विच के निर्माण में हैं जहां केवल एक ट्रानसिस्टर द्वारा ही द्वि-स्थाई स्विच की रचना सम्भव हो जाती है। इनमें जंकशन-धारिता नहीं होती और इसी कारण यह उच्च कम्पनाँकों पर भी क्रियाशील हो सकते हैं।

विन्दु स्पर्शीय ट्रानसिस्टर की शक्ति-प्रवर्धनशीलता, जंकशन ट्रानसिस्टर की अपेक्षा बहुत कम होती है और इसी कारण ऐसी विधियों की खोज की गई जिनके द्वारा जंकशन ट्रानसिस्टर की जंकशन धारिता को कम किया जा सके जिसमें यह ट्रानसिस्टर उच्च कम्पनांक तक कार्य कुशल हो सकें। जंकशन ट्रानसिस्टर के इन परिवर्तित स्वरूपों को भिन्न भिन्न नाम दिये गये जैसे ट्रानसिस्टर टेट्रोड तथा तल-प्रतिरोधक ट्रानसिस्टर।

ब--ट्रानसिस्टर ट्रेयेड-चित्र संख्या-२ में एक ट्रानसिस्टर टेट्रोड की रचना को अंकित किया गया है। इसकी बनावट मूलतः ट्रानसिस्टर ट्राइड के सामान होती है परन्तु इसमें दो आधार होते हैं। एक आधार तो
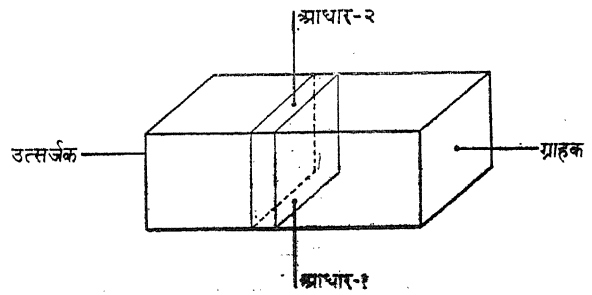
चित्र सं० २

अपना कार्य सामान रूप में करता है जबकि दूसरी आधार केवल जंकशन-धारिता को कम करता है। तीसरे आधार में उर्जा चलन नहीं होता है। वास्तव में यह द्वि-आधार ट्रानसिस्टर, द्वि आधार वाल्व--टेट्रोड के सामान कार्य करता है। टेट्रोड वाल्व के ही समान यह उच्च कम्पनांकों पर अधिक उपयोगी है। अभी कुछ ऐसे ट्रानसिस्टर टेट्रोड

का निर्माण हुआ है जिनके द्वारा केवल तीन ट्रानसिस्टर से ही एक समूचे रेडियो की रचना सम्भव है। यह ट्रानसिस्टर टेट्रोड सामान्यतः १०⁸ कम्पन्न प्रति सेकेन्ड पर २२ डी० बी० प्रवर्धन कर सकते हैं जबकि २ × १०⁸ कम्पनांक प्रति से० तक यह सैद्धांतिक रूप से कार्य कुशल हो सकते हैं।

स-तल प्रतिरोधकः--जंकशन ट्रानसिस्टर का दूसरा परिवर्तित स्वरूप है। तल-प्रतिरोधक ट्रानसिस्टर जिसकी रचना को चित्र संख्या-३ में अंकित किया गया है। एक भी जर्मेनियम के टुकड़े के दोनों ओर की सतहों पर धार द्वारा खुरदरा करके दो एन-जर्मेनियम के जोड़ बनाये जाते हैं। आधार की चौड़ाई को बहुत कम कर दिया जाता है। जिसके कारण जकशन-धारिता
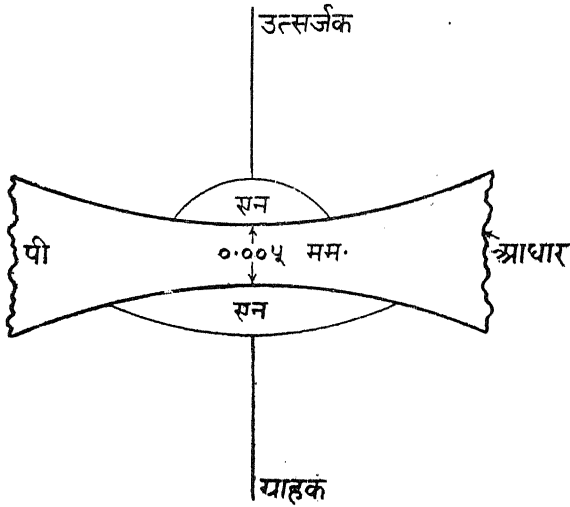
चित्र-३

भी घट जाती है। फलस्वरूप यह ट्रानसिस्टर उच्च कम्पनाओं के लिये उपयुक्त हैं। साधारणतः यह ट्रानसिस्टर ४ × १०७ कम्पना प्रति सेकिंड के कम्पनांक तक उपयुक्त रहते हैं। इन ट्रानसिस्टरों की शक्ति सम्वाद सामर्थ कम होती है। परन्तु इनका विशेष गुण यह है कि अत्याधिक निम्न ग्राही तथा उत्सर्जक विभवों पर भी यह स्विच का कार्य कर सकते हैं। इस कारण इनका महत्व ट्रानसिस्टर के स्विच-निर्माण में अत्याधिक है। फिल्कों कम्पनी द्वारा बनाये गये ऐसे ही ट्रानसिस्टर का प्रयोग अमरीका द्वारा भेजे गये कृतिम उपग्रह में किया जा रहा है।

उच्च कम्पनांक पर कार्य हेतु शौक्ले ने एक न्यूतन सिद्धान्त पर आधारित ट्रानसिस्टर की रचना की। इसका नाम है, क्षेत्र-प्रभावी ट्रानसिस्टर! इसकी रचना को चित्र संख्या-४ में अंकित किया गया है।

एक एन प्रकार की जर्मेनियम के मणिभ के दोनों सिरों अ, ब पर दो ओहमीय जोड़ लगाये जाते हैं तथा दोनों फलकों पर दो पी प्रकार के जोड़ द, स लगाये जाते हैं। द, स को ट्रानसिस्टर के द्वार कहते हैं। द्वारों को लघु परिपथ करके स्रोत से जोड़ दिया जाता है। अ, ब को ट्रानसिस्टर की नाली कहते हैं! तथा अ को स्रोत। नाली पर एक धनात्मक विभव लगाया जाता है जिससे बायीं से दांयी ओर विद्युत धारा प्रवाहित होती है। धारा प्रवाह के कारण मणिभ में दायी से बायी ओर
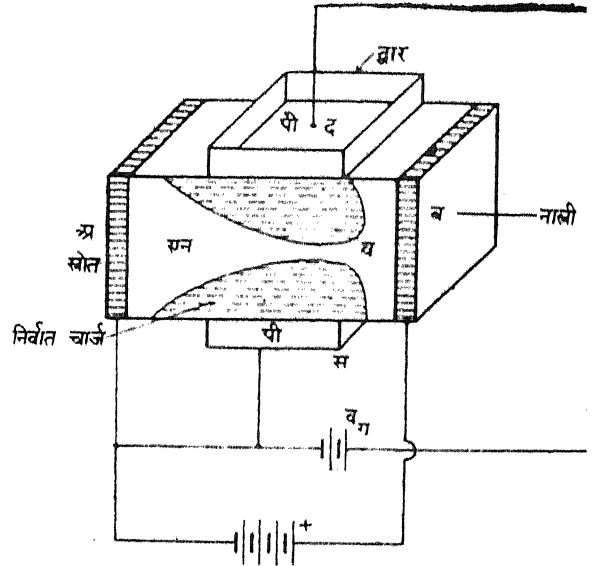
चित्र संख्या-४

विभव गिरता जाता है जिसके फल स्वरूप लघु परिपथ दोनों ही द्वारों पर समान विभव लग जाता है! इस कारण दोनों पी-एन जंकशन पृष्ठ चालक हो जाते हैं और निर्वात चार्ज की तह मणिभ के अन्दर चित्र अंकित रूप

में घुस जाती है। इस दशा में धारा प्रवाह केवल पच्चड़ रूपी भाग में होता है। इस भाग को सरणिकहते हैं। एक विशेष विभव पर दोनों निर्वात चार्ज एक दूसरे को चूम लेते हैं। और नाली की विद्युत धारा संतृप्त हो जाती है। इस विभव को स्पर्श-स्तब्ध विभव कहते हैं।

यदि द्वारों पर ऋणात्मक विभव वग लगा दिया जावे जो स्पर्श-स्तब्ध कम द्वार विभव पर हो जावेगा क्योंकि इस विभव का कुछ अंश वग प्रदान करता है। नाली की लब्धिणकों को, द्वार-विभव स्थिर राशि लेकर खींचा जाये तो वह पूर्णतः पेन्टोड वाल्व के समान होती है। इस कारण यह रीति शक्ति प्रवंधन कर सकती है। और यह ट्रानसिस्टर प्रबंधक का कार्य कर सकता है।

जंकशन ट्रानसिस्टर में धारा चलन मूलतः अल्पबाहकों के विसरण द्वारा होता हैं, परन्तु दोनों प्रकार के बाहक चलन में सहयोग देते हैं। इस कारण यह ट्रानसिस्टर द्वि-ध्रुवीय होते हैं। इसके विपरीत क्षेत्र प्रभावी ट्रानसिस्टर में विधुत्त चलन केवल बहु-बाहकों के विद्युत क्षेत्र में अपवहन द्वारा होता है। इस कारण यह एकांकी ध्रुवीय भी कहलाता है। अपवहन वेग, विसरण वेग से सर्वदा अधिक होता है और इस कारण विचरण-काल कम होता है जिसके फल-स्वरूप बहुत उच्च कम्पनांक पर भी यह निपुण-प्रबंधक बने रहते हैं। सैद्धांतिक रूप में $१०^९$ कम्पन प्र. से. के कम्पन्न तक यह कार्य निपुण रहने चाहिये परन्तु प्रयोगों द्वारा अभी ४×१०^७ कम्पन्न प्र० से० तक ही यह कार्य निपुण हो सके है।

द. पी. एन. आई. पी.–ट्रानसिस्टर ट्रारोड :

साधारणतः उच्च कम्पनांकों के लिये बनाये गये ट्रानसिस्टरों की शक्ति समबाहन क्षमता कम होती है कारण इनमें आधार को पतला कर दिया जाता है। परन्तु इस ट्रानसिस्टर में एन प्रकार के आधार के अतिरिक्त एक मोटी स्वाभाविक जर्मेनियम को रिक्ती करण तह भी लगा दी जाती है। इस प्रकार से ग्राहक की जंकशन-धारिता तथा आधार का प्रतिरोध दोनों ही कम हो जाते हैं। कार्य करते समय उत्सर्जक से छिद्र, आधार के पार विसरित होकर रिक्ती करण तह में पहुँच जाते है। यहां पर विद्युत क्षेत्र के कारण यह द्रुत-गति से ग्राहक जंकशन की ओर अपवहन करते है। ग्राहक जंकशान पृष्ठ चालक
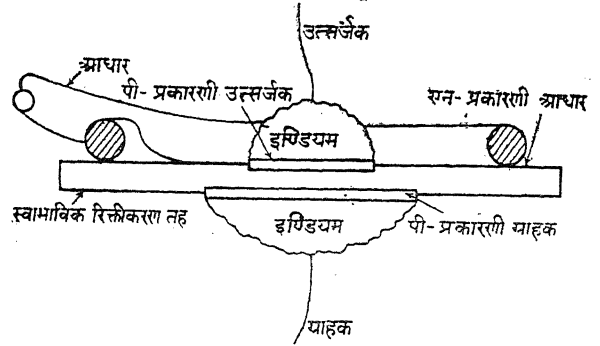
चित्र संख्या ५

होने के कारण इन्हें ग्रहण कर लेता है और ट्रानसिस्टर क्रिया शील होता है। अपवहन, तथा लघु जंकशन—धारिता के कारण यह ट्रानसिस्टर सैद्धांतिक रूप में ३×१०^९ कम्पन प्रति सेंकिड तक क्रिया शील होते हैं। इनकी शक्ति सम्बाहन क्षमता भी अधिक होती है। यह ट्रानसिस्टर तीव्र स्विच के कार्यों के लिये विशेष कर उपयुक्त है।

य-प्रकाश-ट्रानसिस्टर–जैसा कि पहिले लिखा जा चुका है, एक पृथककारी जर्मेनियम में बाहन कण संयोजक बंधों को प्रकाश किरणों द्वारा तोड़ कर उत्पन्न किया जा
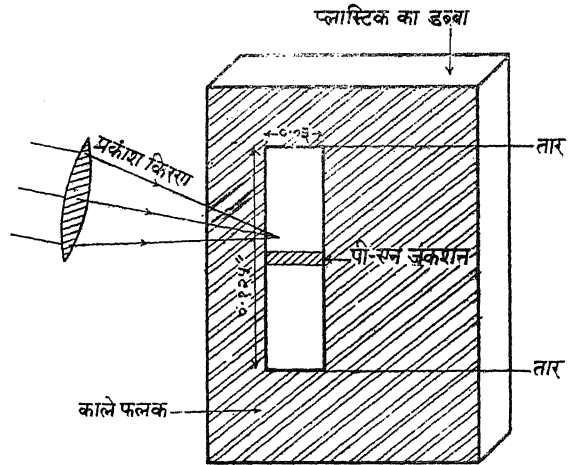
चित्र संख्या–६

सकता है। इस गुण को चित्र ६ में दिखाये गये प्रकाश-ट्रानसिस्टर की रचना में प्रयोग करते हैं। प्रकाश की एक सूक्ष्म किरण एक विशेष फलक से हो कर ट्रानसिस्टर पर गिरती है, जिस स्थान पर किरण गिरती हैं वहां पर वाहन-कण उत्पन्न होते हैं जो विसरण द्वारा जंकशन की ओर जाते है। जंकशन को पृष्ठ चालक रखते हैं जिससे वाहन कण जंकशन में लिप्त हो जाते हैं। और ट्रानसिस्टर में विद्युत धारा प्रवाह हो जाता है। इस प्रकार से यह ट्रानसिस्टर, प्रकाश-विद्युत सैल की भांति कार्यशील होता है।

पी० एन० जंकशन का प्रयोग :-

ऋजकारी, ट्रानसिस्टर तथा प्रकाश ट्रानसिस्टर के
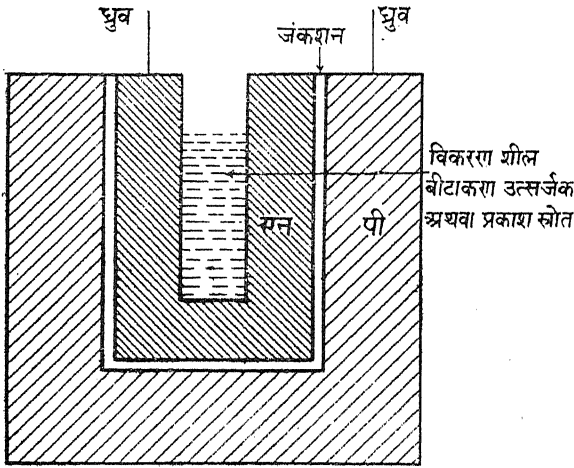
चित्र संख्या ७

अतिरिक्त, सूर्य-बेटरी तथा विकरणशील बेटरी के निर्माण में भी होता है। इसमें विकरणशील अथवा प्रकाश विधि से इलेक्ट्रान तथा छिद्र के जोड़े उत्पन्न किए जाते हैं यह जोड़े जंकशन से एक विसरण लम्बाई के अन्दर अन्दर ही पैदा किये जाते हैं। यह जोड़े विसरित होकर जंकशन के पार इस प्रकार चले आते हैं कि पी क्षेत्र में छिद्र रहते हैं और एन क्षेत्र में इलेक्ट्रान रहते हैं। इन चार्ज कणों के कारण पी तथा एन क्षेत्र में विभव उत्पन्न हो जाता है, जो जंकशन को अग्रचालक बना देता है। दोनों विभिन्न क्षेत्रों से जोड़ कर निकाले गये दो तार इस बैटरी के ध्रुव बन जाते हैं और किसी भी बाहरी प्रतिरोधक को शक्ति प्रदान कर सकती है। चित्र संख्या ७ में एक ऐसी बैटरी की रचना को अंकित किया गया है जिसमें फलतः एक विकरणशील बीटाकण उत्सर्जक का प्रयोग किया गया है। ऐसा केवल एक जंकशन ट्रानसिस्टर को चलाने के लिए ५ वर्ष तक विद्युत शक्ति प्रदान कर सकता है। सूर्य बैटरी के निर्माण में बीटा कण उत्सर्जक के स्थान पर सूर्य किरणों का प्रयोग करते हैं। जर्मेनियम अथवा सिलीकन की प्रत्येक विशिष्ट शोषण पट्ट में एक फोटान शोषित होकर एक इलेक्ट्रान-छिद्र जोड़े की रचना करता है जो बैटरी को कार्यशील करते हैं। यहां यह जान लेना आवश्यक है कि पी० एन० जंकशन के इस अन्तिम प्रयोग में तथा शक्ति ट्रानसिस्टर के निर्माण में जर्मेनियम से सिलीकन आगे है।
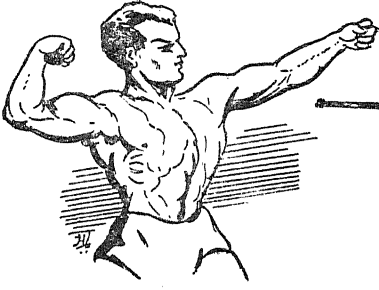
चिकित्सा के क्षेत्र में रूस-भारत सम्बन्धों के पुराने इतिहास का एक पृष्ठ

ले० वी० कोतकिन

रूस-भारत सम्बन्धों के शतियों पुराने इतिहास में भारत के जनगण के प्रति रूसी जनता की मैत्रीपूर्ण भावनाओं की निष्ठापूर्ण अभिव्यक्तियों के अनेक दृष्टान्त मिलते हैं।

१८६२ में भारत के शहरों और गांवों में हैजे की भयंकर महामारी फैली थी और सैकड़ों लोग मौत के ग्रास बन रहे थे। ऐसे कठिन समय में व्लादिमिर हाफकिन नामक एक नौजवान रूसी डाक्टर हैजे से पीड़ित लोगों की सहायता करने में जुट गया।

धार्मिक रुढ़ि और अन्धविश्वास पर काबू पाते हुए, टीके के दुश्मनों की धमकियों की परवाह नहीं करते हुए व्लादिमिर हाफकिन ने अपने ही जैसे लगन वाले रूसियों को एक छोटी सी टोली के साथ मिलकर अनेक लोगों की मौत के मुंह से निकाला।

१८६६ के अगस्त महीने में भारत में एक नया संकट उपस्थित हुआ। बम्बई में प्लेग की भयंकर महामारी फैल गई। अक्तूबर महीने में डाक्टर हाफकिन वहीं थे। उन्होंने बम्बई के सेंट्रल मेडिकल कालेज में फौरन ही जीवाणु सम्बन्धी प्रयोगशाला कायम की और प्लेग-निरोधक वैकसिन (टीका) तैयार करने लगे।

लेकिन वैकसिन तैयार करने से ही समस्या का पूरा समाधान नहीं हो जाता। लोगों के ऊपर उसका परीक्षण होना जरूरी है। १० जनवरी १८६७ को डाक्टर हाफकिन ने भारतीय जनता की सहायता करने की निष्ठापूर्ण इच्छा द्वारा अनुप्राणित हो, अपने शागिदों की आँख बचाकर अपने शरीर पर उस वैकसिन का प्रयोग किया।

वे दो दिनों तक जीवन और मृत्यु के बीच साँस की झीनी डोरी पर झूलते रहे। अन्ततः उनका परीक्षण सफल रहा और मृत्यु के ऊपर वैज्ञानिक की प्रतिभा ने विजय पाई।

इस रूसी के वीरतापूर्ण कार्य ने टीके के प्रति लोगों के अविश्वास को दूर कर दिया। बम्बई के जाने-माने लोगों ने जनसाधारण के समक्ष दृष्टान्त प्रस्तुत करने के उद्देश्य से सार्वजनिक रूप में टीके लगवाये।

अकेले बम्बई में हाफकिन ने १२,००० लोगों को टीके लगाये तथा अन्य नगरों और गाँवों में हजारों लोगों को टीके लगाये गये। टीका लगाये लोगों में टीका नहीं लगाये लोगों की तुलना में मृत्यु संख्या केवल १।१५ थी।

भारत के लोगों ने डाक्टर हाफकिन की स्मृति को प्रेमपूर्वक संजों कर रखा है। डाक्टर हाफकिन की प्रयोगशाला आज भारत के वृहत्तम जीवाणु विज्ञान केन्द्र के रूप में हाफकिन इंस्टीच्यूट के नाम से विख्यात है।

इस क्षेत्र में रूस और भारत के सम्बन्ध आज और भी व्यापक हैं। दोनों देशों के वैज्ञानिकों का सृजनात्मक सहयोग पूर्वापेक्षा घनिष्ठतर हो गया है तथा प्रतिनिधि-मण्डलों का उत्तरोत्तर अधिकाधिक आवागमन जारी है।

हर साल सभी क्षेत्रों के जिनमें चिकित्सा विज्ञान शामिल है अधिकाधिक भारतीय वैज्ञानिक सोवियत संघ जा रहे हैं। सोवियत वैज्ञानिक और डाक्टर भी अक्सर भारत आते रहते हैं।

कुछ साल पूर्व बलवन्त सिंह नामक एक विख्यात भारतीय डाक्टर सोवियत संघ पधारे।

भारत-सोवियत सांस्कृतिक--मन्डल के अध्यक्ष, विख्यात् शल्य-चिकित्सक डाक्टर ए० वी० बालिगा, जिन्होंने भारत-सोवियत मैत्री के विकास में महत् योगदान किया है सोवियत संघ के चिकित्सकों का बहुधा आतिथ्य-ग्रहण करते रहते हैं।

भारत में कई चिकित्सा-संस्थानों के निर्माण में सोवियत जनता द्वारा दी गई निःस्वार्थ सहायता दोनों देशों की निष्ठापूर्ण मैत्री का एक और दृष्टान्त है।

सोवियत विशेषज्ञों ने दिल्ली में बच्चों के अस्पताल के निर्माण में महत् योगदान किया है जो इस समय शिशु-चिकित्सकों का प्रशिक्षण-केन्द्र है। इसके साथ-साथ उन्होंने शिशु स्वास्थ्य रक्षा-विभाग और शरीर निदान के व्यवहारिक वैज्ञानिक केन्द्र खोलने की तैयारियों में योगदान किया है।

सोवियत संघ ने इन संस्थानों के लिए खेप के खेप चिकित्सा एवं औषधि सम्बन्धी साज-सामान भेजे हैं।

रेडियो एलेक्ट्रौनिक के सहारे हृदय की परीक्षा

गणना इंजीनियरिंग के मास्को शोध-संस्थान के इंजीनियरों ने शरीर विज्ञानविदों और क्लिनिकल डाक्टरों (रोगी को देख कर निदान करने वाले) की सहायता से हृदय की गति का अध्ययन करने के लिए दो इलेक्ट्रौनिक यंत्र तैयार किये हैं। ये अद्भुत यंत्र व्यवहार में सफल सिद्ध हुए हैं।

उनमें एक यंत्र जो कार्डियोसाईक्लोग्राफ नाम से ख्यात है साधारण इलेक्ट्रोकार्डियोग्राफ की तुलना में बहुत अधिक उपयोगी है यह तथ्य कि इलेक्ट्रौनिक गणना के सिद्धान्त इसकी डिजाइन बनाने में लागू किये गये हैं यह बताता है कि इलेक्ट्रोकार्डियोग्राफ जिस क्रम से और जिस रूप में लिये जाते हैं उन में परिवर्तन करना सम्भव है। यह यन्त्र हृदय की धड़कन दर्ज करता है लेकिन अविच्छिन्न सीधी रेखा के रूप में नहीं वरन् वक्र रेखा के रूप में।

कार्डियोसिलोग्राफ कैथोड–किरण-नली और ओसीलोग्राफ से लैस है जिनके परदों पर हृदय की धड़कनों के इकहरे चक्कर एक के नीचे एक दिखाये गये है। ओसीलोग्राफ के अन्दर किरणों की विच्युतियां कागज पर दर्ज हो जाती हैं। कुल मिला कर इलेक्ट्रोकार्डियोग्राफ की लम्बाई केवल कुछ दर्जन सेन्टीमीटर है। धड़कनों को दर्ज करने की यह पद्धति अत्यन्त सुविधाजनक है।

दूसरा यन्त्र--कृत्रिम हृदय बिजली के द्वारा हृदय धड़कन पैदा करता है। इस यन्त्र के विभिन्न भाग इस तरह एक दूसरे से जुड़े हैं कि हृदय के विभिन्न तलों से क्रमिक रूप में स्पन्दन-धारा प्रवाहित होती है। इसके बाद इलेक्ट्रोकार्डिग्राम के रूप में ये स्पन्दन धारायें दर्ज हो जाती हैं।

इलेक्ट्रौनिक डाक्टर

आगामी सात-दस वर्षों के अन्दर शल्य-चिकित्सा की वर्तमान पद्धति में आमूल परिवर्तन हो जायेगा। शल्य-क्रिया में न तो एक बून्द रक्त गिरेगा और न कष्ट का अनुभव होगा। अतिध्वनि-यन्त्र द्वारा शल्यक्रिया की जाएगी। शल्यक्रिया विद्युत् की सी तीव्रगति से होगी, शल्यक्रिया के समय स्थान विशेष का खून जम जाएगा और स्नायुमण्डल सुन्न पड़ जाएगा। विशेष प्रकार के अतिध्वनियन्त्र पेट और गुर्दों के अन्दर विद्यमान पत्थरियों को पीस डालेंगे और उन्हें रेत में परिणत कर देंगे। भविष्य की शल्य-चिकित्सा निर्विवाद रूप से रासायनिक शल्य-चिकित्सा है। शल्यक्रियाकक्ष से सुई, आदि मौजूदा प्रसाधन विदा हो जायेंगे। एक विशेष प्रकार का सरेस मानवी अस्थियों और रग-रेशों को बान्धेगा। इस प्रकार का सरेस तैयार किया जा चुका है।

लेकिन भविष्य की क्लिनिक का सर्वाधिक उल्लेखनीय पदार्थ इलेक्ट्रौनिक डाक्टर होगा जो किसी भी बीमारी का निदान तेजी से और ठीक ठीक करेगा। विद्युत् गणक यन्त्र मानव प्राणी के स्वास्थ्य सम्बन्धी विवरण संकेतात्मक भाषा में प्राप्त करेगा। इस यांत्रिक डाक्टर के प्रायौगिक नमूनों का सोवियत संघ में परीक्षण हो चुका है।

वार्षिक रिपोर्ट

अन्य वर्षों की भांति आय की दृष्टि से यह वर्ष अच्छा नहीं रहा। पुस्तकों से आय कम हो गई। शिक्षा प्रसार विभाग से हमें विज्ञान के लगभग १७५ ग्राहक प्रति वर्ष मिल जाते थे जिनसे ७००) वार्षिक के लगभग आय हो जाया करती थी। इस वर्ष शिक्षा प्रसार विभाग से ग्राहक न मिलने के कारण विज्ञान द्वारा भी आय कम हो गई। भारत सरकार से भवन निर्माण के हेतु हमें प्रति वर्ष कुछ धनराशि मिल जाया करती थी किन्तु इस वर्ष सरकार से प्रकाशन अथवा भवन निर्माण के लिये कोई अनुदान न मिल सका। फलतः भवन निर्माण कार्य स्थगित कर देना पड़ा और किसी नवीन पुस्तक के प्रकाशन का कार्य भी न लिया जा सका। प्रदेशीय सरकार से इस वर्ष परिषद को २०००) अनावर्तक अनुदान मिला है जिसके लिए हम सरकार के कृतज्ञ हैं।

फिर भी यह वर्ष परिषद् के इतिहास में एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इस वर्ष दो ऐसे विशेष कार्य हुए हैं जो उल्लेखनीय हैं :—

१. देश के इतिहास में यह प्रथम अवसर था जब २३ जनवरी, १९५९ को इण्डियन साईन्स कांग्रेस के अधिवेशन में विज्ञान परिषद् के तत्वावधान में दिल्ली विश्वविद्यालय में विज्ञान के विभिन्न विषयों के विद्वानों ने हिन्दी में वैज्ञानिक अनुसन्धान निबन्ध पढ़े और उन पर विचार विमर्श किया। यह घटना ऐतिहासिक महत्व की है। ऐसी गोष्ठियों की आयोजना अब प्रतिवर्ष होती रहेगी और कुछ वर्षों के पश्चात् प्रत्येक विषय के लिये अलग अलग गोष्ठियों की योजना सम्भव हो सकेगी।

२--परिषद् के आजीवन सभ्य और अत्यन्त पुराने कार्यकर्ता स्वामी हरिशरणानन्द जी ने परिषद् को ५,०००) दान दिये। इस धन में से हिन्दी भाषा में लिखी किसी वैज्ञानिक विषय की सर्वश्रेष्ठ पुस्तक के लेखक को २,०००) का 'स्वामी हरिशरणानन्द विज्ञान पुरस्कार' दिया जावेगा। इसके अतिरिक्त लेखक को एक 'स्वामी हरिशरणानन्द विज्ञान स्वर्ण पदक' भी भेंट किया जावेगा। शेष धन से पुरस्कार सम्बन्धी व्यय तथा विज्ञान परिषद् के प्रकाशनों के प्रचार का व्यय का प्रबन्ध किया जायेगा। स्वामी जी की इच्छा इस पुरस्कार और पदक के हेतु धन के स्थायी प्रबन्ध कर देने की है। इस दान के द्वारा स्वामी जी ने वैज्ञानिक जगत का बड़ा उपकार किया है। यह पुरस्कार हिन्दी के लब्ध प्रतिष्ठ वैज्ञानिक लेखकों को नवीन विषयों पर पुस्तकें लिखने की प्रेरणा प्रदान करेगा और इस प्रकार उच्च कोटि के वैज्ञानिक साहित्य के सृजन में सहायक होगा। साथ ही विज्ञान परिषद् के प्रकाशनों के प्रचार की सुविधा प्राप्त हो जाने से परिषद् का आर्थिक पहलू भी दृढ़ होगा और परिषद् अपनी पत्रिकाओं के स्तर को उठाने और नवीन प्रकाशनों को लेने के हेतु अधिक दृढ़ संकल्प हो सकेगी।

मासिक पत्र विज्ञान का स्तर कुछ उठा है। फिर भी अभी अधिक प्रयत्न करने की आवश्यकता है। सबसे बड़ी कठिनाई अर्थाभाव की है। विज्ञान का "गेट अप" सुन्दर नहीं है। इसके अतिरिक्त पत्र के प्रचार के हेतु और विज्ञापन प्राप्त करने के हेतु कोई ठोस कार्य नहीं किया जा सकता है। यदि पर्याप्त प्रचार हो तो ग्राहक संख्या कई गुनी बढ़ सकती है। ग्राहक संख्या की वृद्धि से विज्ञापन प्राप्त होने की भी सुविधा हो सकती हैं। इस प्रकार मासिक पत्र विज्ञान द्वारा आय में वृद्धि सम्भव है। डा० देवेन्द्र शर्मा और डा० सत्यनारायण प्रसाद ने मासिक पत्र विज्ञान के स्तर को ऊँचा उठाने के लिये विशेष प्रयत्न किया है। इसके लिए परिषद उनकी आभारी है।

विज्ञान परिषद अनुसन्धान पत्रिका की प्रगति अच्छी रही है। पहले अनुसन्धान लेख मिलने में बड़ी असुविधा रहती थी अब केवल अनुरोध मात्र से अच्छे लेख प्रकाशनार्थ मिल जाते हैं। डा० सत्य प्रकाश और डा० शिव

गोपाल मिश्र ने अनुसन्धान पत्रिका को जीवित रखने और उसे आगे बढ़ाने के लिए स्तुत्य कार्य किया है। पत्रिका का स्तर भी ऊँचा उठा है। साइंटिफिक रिसर्च ग्रांट कमेटी ने इस वर्ष के लिए फिर अनुसन्धान पत्रिका को ५,०००) का अनुदान दिया है। इस अनुदान और डा० सत्य प्रकाश, डा० शिव गोपाल मिश्र तथा परिषद के अन्य कार्यकर्त्ताओं के सहयोग से पत्रिका अच्छी प्रगति कर रही है। हमें आशा है कि साइन्टिफिक रिसर्च कमेटी पत्रिका के प्रति ऐसा ही उदारता पूर्ण दृष्टिकोण बनाये रखेगी। फिर भी अनुसन्धान पत्रिका के उचित संचालन के लिये यह आवश्यक है कि स्थायी आय का कुछ प्रबन्ध हो जाये। भारत सरकार और प्रदेशीय सरकार से परिषद् अनुरोध करती है कि उचित आवर्ती अनुदान दे कर पत्रिका को आगे बढ़ाने में परिषद् की सहायता करें।

इस वर्ष निम्नलिखित सज्जन परिषद् के सभ्य बने :—

१. विपिन बिहारी श्रीवास्तव	इलाहाबाद
२. डा० प्रेम नाथ शर्मा	लखनऊ
३. श्री आर. सी. कर्णाटक	जमशेदपुर
४. श्री चन्द्रकांत कर्णेकर	बम्बई

कार्यकारिणी समिति ने १९५९-६० के लिए निम्न सभ्यों को चुना :—

सभापति	श्री केशव देव मालवीय
कार्य वाहक सभापति	श्री हीरा लाल खन्ना
उप सभापति	डा० सत्य प्रकाश
”	स्वामी हरिशरणानन्द
प्रधान मन्त्री	डा० रमेश चन्द्र कपूर
मन्त्री	डा० रामदास तिवारी
”	श्री नारायण सिंह परिहार
कोषाध्यक्ष	डा० धर्मेन्द्र नाथ वर्मा
सम्पादक विज्ञान	डा० शिवगोपाल मिश्र
सम्पादक अनुसंधान-पत्रिका	डा० सत्य प्रकाश
स्थानीय अन्तरंगी	डा० प्यारे लाल श्रीवास्तव
”	डा० रामकुमार सक्सेना
”	डा० संत प्रसाद टंडन
”	डा० बाबू राम सक्सेना
बाहरी अंतरंगी	डा० ब्रजमोहन, काशी विश्वविद्यालय
”	डा० राम चरण मेहरोत्रा, गोरखपुर विश्वविद्यालय
”	डा० गोरख प्रसाद, काशी
”	श्री हरद्वारी लाल टंडन, प्रिन्सिपल जी. एन. के. इंटर कालेज, कानपुर
आय-व्यय परीक्षक	श्री कन्हैया लाल गोविल

इस वर्ष परिषद् के आजीवन सभ्यों की संख्या ६८, सभ्यों की संख्या १०५ और ग्राहकों की संख्या ३५० रही।

अर्थाभाव के कारण भवन निर्माण का कार्य कई बार रोक देना पड़ा है। ६ माह से काम बिल्कुल स्थगित कर देना पड़ा है। सम्पूर्ण भवन के निर्माण के लिये लगभग १॥ लाख रुपये की आवश्यकता है। भारत सरकार, प्रदेशीय सरकार, परिषद् के सभ्यों तथा अन्य गण्य-मान्य व्यक्तियों से हमारी प्रार्थना है कि वे उचित आर्थिक सहायता देकर भवन निर्माण कार्य में सहायता दें।

पुस्तकों की बिक्री से हमें जो धन मिलता है उसका अधिकांश भाग मासिक पत्र "विज्ञान" के प्रकाशनार्थ व्यय हो जाता है। इस लिये पुरानी पुस्तकों के नये संस्करण निकालने और नई पुस्तकों के प्रकाशन का कार्य स्वतंत्र रूप से नहीं चल पाता। जब सरकार से अनुदान मिल जाता है या जनता से अच्छी आर्थिक सहायता प्राप्त हो जाती है तो कोई पुस्तक प्रकाशित हो जाती है।

जब तक विज्ञान आत्म निर्भर नहीं बनता यह असुविधा रहेगी ही। परिषद् के प्रकाशन कार्य को आगे बढ़ाने के लिये हम प्रदेशीय सरकार से अनुरोध करते हैं कि वह विज्ञान के लिये दिये जाने वाले २,००० के आवर्ती अनुदान को ५,०००) कर दे जिससे परिषद् का प्रकाशन कार्य उचित रूप से चल सके।

खारे जल को मीठे जल में बदलने के लिए सूर्य शक्ति का उपयोग

मीठे जल का महत्व क्या होता है, यह जरा उस मनुष्य से पूछिए जो विशाल जलराशि के बीच भी प्यास बुझाने वाली एक-एक बूंद के लिए तरस जाता है। यही नहीं कि दुर्भाग्यवश दुर्घटना का शिकार होने वाले नाविकों और यात्रियों को ही मीठे पानी के लिए तरसना पड़ता हो, बल्कि संसार में ऐसे बहुत से क्षेत्र हैं, जहाँ रहने वालों को जी भर मीठा पानी पीने को नहीं मिलता। उदाहरणार्थ अमेरिका को ही ले लीजिए। आधुनिक विज्ञान और प्रगति की इस नई दुनिया में भी ऐसे कुछ क्षेत्र आज भी विद्यमान हैं, जहाँ मीठे पानी की अत्यधिक कमी है। अमेरिकी सरकार और अमेरिकी गैर-सरकारी उद्योग आजकल इस समस्या को हल करने में अत्यधिक दिलचस्पी ले रहे हैं और इस बात की सम्भावना है कि शीघ्र ही कम खर्च पर मीठा पानी प्राप्त करने की समस्या का कोई न कोई प्रभावशाली समाधान खोज निकाला जाएगा। अमेरिकी वैज्ञानिक इस सम्बन्ध मे निरन्तर अनुसन्धान कर रहे हैं। अब तक खारे पानी को मीठे पानी में बदलने की जो विधियाँ ज्ञात हैं, वह इतनी व्ययसाध्य हैं कि प्रभावशाली ढंग से उन का उपयोग सम्भव नहीं।

अभी हाल में यह समाचार प्राप्त हुआ है कि अब अमेरिकी वैज्ञानिकों ने एक ऐसा उपाय खोज निकालने में करीब-करीब सफलता प्राप्त कर ली है, जो कम खर्चीला और अधिक व्यावहारिक और उपयोगी सिद्ध होगा। इस विधि के अन्तर्गत सूर्य शक्ति की सहायता से खारे पानी को मीठे पानी में बदला जा सकेगा।

यह तो सब को ज्ञात ही है कि खारे पानी को पीने योग्य जल में बदलने के लिए केवल यह आवश्यक है कि उस में घुला नमक का अंश निकल जाए। इस कार्य के लिए एक ऐसी 'शक्ति' की आवश्यकता है, जो आसानी से यह कार्य कर सके। हमें शक्ति के जो स्रोत सुलभ हैं, उनमें सूर्य शक्ति सब से अधिक सस्ती है, यह सभी लोग मानते हैं। प्रतिदिन सूर्य की रश्मियाँ लाखों किलोवाट शक्ति अपने संग पृथ्वी पर लाती हैं। लेकिन यह शक्ति इतनी बिखरी होती है कि इसको एकत्र करने वाले यंत्र के निर्माण पर काफी खर्च बैठता है।

अमेरिकी वैज्ञानिकों का कथन है कि सूर्य शक्ति का संग्रह करने के लिए अमेरिकी गृह-विभाग द्वारा जिस यंत्र का विकास किया जा रहा है, उससे यह भलीभाँति सिद्ध हो जाएगा कि कम से कम उष्ण कटिबन्धीय क्षेत्र में

खारे पानी को मीठे पानी में बदलने वाली ऐसी छन्नियों का निर्माण किया जा सकेगा, जो सूर्य शक्ति से अपना कार्य करेंगी। इन छन्नियों के निर्माण और संचालन पर खर्च भी बहुत कम बैठेगा।

यद्यपि इस यंत्र का पूर्ण विवरण देना अभी सम्भव नहीं है परन्तु यह कुछ इस प्रकार कार्य करेगा।

एक छोटे से टैंक में खारा पानी भरा होगा और टैंक के ऊपर ८ फुट चौड़ा कांच का ढक्कन इस प्रकार ढालू रूप में लगा होगा कि कांच के अन्दरूनी भाग पर एकत्र होने वाले जल की बूंदें टैंक के अन्दर न गिर कर उस से जुड़ी हुई नलियों में बह कर चली जाएँ। इस टैंक में एक ओर से खारे पानी के अन्दर आने की तथा कांच पर एकत्र होने वाले जलकणों को पानी की शक्ल में बाहर ले जाने की व्यवस्था है। टैंक में खारे पानी की गहराई १२ इंच से अधिक नहीं होने पाती। कांच को भेदती हुई सूर्य की किरणें इस खारे जल पर पड़ती हैं और इन किरणों से निसृत ताप से जल गर्म होने लगता है।

गर्म जल भाप के रूप में परिवर्तित होकर ऊपर उठता है। इस प्रक्रिया के फलस्वरूप काँच के अन्दरूनी भाग में पहुँचने वाली भाप जल-कणों के रूप में परिवर्तित हो जाती है। यह जल-कण ढालू काँच पर लुढ़कते हुए काँच से जुड़ी नालियों में पहुंच जाते हैं। इस यन्त्र में प्रवेश होने वाले खारे जल का आधा भाग इस प्रक्रिया द्वारा मीठे जल में बदला जा सकता है। शेष जल, जिस में नमक की मात्रा पहले से दूनी हो जाती है, पम्प द्वारा बाहर निकाल दिया जाता है। यह नया यन्त्र २५०० वर्ग फुट स्थान घेरेगा और प्रतिदिन लगभग ३००गैलन मीठा जल तैयार कर सकेगा। अमेरिका में स्थान की तङ्गी होने के कारण यह यन्त्र खर्चीला हो सकता है, परन्तु अन्य समुद्री क्षेत्रों में, जहां भूमि की कोई कमी नहीं, यह बहुत उपयोगी और सस्ता सिद्ध होगा।

इस यन्त्र की एक सब से अधिक उल्लेखनीय बात यह है कि यह २४ घण्टे चालू रहेगा। दिन में टैंक और उस में मौजूद जल बराबर गर्म होता रहेगा और भाप बन बन कर ऊपर जाता रहेगा। शाम होने पर कांच की सतह जल्दी ठन्डी हो जाएगी, जबकि टैंक और उसका जल फिर भी गरम रहेगा। इस लिए धीमी गति से खारे पानी से मीठा जल तैयार होने की प्रक्रिया फिर भी जारी रहेगी।

अमेरिका मीठे पानी की कमी को दूर करने के सम्बन्ध में कुछ अन्य उपाय भी खोज रहा है और अणु-शक्ति की सहायता से खारे जल को मीठे जल में बदलने की सम्भावना पर गम्भीरतापूर्वक विचार किया जा रहा है। इस दिशा में अनुसन्धान बड़ी तेजी से हो रहा है और अमेरिकी वैज्ञानिकों को आशा है कि ५ वर्षों के अन्दर यह समस्या पूरी तरह हल कर ली जाएगी।

* * *

कम लागत पर अणुशक्ति के उत्पादन की दिशा में प्रगति

शिपिंग पोर्ट (पैन्सिल्वेनिया) और मोर्गनटाउन (पश्चिमी वर्जिनिया) के दो प्रमुख अणुशक्ति-कारखानों में अत्यधिक तापमान वाली भाप का उत्पादन यह प्रमाणित करता है कि अमेरिकी वैज्ञानिक अणुशक्ति के शान्तिपूर्ण उपयोग के सम्बन्ध में एक अन्य महत्वपूर्ण बाधा अर्थात् ताप उत्पन्न करने की न्यून क्षमता और ऊँची लागत, को दूर करने की दिशा में काफी आगे बढ़ चुके हैं।

अमेरिकी अणुशक्ति कमीशन के आणविक भट्टी-विभाग के श्री यू० एम० स्टेवलर ने अमेरिकी अणु-परिषद के वार्षिक अधिवेशन में उपर्युक्त दोनों कारखानों में अत्यधिक तापमान वाली भाप के उत्पादन सम्बन्धी अनुभवों का विवरण प्रस्तुत करते हुए अभी हाल में बताया कि एक ऐसे कारखाने की स्थापना की योजना भी विचाराधीन है, जिसमें आणविक ताप द्वारा समुद्र के खारे पानी को पीने योग्य ताजे पानी में परिणत किया जा सकेगा। इस कारखाने की रूपरेखा के सम्बन्ध में संभवतः इसी महीने निर्णय ले लिया जायेगा। कारखाने की स्थापना के लिए अभी स्थान का चुनाव नहीं हो सका है।

श्री स्टेवलर ने बताया कि इसमें एक ऐसी आणविक भट्टी लगायी जायेगी जो प्रयोगात्मक आधार पर न्यून

तापमान की प्रक्रिया द्वारा गर्मी उत्पन्न करेगी। इसकी स्थापना का उद्देश्य यह प्रदर्शित करना है कि कम लागत पर न्यूनतर तापमान वाली भाप उत्पन्न करने की दिशा में प्राविधिक दृष्टि से क्या किया जा सकता है।

उन्होंने बताया कि अणुशक्ति द्वारा उत्पन्न अत्यधिक ताप का उपयोग करने के लिए, सम्भवतः विकसित किस्म की एक अन्य आणविक भट्टी का भी निर्माण किया जायेगा। प्वेर्टोरिको के 'वाटर रिसोर्सेज एथारिटी' के सहयोग से इस प्रकार की आणविक भट्टी की स्थापना के सिलसिले में प्रारम्भिक कार्यवाही चालू हो चुकी है।

श्री स्टेवलर ने विश्वास के साथ कहा कि न्यून लागत पर अणुशक्ति के उत्पादन की दिशा में वास्तविक प्रगति हो रही है।

उन्होंने बताया कि सोडियम आणविक भट्टी द्वारा प्रयोग के रूप में १००० अंश (फारेन हाइट) तापमान वाली भाप उत्पन्न करने में सफलता प्राप्त हो चुकी है। अभी तक आणविक भट्टी प्रणाली द्वारा इतने अधिक तापमान की भाप उत्पन्न नही की जा सकी थी। यह सफलता २२ मई को मिली, जब कि आणविक भट्टी ६.६ थर्मल मेगावाट पर क्रियाशील थी।

* * *

रेल उद्योग में 'गामा किरण' का उपयोग

अणु से उत्पन्न 'गामा किरणें' अब अमेरिका के रेल-सड़क उद्योग को बड़ी सहायता पहुंचा रही हैं। न्यूयार्क के केन्द्रीय रेल-सड़क अनुसन्धान केन्द्र के अधिकारियों ने सूचित किया वहां 'गामा किरण' सम्बन्धी एक ऐसा उपकरण तैयार किया गया है, जिसकी सहायता से ११,००० मील लम्बी रेलवे लाइन के लकड़ी के जोड़ों की दशा का ठीक-ठीक निर्धारण किया जा सकेगा। इसके पहले इस सम्बन्ध में केवल अनुमान से ही काम चलाना पड़ता था। इस उपकरण को संचालित करने के लिए एक व्यक्ति की आवश्यकता होती है। यह उपकरण लकड़ी के जोड़ों में 'गामा किरण' पहुंचा देता है। कमजोर और छिद्रमय जोड़ों की अपेक्षा मजबूत जोड़ में अधिक 'गामा किरणें' प्रतिबिम्बित होती हैं। इस प्रक्रिया का परिणाम उपकरण में अङ्कित हो जाता है। उपकरण से निकलने वाली 'गामा किरण' इतनी शक्तिहीन होती हैं कि उससे किसी तरह का खतरा उत्पन्न नहीं हो सकता।

* * *

प्लास्टिक की रक्तवाहक धमनियां

ह्यूस्टन (टेक्सास) के 'बेलर कालेज ऑव मेडिसिन्स के चीर-फाड़ विभाग के अध्यक्ष डा० माइकेल डी० डेवाकी ने अभी हाल में अमेरिकन मेडिकल एसोसियेशन के अधिवेशन में भाषण करते हुए बताया कि प्लास्टिक की ऐसी नयी धमनियाँ तैयार की गयी हैं, जिन की सहायता से धमनियों में अचानक रक्त का प्रवाह रुक जाने से ५ पीड़ित व्यक्तियों में से दो की प्राण-रक्षा की जा सकती है। उन्होंने कहा कि इस प्रकार की ४० प्रतिशत दुर्घटनाएं उस समय होती हैं, जब ऊपरी वक्षस्थल और गले की धमनियां अचानक आपस में उलझ कर बन्ध जाती हैं। इस का परिणाम यह होता है कि मस्तिष्क के छिद्रों में प्राणमय रक्त का प्रवाह नहीं हो पाता। चीर-फाड़ के डाक्टर इन धमनियों का पता लगा कर उन्हें ठीक कर सकते हैं। उन्होंने बताया कि इस प्रकार ६ रोगियों के मामले में रोग प्रारम्भ होने के ४ दिन के भीतर प्लास्टिक की धमनियां प्रयुक्त की गयी थीं। वे सभी पूर्णतया स्वस्थ हो गये। अनुसन्धान से यह भी पता चला है कि मनुष्य के मस्तिष्क में सामान्य धारणा के विपरीत रक्त के अभाव को सहन करने की अधिक क्षमता होती है।

* * *

दक्षिणी ध्रुव-प्रदेश में अमेरिकी प्रयोगशाला

यहाँ अमेरिका द्वारा निर्मित एक नवीन प्रयोगशाला पूर्ण रूप से संचालित है। यह प्रयोगशाला दक्षिणी ध्रुव-प्रदेश में जीव-विज्ञान सम्बन्धी अनुसन्धान के लिए सभी प्रकार की सुविधाओं से सम्पन्न है। इस समय उस में श्वास सम्बन्धी छूत रोगों के विषय में अनुसन्धान हो रहा है। दो अमेरिकी वैज्ञानिक प्रयोगशाला में इएटोमोलौजी, माइक्रोबायोलौजी और मेरीन टैक्सोनोमी सम्बन्धी अनुसन्धान कर रहे हैं।

इस प्रयोगशाला का निर्माण 'अमेरिका के ध्रुव-प्रदेशीय संस्थान' को राष्ट्रीय विज्ञान प्रतिष्ठान द्वारा दिये गये अनुदान की सहायता से हुआ है।

प्रयोगशाला में एक अन्य कार्यक्रम के अन्तर्गत इस बर्फीले प्रदेश में पशुओं और पेड़-पौदों के बीच सम्बन्ध को निर्धारित करने का प्रयत्न हो रहा है। इस के अलावा ध्रुव प्रदेशीय मछलियों के सम्बन्ध में भी खोज हो रही है।

* * *

प्लास्टिकों के बने मकान

सोवियत संघ में मकान बनाने में विभिन्न प्रकार के प्लास्टिकों का अधिकाधिक उपयोग किया जा रहा है। मजबूत और हल्का होने के कारण प्लास्टिक अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हो रहे हैं।

मास्को के इजैमलोवो पार्क इलाके में प्लास्टिक के चालीस फ्लेटों की पञ्चमञ्जिली इमारत का निर्माण हो रहा है। इसके बाद और भी अनेक प्लास्टिक की इमारतें योजना के अनुसार खड़ी की जायेंगी।

* * *

तीन सौ वर्षों में एक सेकण्ड का अन्तर

आणविक जेनरेटर चालित विद्युत् घड़ी

सोवियत विज्ञान अकादमी के भौतिक विज्ञान-संस्थान में आणविक जेनरेटर-चालित एक ऐसी विद्युत्घड़ी बनाई गई है जिसके समय में तीन सौ वर्षों में एक सेकण्ड का अन्तर होगा।

नये जेनरेटर में रेडियो-तरङ्ग नौसादर और चूने से बने गैस के अणु छोड़ते हैं। उनकी दोलन क्रियायों में एक प्रकार की स्थिरता रहती है क्योंकि सामान्य वैद्युत् जेनरेटरों के अंगभूत अणु न तो घिसते हैं और न जीर्ण होते हैं।

आणविक जेनरेटरों का प्रयोग बिल्कुल ठीक-ठीक समय बताने के लिए, अधिकाधिक यथातथ्यतापूर्ण रेडियो-नेवीगेशन पद्धतियों, उन्नत ढङ्ग के वार्त्ता-प्रसार तथा भौतिक एवं प्राविधिक मूल्यों के माप के लिए आधार के रूप में किया जाएगा।

लेखकों से निवेदन

१—रचना कागज के एक ही ओर स्वच्छ अक्षरों में पर्याप्त पार्श्व एवम् पंक्तियों के बीच में अन्तर देकर लिखी होनी चाहिये। यदि टाइप की हुई हो तो और भी अच्छा है।

२—चित्रों से सज्जित गवेषणापूर्ण लेखों को "विज्ञान" में प्राथमिकता दी जावेगी।

३—प्रेषित रचना की प्रतिलिपि अपने पास रक्खें। आवश्यक डाक टिकट प्राप्त होने पर ही अस्वीकृत रचना लौटाई जावेगी।

४—स्वीकृति की सूचना यथासम्भव शीघ्र ही दी जावेगी। किसी भी लेख में संशोधन, संवर्धन अथवा परिवर्तन करने का अधिकार सम्पादक को होगा।

५—"विज्ञान" में प्रकाशित लेखों पर "विज्ञान" का पूर्ण अधिकार होगा।

६—समालोचनार्थ पुस्तकों की दो-दो प्रतियां भेजी जानी चाहिये।

नीचे लिखे पते पर पत्र व्यवहार करें—

सम्पादक, "विज्ञान"

विज्ञान-परिषद्,

म्योर सेण्ट्रल कालेज, थार्नहिल रोड,

इलाहाबाद—२

उ० प्र०

विज्ञान

जून १९५९

रजिस्टर्ड सं० ए० ३७२

उत्तर प्रदेश, बम्बई, मध्यप्रदेश, राजस्थान, बिहार, उड़ीसा, पंजाब तथा आँध्र प्रदेश के शिक्षा विभागों द्वारा स्कूलों, कालिजों और पुस्तकालयों के लिये स्वीकृत

विषय-सूची

प्रधान सम्पादक—डा० शिवगोपाल मिश्र

प्रकाशक—डा० रमेशचन्द्र कपूर, प्रधान मन्त्री, विज्ञान परिषद, इलाहाबाद

मुद्रक—हिन्दुस्तान प्रेस, कटरा, इलाहाबाद ।

भाग ८९

संख्या ४

जुलाई १९५९ सिंह २०१६ विक्र०, श्रावण १८८१ शा०

प्रधान सम्पादक—डा० शिवगोपाल मिश्र

विज्ञान परिषद् के मुख्य नियम

१—१९७० वि० या १९१३ ई० में विज्ञान परिषद की इस उद्देश्य से स्थापना हुई कि भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक साहित्य का प्रचार हो तथा विज्ञान के अध्ययन को और साधारणतः वैज्ञानिक खोज के काम को प्रोत्साहन दिया जाय।

२—परिषद् में सभ्य होंगे। निर्दिष्ट नियमों के अनुसार साधारण सभ्यों में से ही एक सभापति, दो उप-सभापति, एक कोषाध्यक्ष, एक प्रधान मन्त्री, दो मन्त्री, एक सम्पादक और एक अन्तरंग सभा निर्वाचित करेंगे जिनके द्वारा परिषद् की कार्यवाही होगी।

३—प्रत्येक सभ्य को ६) वार्षिक चन्दा देना होगा। प्रवेश शुल्क ३) होगा जो सभ्य बनते समय केवल एक बार देना होगा।

४—एक साथ १०० रु० की रकम देने से कोई भी सभ्य सदा के लिये वार्षिक चन्दे से मुक्त हो सकता है।

५—सभ्यों को परिषद् के सब अधिवेशनों में उपस्थित रहने का, अपना मत देने का, उनके चुनाव के पश्चात् प्रकाशित परिषद् की सब पुस्तकों, पत्र, तथा विवरण इत्यादि को बिना मूल्य पाने का—यदि परिषद् के साधारण धन के अतिरिक्त किसी विशेष धन से उनका प्रकाशन न हुआ हो—अधिकार होगा। पूर्व प्रकाशित पुस्तकें उनको तीन चौथाई मूल्य में मिलेंगी।

६—परिषद् के सम्पूर्ण स्वत्व के अधिकारी सभ्य-वृन्द समझे जायेंगे।

विज्ञान

विज्ञान परिषद् प्रयाग का मुख-पत्र

विज्ञान ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञान जानेतानि जीवन्तिविज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्ति। तै० उ० ।३।५।

भाग ८९	सिंह २०१६ विक्र०; आषाढ १८८१ शाकाब्द; जुलाई १९५९	संख्या ४

विज्ञान—एक दृष्टि

दुलहसिंह कोठारी, भुपालपुरा, उदयपुर

समस्त जगत को विज्ञान के अनुपम आलोक से आलोकित करने का महान प्रयास बहुत ही आवश्यक है। हमारे बालक प्रारम्भ से ही विज्ञान के प्रति एक ऐसी सच्ची धारणा बना लें जो आगे चल कर उनको सही वैज्ञानिक अध्ययन में सहायक हो सके इस बात की नितान्त आवश्यकता है। विभिन्न भ्रान्तियों, अनेक संशयों के आवरण को चीर कर विज्ञान की ज्योति जनसाधारण तक पहुँचाना इस युग की सब से बड़ी मांग है।

विज्ञान क्या है ?

विज्ञान सत्य है। वैज्ञानिक अनुसन्धान एवं आविष्कार चतुर्दिक बिखरी पड़ी प्रकृति के सही मर्म को समझते हुये सत्य का पता लगाने के हेतु किये गये प्रयासों का फल है। वैज्ञानिक सत्य के पुजारी हैं। वे सत्य के भक्त हैं। सत्य की खोज में निस्वार्थ भाव से अपने सम्पूर्ण जीवन को अर्पित कर देने वाले विज्ञानवेत्ता उन काननचारी महात्माओं से कम नहीं जो निविड़-जंगलों में किसी वृक्ष की छाया में बैठ कर सत्य की आराधना में अपने जीवन को खपा देते हैं। वे संसार में रहते हुये भी सांसारिक-प्रलोभनों से मुक्त होकर सत्य की मंजिल तक पहुँचने तक को ही अपना लक्ष्य मान कर दिन और रात अपने प्रयास तथा प्रयत्न में लगे रहने की अतुल क्षमता रखते हैं। उसके जीवन में अनेक उतार-चढ़ाव आते हैं, ऐसी घड़ियाँ भी आती हैं जब उनको अपने सामने दूर क्षितिज तक अन्धकार ही अन्धकार दीख पड़ता है। निराशा के भी अनेक ऐसे अवसर आते हैं जब वे यह अनुभव करने लगते हैं कि उनकी सब जीवन साधना व्यर्थ है, फिर भी वह कभी भी निराश नहीं होते परन्तु वे अपने काम में लगे ही रहते हैं।

तप, त्याग और तपस्या के एक एक नहीं हजारों उदाहरणों से विज्ञान का इतिहास ओतप्रोत है। विज्ञान के उन जीवित इतिहास के पन्नों से आज भी सैकड़ों वर्षों की अवधि के आवरण को चीरती हुई ज्योति की रश्मियाँ उसी प्रकार हमको प्राप्त हो रही हैं जिस प्रकार कि अनन्त दूरी को छेद कर भगवान भास्कर की किरणें प्रतिदिन प्रातः पृथ्वी पर पहुँचती हैं। नवीन आशा और उमंग को लेकर विज्ञान के विस्तृत नभ-मंडल में जगमगाने वाले ज्योतिर्पिण्डों में से अधिक नहीं तो भी एक का यहाँ पर उल्लेख कर देना कदाचित अनुचित न होगा।

गत शताब्दि के अंतिम वर्षों की बात है। उन दिनों से **सर रोनाल्ड रास** अपनी महान शोध में हमारी इस पवित्र पावन भारत भूमि के आंगन में ही लगे हुए थे। उनके शोध की कहानी एक रोमांचकारी कहानी है जिसके पढ़ने एवं सुनने से हम यह समझ सकते हैं कि एक वैज्ञानिक के जीवन में कितनी साधना, कितनी उपासना, कितनी क्षमता कितना धैर्य एवं प्राणीमात्र के कल्याण के लिये अपने सम्पूर्ण जीवन को खपा देने का कितना साहस होता है।

अवश्य ही सेवा की भावना से प्रेरित हो कर **रस रोनाल्ड** ने भयंकर मलेरिया ज्वर के, जिसके आक्रमण से अनिवार्यतः उष्ण कटिबन्धीय देशों में हजारों अभागे प्राणी मौत के शिकार होते थे, कीटाणुओं को अपनी शोध का विषय बनाया। उस समय निश्चत रूप से यह ज्ञान नहीं था कि इस भयंकर ज्वर के कीटाणु एक स्थान से दूसरे स्थान तक किस प्रकार पहुँचते हैं। **सर रोनाल्ड** को सन्देह हुआ कि कदाचित मच्छरों द्वारा ही वे इधर उधर ले जाये जाते हैं। अतः इस बात की पूर्णतया छानबीन करने के लिये वे अनुवीक्षण यंत्र द्वारा मच्छरों के निरीक्षण करने में जुट गये। यह कार्य इतना सरल नहीं था जितना कि लिखने और पढ़ने में आज हमें प्रतीत होता है।

भारत की भीषण गर्मी के दिनों में भी एक बन्द कमरे में और जिसपर भी पंखे की अनुपस्थिति में घण्टों तक मच्छर के एकएक सूक्ष्म से सूक्ष्म अंगों का एक निगाह से निरीक्षण करते हुये जिस किसी ने सर रोनाल्ड को देखा हो वह समझ सकता है कि कितनी साधना, कितनी लगन एवं कितनी क्षमता इस वैज्ञानिक में थी। मच्छरों के इस प्रकार निरीक्षण में घण्टे, दिन, सप्ताह, महीने और महीनों से वर्ष बीतने लगे। हजारों की संख्या में मच्छरों का विश्लेषण करने पर भी प्रकाश की एक किरण भी दृष्टिगोचर न हुई। तो फिर क्या वे जिस पगडंडी पर धैर्य एवं अटल विश्वास के साथ इतने लम्बे समय से चले जा रहे थे वह सही मार्ग नहीं था ? क्या वर्षों का यह सब परिश्रम, इतना प्रयास, इतनी कठोर तपस्या व्यर्थ चली जायगी ? यह कुछ भी रोनाल्ड नहीं जानते थे। वे तो एक कर्मठ कर्त्तव्यनिष्ठ व्यक्ति थे। काम करने में ही उनकी निष्ठा थी। कदाचित फल प्राप्ति की चिन्तना करने का तो उनको तनिक भी अवकाश नहीं था। प्राणीमात्र की सेवा का महाव्रतधारी वह संत वैज्ञानिक निराशाओं से विचलित होने के स्थान पर और भी अधिक शक्ति और भक्ति के साथ घोर अंधकर में अपनी पगडंडी पर चलने लगा।

१६ अगस्त सन् १८६७: सदा की भाँति उस दिन भी सर रोनाल्ड प्रातः से ही अपनी साधना में जुट गये। दिन भर के कठोर परिश्रम के बाद कुछ थकान अधिक अनुभव करने के

कारण वे अपनी कुर्सी पर थोड़ी देर विश्राम करने के हेतु बैठ गये। चारों ओर निराशा दिखने लगी वे दुर्बलता अनुभव करने लगे। क्या उनकी जीवन साधना का यही फल था? क्या विधाता ने उनके भाग्य में यही सब कुछ लिखा था? क्या उनकी सेवा का कोई सार नहीं? क्या यह दिन भी सदा की भाँति व्यर्थ में ही चला जायगा? निराश एवं उदासीन होकर इस प्रकार वे विचारों के संघर्ष में अपने को खोया सा अनुभव कर रहे थे कि एकाएक उनको एक वचार आया। "सूर्य अस्त होने जा रहा है और इसके साथ ही आज का दिन भी समाप्त हो जायगा। तो फिर क्या आज का थोड़ा शेष, कार्य अपूर्ण ही रह जायगा? नहीं ऐसा तो नहीं होने दूंगा।" अपने साहस को बटोरते हुये फिर उठे और अनुवीक्षण यन्त्र में देखने लगे। एक क्षण कुछ नहीं। दूसरा क्षण। तीसरा क्षण। चौथा, कुछ नहीं। एक क्षण और। यह क्या? यह अति सूक्ष्म काला कण? वे एकाएक अपने स्थान पर उछल पड़े। उनको अपनी साधना का फल मिल चुका था। सफलता उस महान तपस्वी के पैरों को चूम रही थी। जिस ज्योति की खोज में वह वर्षों तक निविड़ अन्धकार में, शंका और संशय के संघर्ष में अपने पथ पर चले जा रहे थे, आज उसके दर्शन हो चुके थे। उस नवीन ज्योति के प्रकाश में उन्हें अपनी शोध का लक्ष्य स्पष्ट रूप:से दिखाई दे रहा था। सर रोनाल्ड रास के लिये ही नहीं वरन् सारे संसार के लिये यह दिन मानव-कल्याण का एक महान दिन था। मलेरिया के कीटाणु को एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाने वाले मच्छर ही हैं, यही उनका संभावी आविष्कार था। समस्त संसार आने वाले युग युगान्तर तक सर रोनाल्ड का ऋणी रहेगा।

आत्म बलिदान, असीम साधना, संयम एवं निरन्तर प्रयास में अपने जीवन को खपा देने वालों के ऐसे एक नहीं अनेक उदाहरण हैं। वैज्ञानिकों के जीवन में इतनी मानवता के होते हुये भी आज विज्ञान का इतना दुरुपयोग क्यों? वैज्ञानिक उपलब्धियों का नर संहार की दिशा में प्रयोग क्यों?

क्या इस दुरुपयोग को रोकने तथा थामने की क्षमता मनुष्य में है? शक्ति तो मनुष्य में अवश्य है पर उसको वह अनुभव कर प्रयोग में तभी ला सकता है जब वह कलुषित तथा संकीर्ण मनोवृति का परित्याग कर, स्वार्थ एवं आपसी कलह को तज, मानव धर्म को समझते हुये सद्भावना और सदाचार को अपनावे। यदि विज्ञान द्वारा हम सुख और शान्ति चाहते हैं तो हमें सब कुछ भूल कर मानवता का ही स्मरण करना होगा, उसकी ही हमें उपासना करनी होगी। यही एक वास्तविक सत्य है। क्या संसार इस सत्य को समझेगा भी?

टिड्डियों पर नियंत्रण

[आजकल राजस्थान तथा उत्तर प्रदेश में टिड्डियों के आक्रमण प्रारम्भ हो गये हैं। टिड्डियों सम्बन्धी विशिष्ट सूचनाओं एवं उनके दमन के लिए किये गये प्रयासों का इस लेख में सविस्तार उल्लेख हुआ है—संपादक]

प्रचीन काल में अरब तथा अफ्रीका के गर्म मरुस्थलों से टिड्डियों के दल के दल भारत में आते रहते थे। जिस वर्ष उनका आक्रमण हो आता था उस वर्ष सारे देश में दुर्भिक्ष पड़ जाता था। इसका कारण यह था कि जिस प्रदेश में टिड्डियां पड़ जाती थीं वे वहां की लहलहाती फसलों को देखते-देखते नष्ट कर देती थीं। वे वृक्षों की छाल तक को चट कर जाती थीं। किसान लोग टिड्डियों के आक्रमण को दैवी प्रकोप समझ कर हाथ मलते रह जाते थे।

अब भारत तथा अन्य एशियाई देश टिड्डियों के खतरे से मुक्त हो गये हैं। इसका श्रेय उस अनवरत संघर्ष को है जो विश्व व्यापी आधार पर टिड्डियों के विरुद्ध किया गया है।

टिड्डी विरोधी-अनुसन्धान-केन्द्र द्वारा १० वर्षों में १९३४ के अन्त तक जो पर्यवेक्षण किया गया था उससे यह पता चल गया था कि हर वर्ष टिड्डियों तथा टिड्डों से १ करोड़ ५० लाख पौण्ड अन्न अर्थात ७ करोड़ ५० लाख डालर की क्षति होती है। इसके अलावा प्रायः उसी स्थानों पर टिड्डियों की रोकथाम करने पर बहुत अधिक खर्च किया जाता है।

ईरान को अमेरिकी सहायता

१९५१ में ईरान में टिड्डियों का इतना जोरदार आक्रमण हुआ जितना उससे पूर्व ८० वर्षों में नहीं हुआ था। टिड्डियों से अपनी फसलों की रक्षा करने के लिये ईरान ने अमेरिका से सहायता मांगी। अमेरिका ने कीटाणुनाशक औषधियां छिड़कने वाले ९ वायुयान, १३ टन कीटाणुनाशक औषधियां और कई टैक्निकल सलाहकार प्रदान किये। ईरान में टिड्डियों के नष्ट किये जाने की कार्यवाहियों के समाचार सुनकर भारत तथा पाकिस्तान ने अपने पर्यवेक्षक वहां भेजे और वर्ष के अन्त से पहले-पहले उन देशों के लिये भी वैसी ही सहायता की व्यवस्था कर दी गई।

अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन का आयोजन

इन कार्यक्रमों की सफलताओं से प्रभावित होकर तथा टिड्डियों की समस्या को हल करने की आवश्यकता को अनुभव करते हुए १९५१ में संयुक्तराष्ट्र संघ के खाद्य एवं कृषि संगठ की ओर से रोम में एक अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन का आयोजन किया गया। निकट पूर्व, अफ्रीका और दक्षिण एशिया के देशों के वैज्ञानिकों ने उस सम्मेलन में भाग लिया।

१९५२ में अमेरिका भारत, अफगानिस्तान, लेवनान, ईरान, पाकिस्तान, ईराक, जोर्डन, इथयोपिया, लिविया, मिश्र, टर्की, मोरक्को और ट्यूनिस के टिड्डी नियंत्रण विषयक प्रादेशिक कार्यक्रम में सम्मिलित हो गया। आज ये देश टिड्डियों के आक्रमण को रोकने के लिये पहले की अपेक्षा अधिक संगठित है। कृषि उपजों की रक्षा करके लाखों डालरों की बचत कर ली गई है और इससे लाखों व्यक्तियों को जीविका मिली है।

केन्द्रीय संघठन का प्रधान कार्यालय

टिड्डियों विरोधी केन्द्रीय संगठन का प्रधान कार्यालय जोधपुर में स्थित है। यहीं से टिड्डियों के नियंत्रण के कार्यक्रम का संचालन होता है। राजस्थान, पंजाब, सौराष्ट्र और कच्छ के मरुस्थल में ८० हजार वर्ग मील में ऐसी चोकियाँ फैली हुई हैं जहाँ पर हर समय टिड्डियों की गतिविधियों का ध्यान रखा जाता है। भारत का टिड्डी विरोधी संघर्ष उस विश्वव्यापी संघर्ष का एक अंग है जो अमेरिका और संयुक्तराष्ट्र संघ के खाद्य एवं कृषि संगठन के सहयोग से किया जा रहा है। अमेरिका ने टिड्डियों से पीड़ित देशों से टैक्निक सहयोग समझौते कर रखे हैं। यह उन देशों को अवश्यक उपकरणों तथा कीटाणुनाशक रासायनिक द्रव्यों की सहायता देता रहा है।

टिड्डियाँ के नियंत्रण के लिये सहायता

भारत तथा अमेरिकी टैक्निकल सहयोग मिशन के कार्यक्रम के अन्तर्गत टैक्निकल सहयोग मिशन ने भारत को १९५२ से १९५४ तक ५,४८,५३७ डालर मूल्य के उपकरण तथा कीटाणु-नाशक औषधियां उपलब्ध की हैं। इनमें जीपें, लैण्ड रोवर, ट्रैक्टर, ट्रेलर, औषधियां छिड़कने वाले यन्त्र, एयरक्राफ्ट स्प्रेयर, वायरलैस यन्त्र तथा भारी मात्रा में एल्ड्रीन आदि कीटाणुनाशक द्रव्य सम्मिलित थीं। राजस्थान में वायुयानों द्वारा कीटाणुनाशक औषधियां छिड़कने के कार्यक्रम में प्रसिद्ध अमेरिकी कृषि-विशेषज्ञ विलियम मेबी ने भारत सरकार की सहायता की है। अन्य राष्ट्र भी तेजी के साथ अपने कार्यक्रम प्रारम्भ कर रहे हैं। पाकिस्तान के पास औषधियां छिड़कने वाले १८ वायुयान, उसके अपने विमानचालक और यन्त्र हैं। ईरान के कृषि विभाग ने कृषि को हानि पहुँचाने वाले कीटाणुओं के नियंत्रण के लिये कई कार्यक्रम क्रियान्वित किये हैं। ईराक के पास भी औषधियाँ छिड़कने वाले १२ वायुयान मौजूद हैं। उत्तरी अफ्रीका के देशों में भी ऐसे ही प्रगति की जा चुकी है। यद्यपि इस कार्य में उल्लेखनीय सफलता प्राप्त की जा चुकी है, तो भी इस सम्बन्ध में अभी बहुत कुछ किया जाना शेष है। १९५६ के जनवरी मास में लेबनान-सरकार ने टिड्डयों का खतरा उपस्थित हो जाने पर अमेरिका से सहायता मांगी। अमेरिका के आर्थिक कमीशन ने तत्काल जर्मनी से एक बड़ा हेलिकोप्टर और ६ हवाबाज सहायता के लिये भेज दिये। १९५७ में ट्यूनिशिया के मध्यवर्ती क्षेत्रों में टिड्डियों की भरमार हो गई। ट्यूनेशिया की सरकार ने फ्रांस, लिबिया, मोरा-क्को और अमेरिका से सहायता मांगी। उस प्रदेश का जल्दी से पर्यवेक्षण करने के बाद लिबिया से कीटाणुनाशक औषधियां छिड़कने वाले दो वायुयान और दो टन कीटाणुनाशक औषधियां भेजी गईं। इस प्रकार टिड्डियों पर पूर्ण रूप से नियंत्रण कर लिया गया और बहुत कम टिड्डियां बच करनिकल पाईं।

सफलताओं सम्बन्धी विवरण

कुल सफलताओं का निश्चय करना तो कठिन है फिर भी, १९५१ से १९५७ तक के आंकड़ों से नियंत्रण सम्बन्धी कार्यक्रमों के सम्बन्ध में काफी जानकारी मिल सकती है। इनसे पता चलता है कि कृषि-विशेषज्ञों द्वारा कीटाणुओं की ७५ किस्मों के बारे में ५८५ प्रदर्शन किये गये, ३, ६४७ टन कीटाणुनाशक औषधियों, औषधियां छिड़ाने वाले ६२ वायुयानों, ३२६ ट्रकों, ११२६ पावर स्प्रेयरों तथा लगभग २०, ००० हाथ के स्प्रेयरों का आयात और प्रयोग किया गया। लगभग ४ लाख एकड़ भूमि में विभिन्न प्रकार की ३२ फसलों की रक्षा करने के लिए ५० प्रकार की कीटाणु-नाशक औषधियां प्रयोग में लाई गईं। ८३ विमान चालकों, वायुयानों के ६५ मिस्त्रियों और पौधों की रक्षा करने वाले २६० अधिकारियों को प्रशिक्षण किया गया।

वैज्ञानिक कृषि की प्रगति का सिंहावलोकन

डा० शिवगोपाल मिश्र, प्राध्यापक कृषि रसायन, प्रयाग विश्वविद्यालय

अगस्त सन् १९४९ की "खेती" पत्रिका में, जो भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद की प्रमुख प्रत्रिका है, पृ० १५६-१५७ में भारत की खाद्य समस्या का उल्लेख करते हुये अपने भाषण में जयराम दोलतराम ने कहा था :—

"१९४७-४८ में प्रत्येक प्रान्त की उपज में से बीज और छीजनबट्टा आदि के लिये १२.५% निकाल देने के पश्चात् यह पाया गया कि प्रत्येक व्यक्ति के लिये खाद्यान्न की उपज मध्यप्रान्त में १८.२ औंस, आसाम में १५.८ औंस, उडीसा में १५.१ औंस, पश्चिम-बंगाल में १५.४ औंस, पूर्वी पंजाब में ११.३ औंस, मद्रास में ११ औंस संयुक्त प्रान्त (अब उत्तर प्रदेश) में १३.५ औंस, बम्बई में १२.८ औंस और बिहार में ९ औंस थी। (हमारे देश में मध्यप्रान्त ही ऐसा देश है जहाँ का मुख्य आहार खाद्यान्न है और वहाँ पर बाहर से मंगाने की कम से कम आवश्यकता पड़ती है। आसाम और उड़ीसा भी अपनी आवश्यकता पूरी करने में लगभग समर्थ हैं किन्तु अन्य सभी प्रान्तों में खाद्य की उत्पत्ति बहुत कम है और मेरा जहाँ तक विश्वास है, रियासतों की अवस्था भी इन्हीं प्रान्तों जैसी है। किसी प्रकार हो, प्रान्तों को अपने क्षेत्र की खाद्य की कमी को दूर करना ही होगा।"

"मैं यह अनुभव करता हूँ कि कृषि अनुसंधान का कार्य विभाजन के पश्चात उत्पन्न हुई परिस्थितियों से पैदा हुई गंभीर अवस्था को ध्यान में रखते हुये अत्यन्त शुद्ध और अतिशीघ्र होना चाहिये। मैं आपके सामने यह सुझाव रखूंगा कि हमें अपने काम करने की बिधि में परिवर्तन करना चाहिये और परिषद की इस प्रकार की वार्षिक बैठकों में देश की कृषि-परिस्थिति से सम्बन्ध रखने वाली परिषद की मुख्य कार्यवाहियों से सम्बन्धित नीति के बड़े-बड़े प्रश्नों के बारे में उन्हें वाद विवाद करना चाहिये। जो कुछ हो, मैं यह आवश्यक समझता हूँ कि आप लोग उन क्षेत्रों में जहाँ पर सिंचाई का पूरा प्रबन्ध है, अपने अनुसंधान कार्य को और भी अधिक बढावें और अच्छी उपज देने वाले बीजों, रोगों और व्याधियों को सहन कर सकने वाले बीज और कृषि सम्बन्धी अन्य उपयोगी सुधारों को काम में लाकर उत्पादन को अधिक बढ़ाने का प्रयत्न करें। यदि हम खाद्य पदार्थों के उत्पादन को शीघ्राति-शीघ्र बढ़ाना चाहते हैं तो यह भी आवश्यक है कि हम अपने खाद्य पदार्थ उत्पन्न करने वाले फार्मों पर छोटे छोटे अनुसंधान-स्टेशनों का जाल सा बिछा दें। इस प्रकार ये स्टेशन अनुसंधान के सफल परिणामों को शीघ्रतापूर्वक किसान तक पहुँचाने में सहायता करेंगे।"

"कुछ वर्षों पहले तक भारत में कृषि सम्बन्धी अंको की गणना करने का कार्य एक अनुमान कार्य-मात्र था। आँख से देखकर अंकों का अनुमान लगाना एक सामान्य विधि थी।

अब इस क्षेत्र में अंकों को शुद्ध और सही प्राप्त करने में धीरे-धीरे उन्नति हो रही है। इस सफलता को प्राप्त करने में भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का बहुत बड़ा हाथ है। १६४३ ई० में भारत में विभिन्न प्रान्तों में कृषि सम्बन्धी उन्नति के अंकों का पता लगाने के लिये विकीर्ण की प्रणाली (रैंडल सैंम्पलिंग) को काम में लाया जा रहा है। "फसल-कटाई-पैमाइश" (क्रापकटिंग सर्वे) की योजना का विस्तार हो रहा है। ग्रेगरी समिति और बंगाल दुर्भिक्ष कमीशन की सिफारिशों के आधार पर अब रैंडम सैम्पलिंग विधि को सभी प्रान्तों में प्रायः सभी फसलों के अंकों का पता लगाने के लिये काम में लाया जा रहा है।"

"खेती" (अगस्त १६४६) के पृष्ठ १६८-२०० में "कृषि सांख्यकी की स्थापना एवं उसकी आवश्यकता" पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। कृषि सांख्यकी की स्थापना सन् १६४७ में हुई। इसकी दूसरी बैठक २३-२८ अक्टूबर १६४८ ई० को दिल्ली में हुई। एकत्र किये जाने वाले अंको की शुद्धता और विश्वस्तता पर बल देते हुये डा० राजेन्द्रप्रसाद ने कहा कि भविष्य में काम में लाई जाने वाली हमारी सारी योजनायें इन शुद्ध अंकों के आधार पर ही बनाई गई हैं। भारतवर्ष के पशुधन पर बोलते हुये उन्होंने कहा कि पशुपालन क्षेत्र में भी केवल पशुओं की संख्या ही नहीं वरन् उनकी उपयोगिता के बारे में भी शुद्ध अंकों के एकत्र करने का महत्व कम नहीं। सन् १६५० में होने वाली विश्व कृषि गणना में भारत ने भी सहयोग दिया। विश्वास करने योग्य गणना प्राप्त करने की आवश्यकता पर जोर देते हुये उन्होंने आगे बताया कि वे ऐसे संख्याति अंक एकत्र करें जो बिल्कुल शुद्ध हों और जिन पर भरोसा किया जा सके और भारत को इस क्षेत्र में अन्य देशों की समानता में ला सकें।

खेती के उसी अंक में जयराम दौलतराय का भाषण है जिसमें भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के कार्यों का उल्लेख करते हुये बताया है कि इस परिषद के कार्य का एक महत्वपूर्ण पहलू देश के कृषि सम्बन्धी अनुसंधान कार्य की आयोजना करना और अनुसंधान कार्यों को एक दूसरे के साथ आसंजित रखना है। अनुसंधान की योजनाओ की स्वीकृत देने में अब तक विशेष प्रणाली से कार्य लिया जाता था लेकिन अनुभव से यह मामूम हुआ है कि वर्तमान विधि में धन का कुछ मात्रा में अपव्यय होता है और कार्य की पुनरावृत्ति होती रहती है। इस सम्बन्ध में कुछ समय से परिषद का ध्यान प्रादेशिक आधार पर अनुसंधान कार्य की व्यवस्था करने के प्रश्न की ओर लगा हुआ है। उन्होंने आशा प्रकट की कि शीघ्र ही प्रादेशिक समिति अपना कार्य प्रारम्भ कर देगी और प्रादेशिक महत्व की समस्याओं की ओर ध्यान दिलाने के कार्य में अत्यन्त लाभदायी सिद्ध होगी।

उपरोक्त उद्धरणों से भारत में वैज्ञानिक कार्यों की आवश्यकता के साथ साथ उसमें संस्यता बरतने की कितनी आवश्यकता है स्पष्ट हो जाता है। निश्चित रूप से कृषि उन्नति पर ही राष्ट्र अवलम्बित है अतः उसका अध्ययन सतत रूप से अधिकारियों द्वारा सुदृढ़ता के साथ किया जाना चाहिये। कृषिकी चतुर्दिक उन्नति के लिये एवं सभ्यराष्ट्रों के साथ कंधा मिलाने के लिये हमें नवीन से नवीनतम साधनों को कार्य में व्यवहृत करना चाहिये।

तमाम वैज्ञानिक कृषि के फल स्वरूप सन् १६४६-४७ ई० में खाद्यों के उत्पादन में ६ लाख टन की वृद्धि हुई थी। मध्य प्रदेश-बरार, बम्बई तथा उत्तर प्रदेश में उत्पादन में १६ लाख टन की वृद्धि हुई थी किन्तु मद्रास में मानसून न चलने के कारण १२ लाख टन

की कमी पड़ी। आसाम, बंगाल, बिहार तथा उड़ीसा और पूर्वी पंजाब में भी कुल ६ लाख टन की कमी हुई थी किन्तु रिसायतों में ४ लाख टन की अधिक वृद्धि हुई थी। इस प्रकार हम देखते हैं कि इतनी सतर्कता के पश्चात भी अन्नोत्पादन एक न आधीन हो सकने वाली समस्या है और। किसी भी प्रकार की न्यूनता होने से तबाही आ सकती है।

खाद्यान्न	क्षेत्रफल एकड़ों में (हजार एकड़ों में)		वृद्धि (+) या कमी (—)
	१९४६-४७	१९४७—४८	
चावल	६०९८७	५९६५६	—१३३१
गेहूँ	२४३४८	२०२०६	—४१९३
ज्वार	३७८४४	३५६६५	—२१७९
बाजरा	२१४४२	१९६२६	—१८१६
मक्का	७८८८	७७५५	—१३२
रागी	५१७४	५१०८	—६६
जौ	७०८२	७१२७	+४५
चना	१६९७१	१८४९८	+१५२७
	उत्पादन अंक हजार टनों में		वृद्धि या कमी
चावल	१९८५६	१८७९६	—१०६६
गेहूँ	४७४४	५३४८	+६०४
ज्वार	५२७७	५७३०	+४५३
बाजरा	२६६७	२५२५	—१४२
मक्का	२०३५	२१११	+७६
रागी	१४७६	१३९१	—८५
जौ	२४१४	२४८८	+७४
चना	३५९९	४३१०	+७११

(खेती, अगस्त १९४९ से उद्धृत)

सन् १९५३-५४ के कृषि वर्ष में भारत में कुल ६ करोड़ ९० लाख टन खाद्यान्न पैदा हुआ जिसमें ९९ लाख टन दालें और ५९१ लाख टन अन्य अन्न थे। यह उत्पादन १९५५-५६ के निर्धारित लक्ष्य से ४४ लाख टन अधिक है। इस साल और सालों की अपेक्षा सबसे अधिक क्षेत्र फल में (२६ करोड़ १० लाख एकड़ भूमि में) खेती की गई। इस प्रकार हम देखते हैं कि १९५३-५४ में प्रति एकड़ उत्पादन में भी वृद्धि हुई। सन् १९४९-५० प्रथम पंचवर्षीय योजना का कार्यारम्भ-काल है जिसमें २४ करोड़ ५३ लाख एकड़ भूमि में खाद्यान्न की खेती की गई जिसमें से दालों के अतिरिक्त अन्य अनाज १९ करोड़ ५५ लाख एकड़ भूमि में बोये गये। यह अनुमान किया जाता है कि १९५५-५६ के अन्त तक अनाजों की खेती अन्य १५ लाख एकड़ों में भी होने लगेगी जबकि १९५३-५४ में केवल ९ लाख एकड़ अधिक भूमि में खेती की गई थी। ध्यान देने की बात यह है कि १९५३-५४ में खाद्यान्नों की वृद्धि इसलिये नहीं है कि अधिक क्षेत्रफल में खेती की गई परन्तु सन् १९४९-५० की तुलना में प्रति एकड़ पैदावार भी अधिक हुई जिसका कारण मौसम की अनुकूलता और खेती में अधिक श्रम करना है। सन् १९५३-५४ में १९५२-५३ की अपेक्षा ४० लाख टन अधिक चावल उत्पन्न हुआ क्योंकि मौसम अनुकूल होने के साथ साथ जापानी ढंग से धान की खेती की गई। १९५३-५४ में जितना गेहूँ पैदा हुआ वह १९५५-५६ में निर्धारित लक्ष्य से ३ लाख टन अधिक है। यही नहीं १९५३-५४ में मोटे अनाजों की पैदावार में पर्याप्त वृद्धि हुई। इस प्रकार से देश में ही खाद्यान्नों की अधिकता होने से बाहर से मँगाये गये अन्न में प्रतिदिन कमी होती जा रही है और एक समय वह आनेवाला है जब भारत अन्न के मामलों में आत्मनिर्भर हो जायगा। सन् १९५१ में ४७ लाख टन खाद्यान्न बाहर से मँगाया गया किन्तु १९५२ तथा १९५३ में घट कर क्रमशः ३९ तथा २० लाख टन ही रह गया।

उत्तर प्रदेश में १९५२-५३ में ३० लाख टन गेहूँ और २३ लाख टन चावल उत्पन्न हुआ। १९५४ की पैदावार की तालिका में वे आकड़े दिये जा रहे हैं जो "अमृत पत्रिका" में नवम्बर १९५४ में प्रकाशित हुये थे :

फसल	वह क्षेत्रफल जिसमें बोयी गयी (एकड़ों में)	उपज (टनों में)
ज्वार	५०८४०५३	५३४३६३
बाजरा	२२७४२४४	५८७३६३
मंडुआ	४७४४३८	८१७६२
कोदो	१०६९८६०	१७५८३५९
मक्का	२५३४८३२	६०३९२३
चना	६५९२१०८	१६९१९६०

मटर	२००४०५६	५६०८६६
अरहर	१४३६०५३	६५८५४७
आलू	२३०३४७	६६५६६६
फल-तरकारी	२२७४३६	... ...
गेहूँ	६२३०१४१	३०००००
चावल	६०५२८२४	२३०००००

उपरोक्त से स्पष्ट है कि भारतवर्ष की कुल पैदावार में आशातीत वृद्धि हुई है किन्तु प्रतिवर्ष भूमि-सुरक्षा न होने के कारण दिन प्रतिदिन खेती योग्य क्षेत्रफल में कमी हो रही हैं, यद्यपि द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् अधिक अन्न उत्पादन करने की धुन में किसानों ने तमाम नौटारे तोड़ कर खेतों में परिवर्तित कर दिये हैं। फिर भी भूमिक्षरण जैसी घातक व्याधि से परिचित होते हुये भी यदि एक खेत नष्ट हो जाता है तो वे उसे छोड़ कर दूसरे में खेती करने लगते हैं। नवम्बर १९५४ के एक समाचार में यह बताया गया था कि केवल उत्तर प्रदेश में ही पिछले ५० वर्षों में हवा और पानी की क्रिया से लगभग ४६ लाख एकड़ खेती योग्य भूमि बेकार हो गई है अतः एक ओर हमें जहाँ कृषि विज्ञान को अधिक अन्नोत्पादन के लिये प्रयोग में लाना हैं वहीं दूसरी ओर भूमि सुरक्षा का भी प्रबंध करना होगा। भूमिक्षरण एवं ऊसरों की उत्पत्ति रोकने के सबल प्रयत्न होने चाहिये। अतः स्पष्ट है कि हमारा व्यवहारिक विज्ञान अधूरा है। इसी का उल्लेख "खेती" (अप्रैल १९४९) में पृ० ५१५ के सम्पादकीय में इस प्रकार है जिससे सभी लोगों को सहमत होना पड़ेगा :

"व्यवहारिक अनुसंधान अक्सर हमको ऐसे काल्पनिक परिणामों की ओर ले जाता है जो अशिक्षित जनता पर बड़ा प्रभाव डालते हैं और इसलिये लोग उनकी तुरन्त ही प्रशंसा करने लगते हैं। और अन्य देशों में प्रयोग में लाये सिद्धान्तों की अपने यहाँ पुनरावृत्ति करने के लिये ही नहीं बल्कि मौलक कार्य के लिये भी अक्सर बिना सोचे समझे व्यवहारिक अनुसंधान कर्त्ताओं की इतनी अधिक प्रशंसा की जाती है कि कुछ विशेष वर्ग के लोग जो प्रयोगशाला और कार्य क्षेत्र दोनों ही स्थानों पर काम करने के लिये सर्वथा अनुपयुक्त होते हैं इसकी ओर आकर्षित हुये बिना नहीं रह सकते। व्यवहारिक अनुसंधान को यदि अनावश्यक महत्व दिया जायगा और वास्तविक योग्य अनुसंधानकर्त्ताओं को इस ओर घुमाया जायगा तो सारे देश में होने वाले अनुसंधान में गड़बड़ पैदा होने के गंभीर खतरे की संभावना है। परन्तु यदि उसका उचित प्रकार से प्रयोग किया जायगा तो इससे शीघ्रतापूर्वक जो परिणाम प्राप्त होंगे वे जनता में उत्साह पैदा करेंगे और इस प्रकार हानिकारक सिद्ध होने की अपेक्षा लाभदायक सिद्ध होंगे। यह कभी भी न भूल जाना चाहिये कि इसके लिये उस शास्त्रीय या पुस्तक ज्ञान की भी आवश्यकता है जो अब तक इस सम्बन्ध में प्राप्त हुआ है, जिसकी सहायता के बिना सक्रिय परिणाम प्राप्त करना असंभव होगा।"

इस प्रकार से वैज्ञानिक कृषि को सुदृढ़ नींव पर स्थापित करने के लिये अत्यधिक ज्ञानार्जन के पश्चात ही अनुसंधानकर्त्ताओं को इधर पाँव देना चाहिये क्योंकि यह अत्यन्त कठिन शास्त्र है जिसमें व्यवहारिक तथा शास्त्रीय ज्ञान दोनों का होना आवश्यक है। भारतवर्ष में कृषि विज्ञान अभी ५० वर्षों से पल्लवित हुआ है अतः जो भी उन्नति अब तक हुई वह उपेक्षणीय नहीं। दूसरे राष्ट्रों में १०० सालों से ऊपर से कृषि विज्ञान लगातार उन्नति कर रहा है। अतः उनकी तुलना में इस देश में कम उन्नति सहज है। फिर भी कृषि विज्ञान को जनता के समक्ष प्रस्तुत करने के लिये आज भी ऐसे साधनों की कमी है जो उसे समस्त शोध कार्यों से अवगत करा सकें। जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि प्रयोगशालाओं एवं कार्य क्षेत्रों में बड़ा व्यवधान है अतः यथेष्ट रूप में लाभ नहीं मिल पाता। कृषि सार (विजनौर), खेती (दिल्ली १९४८ से), किसान (इन्दौर १९२५), गाँव, कृषि और पशुपालन (लखनऊ), पंचायत राज (लखनऊ) आदि पत्रों से किसानों तक कृषि ज्ञान को प्रसारित करने का अनवरत प्रयत्न किया जा रहा है।

सन् १९२९ से १९४९ तक के कृषि-अन्वेषण परिषद् के फलस्वरूप प्राप्त सफलताओं का वर्णन "खेती" (जनवरी १९४९) के ३७४-८० पृष्ठों में सेठी तथा चटर्जी द्वारा दिया गया है—

चावल :—परिषद ने ब्रह्मपुत्र, कटक, चिनसुरा, नगीना, रायपुर, हबीबगंज, बम्बई, मद्रास मैसूर, काश्मीर, ट्रावन्कोर तथा बड़ौदा में अनेक योजनाओं को आर्थिक सहायता देकर चावल को उन्नत बनाने और सुधारने के कार्य में महान प्रोत्साहन दिया, इनमें से अनेक योजनायें १९४१-४५ तक चलीं। संवृद्धि (ब्रीडिंग) सम्बन्धी अन्वेषणों के परिणाम स्वरूप अनेक जातियाँ निकाली गईं जो विभिन्न एवं विषम परिस्थितियों में उग सकें और कीट रोगों तथा बीमारियों के रोकने में और सहन करने से समर्थ हों। मध्यप्रान्त - बरार में जंगली चावल नामक घास के प्रकोप को गुलाबी जाति के चावलके विकास से जीत लिया गया जिसके कारण छत्तीसगढ़ में ही ६० लाख रुपये चावल की बचत हुई जबकि अनुसंधान कार्य पर एक लाख रुपये लगे।

गेहूँ :—गेंडुआ, रतुआ या मुर्चा की बीमारी १९४६-४७ में मध्यभारत, मध्यप्रान्त, बरार बम्बई और हैदराबाद में बहुत बड़े क्षेत्रों को नष्ट कर दिया अतः परिषद लगातार १८ वर्षों में सन् १९३१ से १९४९ तक इस महत्वपूर्ण कार्य के सम्बन्ध में अन्वेषण करने के लिये एक विस्तृत योजना को सहायता देती रही है। इस खोजबीन से ज्ञात हुआ है कि एक वर्ष के पश्चात् दूसरे वर्ष तक जो मण्डूर रोग बना रहता है और प्रतिवर्ष चलता रहता है उसका कारण दूसरे प्रकार के मण्डूर पोषक पौदे नहीं वरन् यह रोग ग्रीष्म ऋतु के पश्चात स्वयं उग आने वाली फसलों तथा उत्तर में नेपाल और दक्षिण में नीलगिरि के पहाड़ी क्षेत्रों में जल्दी बोई जाने वाली गेहूँ की फसलों में होने वाले संक्रामक के कारण फैलता है। सामान्य वर्षों में भारत तथा पाकिस्तान में ५% गेहूँ की उपज यानी ६ करोड़ रुपये का घाटा होता है। इसके सम्बन्ध में बम्बई मध्यप्रान्त, मध्यभारत, शिमला, भुवाली, करनाल तथा आगरा में कार्य हो रहे हैं।

ज्वार-बाजरा :—शुष्क विधियों द्वारा खेती करने से कम वर्षा वाले क्षेत्रों में भी २% उपज में वृद्धि हुई। ज्वार के बीजों में फफूंदी को नष्ट करने के लिये नीलेथोथे के घोल

का प्रयोग किया गया। यह भी देखा गया कि ठूंठ एवं डंठलों को जला देने से ज्वार की सूंडी रुक जाती है। बड़ौदा में बाजरे के ऊपर जो परीक्षण हुये उसमें स्थानीय पैदावार की तुलना में २०० पौंड प्रति एकड़ अधिक उपज हुई।

दालें : सर जान रसल की सिफारिश के बाद, कि प्रोटीन हमारे खाद्यों का मुख्य अंग है, केन्द्रीय कृषि परिषद ने देश के सभी प्रान्तों में चना, घोड़चना, अरहर, मुंग, सेम, उर्द आदिमें संयमित योजनायें प्रारम्भ कीं। प्रोटीन अंशों के अध्ययन से प्रकट होता है कि सफेद चने में प्रोटीन सबसे अधिक है (२३%) जब कि दूसरों में १६% से अधिक नहीं। ऐसी जातियों का जिन पर रोग का कोई प्रभाव न हो विकाश किया गया है। जब अरहर को अकेले बोया जाता है तो ८८% पौदे मर जाते हैं किन्तु ज्वार के साथ बोने से यह संख्या ३२% ही रह जाती है इस प्रकार से अरहर और ज्वार को मिलवां बोने से अधिक लाभ हुआ है।

इन अनाजों के अतिरिक्त परिषद ने फल, तिलहन, आलू तथा चारे की समस्याओं पर भी दृष्टिपात किया और उनके उत्पादनों में नाना प्रकार की उन्नतियाँ कीं किन्तु इन कृषि सम्बन्धी प्रयोगों में खाद सम्बन्धी प्रयोग प्रमुख हैं जिनका वर्णन नीचे दिया जा रहा है :—

खाद सम्बन्धी प्रयोग—सजीव और निर्जीव खादें, पशु बाड़े की खाद और गोबर, कम्पोस्ट, खली आदि के सम्बन्ध में अन्वेषण किये गये। इसके साथ रासायनिक खादों की भी परीक्षा की गई। इस प्रकार कुल ५००० खाद सम्बन्धी परीक्षण हुये। ये परीक्षण धान, गेहूँ, ज्वार, मूंगफली, बाजरा तथा अन्य तिलहन, दालों पर किये गये। अत्यन्त महत्वपूर्ण परिणाम यह निकाला गया कि फसलों के लिये किसी न किसी रूप में नाइट्रोजन की आवश्यकता है। भारतवर्ष में परीक्षण-स्थानों में कोई ऐसा स्थान नहीं मिला, जहाँ नाइट्रोजन की आवश्यकता न हुई हो। इसकी पूर्ति के लिये खली की खाद तथा अमोनियम सल्फेट का प्रयोग किया गया। अमोनियम सल्फेट धानों के लिये बड़ा उपयोगी सिद्ध हुआ जिसके फलस्वरूप उत्तर प्रदेश तथा काश्मीर में ७०% और बंगाल में २१–२४% धान की उपज में वृद्धि हुई। खली के द्वारा ११०से १६०% वृद्धि सम्भव हो सकी।

हरी खाद के प्रयोगों पर विचार करने से ज्ञात होता है कि उसकी नाइट्रोजन प्राप्त करने में अमोनियम सल्फेट या खली से कम खर्च लगता है इसलिए उन सभी क्षेत्रों में जहाँ पानी की व्यवस्था है, हरी खाद को प्रोसाहन दिया गया। हरी खाद के रूप में प्रति एकड़ ३०–४० पौंड नाइट्रोजन देने से उपज में २२–४०% वृद्धि सम्भव हो सकी है।

इस बात का कोई भी प्रमाण नहीं है जिनसे यह प्रकट होता हो कि सजीव खाद के बिना कृत्रिम उर्वरकों का बार बार प्रयोग करने से मिट्टी को हानि पहुँची हो किन्तु अकेले अमोनियम सल्फेट का बार बार कई वर्षों तक प्रयोग करने से उपज में कमी अवश्य आ जाती है। गेहूँ के साथ जो खाद सम्बन्धी प्रयोग हुए हैं उनमें ६ से ६३% तक उत्पादन में वृद्धि सम्भव हो सकी है। मध्यप्रान्त में गेहूँ के साथ किये गये प्रयोगों से यह देखा गया है कि अमोनियम सल्फेट को जब बीज के साथ

डाला जाता है तो अत्यन्त लाभ होता है और लोना या सोडियम नाइट्रेट को मिट्टी की ऊपरी सतह पर छिडकने से अधिकाधिक लाभ होता है। बीज बोते समय यदि बाँसे में होकर उर्बरक को भी डाल दिया जाय तो प्रति एकड़ दूनी उपज होती है। पूना में किये गये प्रयोगों से स्पष्ट है कि नाईट्रोजन उर्बरकों को बीज के साथ डाल देने से अधिक लाभ होता हैं। कोयम्बटूर में होने वाले परीक्षणों से ज्ञात हुआ है कि अकेले नाइट्रोजनीय या फासफोरसीय उर्बरकों के प्रयोग से उपज में ह्रास हुआ किन्तु दोनों को मिलाकर प्रयोग करने से आशातीत वृद्धि हुई। यह वृद्धि सबसे खराब खेतों में अधिकतम थी। मैसूर में पानी पर निर्भर रहने वाली फसलों के लिये नाइट्रोजन के साथ फासफेट के प्रयोग की अत्यन्त आवश्यकता है। धारवाड़ में ज्वार के साथ पशुओं के बाड़े की खाद खेत में मिट्टी के ऊपर फैलाकर खली की खाद डालने से ३ गुना उपज हुई। फासफेटन्यून विहार की मिट्टियों में नाइट्रोजन-उर्बरकों से लाभ हुआ, साथ में फासफेट भी डालना आवश्यक है। काली मिट्टी के क्षेत्रों में बाड़े की खाद को अक्टूबर की अपेक्षा खेतों में अगस्त को महीने में डालने से अधिक लाभ हुआ। सजीव तथा निर्जीब खादों को एक साथ मिलाकर डालने से पृथक पृथक डालने की अपेक्षा अधिक उपज हुई।

उत्तर प्रदेश में हरी खादों के प्रयोग से जो गेहूँ की फसल पर हुये हैं, पता चला है कि सात आठ सप्ताह की सनई को हल चलाकर खेत में जोत देने से उतना लाभ नहीं होता जितना कि कम समय तक उगी हुई सनई के जोत देने से होता है। लायलपुर में हरी खाद के साथ प्रति एकड़ १० पौंड नाईट्रोजन (अमोनियम सल्फेट के रूप में) डालने से हरी खाद और १० पौंड सोडियम-नाइट्रेट की नाइट्रोजन से अच्छी उपज हुई। पंजाब में देखा गया किसी भी फसल को यदि उचित दूरी पर उगाया जाय तो उपज में २५% वृद्धि हो सकती है।

अलसी के साथ उत्तर प्रदेश तथा मध्यप्रदेश में जो प्रयोग हुये उनमें नाइट्रोजिन या फास-फोरस या (नाइट्रोजन या फासफोरस + गोबर) या अमोनियम सल्फेट के प्रयोग से कोई लाभ न हुआ। फलों के सम्बन्ध में साबुर में देखा गया कि फल टूटने के पश्चात आमों में यदि गोबर या अमोनियम सल्फेट छोड़ा जाय तो दूसरे वर्ष अधिक बौरें तथा फल मिलेगें।

अन्यकार्य—मिट्टी निरीक्षण, सूखी खेती, कृषि सम्बन्धी अन्तरिक्षविद्या, गाँव सम्बन्धी योजनायें, अखिल भारतीय कम्पोस्ट योजना, औषधि सम्बन्धी प्रयोग एवं अन्वेषण समय समय पर होते रहे। मिट्टी परीक्षण के सम्बन्ध में पहले मिट्टी के बारे में बर्तमान जानकारी को एकत्र करके उसकी परीक्षा करने का सुझाव रखा गया। निर्णय के अनुसार मिट्टी परीक्षण कार्य १९४२ ई० से प्रारम्भ कर दिया गया। ऋतु सम्बन्धी जानकारी के लिये "किसानी—मौसमी—पत्रिका" निकाली गई और रेडियो द्वारा भी समय समय पर मौसम की सूचना दी गई। काम को आधुनिकतम रखने के लिये परिषद की प्रगति की आलोचना के लिये विदेशों से विशेषज्ञों को बुलाया गया जो भविष्य के लिये सुझाव दे। १९३६-३७ में सर जान रसल, १९४४ में शूहर्ट फिर ए० बी० स्टेवर्ट को यहाँ बुलाया गया जिन्होंने भारतीय कृषि में सुधार लाने के लिये खाद सम्बन्धी अनेक सुझाव दिये।

उन्नत जाति के अन्नों की उपज से १०-१५% उत्पादन में वृद्धि हुई है जबकि परिषद ने इस कार्य में १ करोड़ से कुछ ही अधिक रुपये खर्च किये। अतः अविभाजित भारत की २० करोड़

एकड़ में होने वाली उपजों में से केवल ८ करोड़ १० लाख एकड़ में उगाये धान तथा ३½ करोड़ एकड़ में बोये गेहूँ का लेखाजोखा किया जाय तो धान की उपज २ करोड़ ७ लाख टन तथा गेहूँ की उपज ६० लाख होगी। यदि उन्नत जातियों के सूत्रपात से प्रति एकड़ ¼ मन की भी वृद्धि हुई तो कुल पैदावार २ करोड़ ६० लाख मन होती है जिसका दाम १० रुपये मन के हिसाब से २६ करोड़ रुपये होता है। सच पूछा जाय तो भारत में कृषि अनुसंधान पर जो कुछ खर्च होता है वह बहुत कम है और प्रति वर्ष प्रति व्यक्ति ३ पाई और कुल क्षेत्र पर प्रति एकड़ १ पाई से भी कम खर्च किया जाता है। यह खर्च संयुक्त राष्ट (यू० के०) के १/३ से भी कम है जहाँ की आबादी भारत की १/८ और क्षेत्रफल १/१६ है। सन् १९४९ में भारतीय सरकार ने कृषि पर २¼ करोड़ रुपये खर्च करने का निश्चय किया जिसमें प्रति व्यक्ति ११ पाई खर्च होगा जबकि यू० के० में प्रति व्यक्ति २ रुपये, कनाडा में २० रुपये १४ आने, संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में ७७ रुपये ९ आने ११ पाई है। इस प्रकार से यद्यपि भारतीय सरकार ने जहाँ पंचवर्षीय योजनाओं में खर्च बढ़ा दिया है वहीं पर स्थायी रूप से भारतीय कृषि को क्या दान मिलेगा और क्या लाभ होगा अभी नहीं कहा जा सकता। स्पष्ट तो इतना ही है कि भारत में कृषि अनुसंधान पर अधिक खर्च की आवश्कता है।

क्या आप जानते हैं ?

भारत में कांच और चीनी मिट्टी उद्योग

१. भारत के नये और बढ़ते हुए उद्योगों में कांच और चीनी मिट्टी उद्योग का प्रमुख स्थान है। हाल के अनुमानों से पता चला है कि देश में हर साल ३ करोड़ ५० लाख के कांच के और ३ करोड़ ३० लाख रु० मूल्य के चीनी के सामान बनाये जाते हैं।

२. पिछले वर्ष केवल कांच का उत्पादन उससे पिछले साल के उत्पादन से १३ प्रतिशत अधिक रहा। विशेष रूप से कांच की चादरें, थरमस की बोतलें तथा साधारण बोतल आदि का उत्पादन काफी रहा।

३. दूसरी योजना में चीनी मिट्टी उद्योग के लिए कोई व्यवस्था नहीं की गयी। किन्तु फिर भी पिछले साल उत्पादन १८ प्रतिशत बढ़ा। सफाई आदि के काम में आने वाले समान, पालिशदार नलियां, हाईटेन्शन इन्सुलेटर तथा खाने–पीने के काम आने वाले बर्तन का उत्पादन काफी हुआ।

४. जैसे जैसे चीनी मिट्टी उद्योग का विकास हो रहा है और बिजली का उत्पादन बढ़ रहा है, वैसे वैसे हाई टेन्शन इन्सुलेटरो की मांग बढ़ती जा रही है। इस मांग को पूरा करने के लिए सरकारी पार्सलीन कारखाना उनका काफी उत्पादन कर रहा है। आशा है कि १९६० तक इस तरह के २ कारखाने और काम करने लेगेंगे। पिछले साल से देश में दांत आदि बनने के काम आने वाली पोर्सलीन का व्यापारिक पैमाने पर उत्पादन शुरू हो गया है।

५. कांच तथा चीनी मिट्टी से बनने वाली अन्य नयी चीजों का उत्पादन बढ़ाने की कोशिश की जा रही है। हाल में काँच तथा चीनी मिट्टी उद्योग ने एक टेक्निकल दल नियुक्त किया है। दल यह पड़ताल करेगा कि कांच उद्योग का किस क्षेत्र में विकास हो सकता है।

६. देश में बहुत अच्छी किस्म के चश्मे के शीशे बनने लगे हैं। इससे पता चलता है कि देश का कांच उद्योग नई नई तथा उपयोगी वस्तुएं बना सकता है। हमारी कांच उद्योग की उन्नति का श्रेय कलकत्ता के सेन्ट्रल ग्लास एण्ड सेरेमिक रिसर्च इंस्टीट्यूट को है।

अन्तरिक्ष में मानव-यात्रा की सम्भावना

विज्ञान के उत्कर्ष का इतिहास वस्तुतः मानव सभ्यता के अभ्युदय और प्रगति का इतिहास है। विज्ञान की सहायता से मानव प्रकृति की शक्तियों को पग-पग पर पराजित करता हुआ अभ्युदय के पथ पर बढ़ता आया है और आज उसी की अपार क्षमता के बल पर उसने अन्तरिक्ष की गहराइयों में प्रवेश कर उसके अज्ञात रहस्यों का उद्‌घाटन करने और वहाँ मानव-सभ्यता की कीर्ति-पताका फहराने का बीड़ा उठाया है। पृथ्वी की परिक्रमा करने वाले मानव-निर्मित उपग्रह और सौरमण्डल में स्थापित मानव-निर्मित ग्रह इस दिशा में उसकी विस्मयकारी सफलता का बोध कराने के साथ-साथ यह विश्वास दिलाते हैं कि एक न एक दिन सौर-मण्डल में उन्मुक्त विहार करने का मानव-स्वप्न निश्चय ही पूरा होगा। सौर-मण्डल में मानव-निर्मित ग्रह की स्थापना की विस्मयकारी सफलता को हम अभी भूल भी नहीं पाये थे कि उससे भी अधिक महत्वपूर्ण सफलता का समाचार पाकर समस्त संसार विस्मय विमुग्ध रह गया है। अभी तक वैज्ञानिकगण केवल यह आशा करते थे कि मनुष्य न केवल राकेट उड़ान के दौरान पड़ने वाले प्रभावों को सह सकता है, बल्कि अन्तरिक्ष में सुरक्षित रह सकता है। इस सम्बन्ध में अनेक निरीक्षण भी किये गये, परन्तु कोई निश्चित परिणाम प्राप्त नहीं हो सका। लेकिन २८ मई को अमेरिकी वैज्ञानिकों ने जो परीक्षण किया उससे यह असन्दिग्ध रूप से प्रमाणित हो गया है कि प्राणी न केवल राकेट उड़ान के प्रारम्भिक चरणों में पड़ने वाले भारी दबाव और अन्य प्रभावों को सह सकता है, बल्कि अन्तरिक्ष में जाकर सकुशल पृथ्वी पर वापस लौट सकता है। यद्यपि यह परीक्षण बन्दरों पर किया गया, परन्तु इससे अन्तरिक्ष उड़ान में जीवन के सुरक्षा तथ्यों पर उल्लेखनीय प्रकाश पड़ा है। संक्षेप में, अन्तरिक्ष-यात्रा के लक्ष्य की ओर मानव ने एक और कदम आगे बढ़ा लिया है। अमेरिका में जाने वाले अन्तरिक्ष-यात्रियों का पहला दल चुना जा चुका है और बन्दरों की सफल अन्तरिक्ष-यात्रा से उन्हें अन्तरिक्ष-यात्रा के लिये तैयार करने में महत्व-पूर्ण सहायता प्राप्त होगी। निश्चय ही अब मनुष्य की बारी आने वाली है। जिस प्रकार आज हमने बन्दरों की अन्तरिक्ष यात्रा का समाचार सुना है, उसी प्रकार एक दिन मानव की अन्तरिक्ष यात्रा का समाचार सुनकर विस्मय-विमुग्ध रह जायेंगे। हममें से शायद बहुत से उस शुभ दिन को देखने के लिये जीवित रहें, जब वे अपने कानों से अन्तरिक्ष में विचरण करते हुए मानव से वहाँ का आँखों देखा हाल और अन्तरिक्ष में मानव सभ्यता की विजय का तूर्य-नाद सुन सकेंगे।

यह परीक्षण केवल इसी लिए महत्वपूर्ण नहीं था कि उसमें दो बन्दर अन्तरिक्ष की यात्रा कर सकुशल वापस लौट आये हैं, बल्कि यह परीक्षण इसलिए भी अत्यधिक महत्वपूर्ण है, क्योंकि इसमें उन सभी बातों के सम्बन्ध में परीक्षण किये गये जो मानव की अन्तरिक्ष उड़ान से किसी न किसी रूप में सम्बन्धित थीं। संक्षेप में, इस परीक्षण द्वारा मानव के अन्तरिक्ष उड़ान की दृष्टि से अत्यधिक महत्वपूर्ण जीव-विज्ञान विषयक अनेक महत्वपूर्ण प्रश्नों का उत्तर प्राप्त करने का प्रयत्न किया गया है।

यह परीक्षण जूपिटर प्रक्षेपणास्त्र के द्वारा राष्ट्रीय नागरिक उड्डयन एवं अन्तरिक्ष प्रशासन तथा अमेरिकी स्थल तथा नभसेना ने मिलकर किया। जूपिटर राकेट की नाक में एक शंकु लगा था, जो अनेक सूक्ष्म यन्त्रों से पूरी तरह सुसज्जित था। शंकु के अन्दर दो बन्दर विशिष्ट प्रकार की नलिकाओं में बन्द थे। ७ पौण्ड वजन वाला बन्दर २५० पौण्ड वजन की एक वातानुकूलित कक्षा (कैपस्यूल) में तथा १ पौण्ड वजन का छोटा बन्दर काँच और रबर से बनी विशेष कक्षा (कैपस्यूल) में शंकु के तल में बन्द था। बन्दर समत इस कक्षा का वजन ५६·५ पौण्ड था। ये कक्षा सूक्ष्म यन्त्रों से पूरी तरह सुसज्जित थे। इन कक्षों में बन्दरों को आक्सीजन की सप्लाई करने वाले तथा निःसृत होने वाली कार्बन-डाइआक्साइड गैस को सोखने वाले विशेष प्रकार के यन्त्रों की व्यवस्था थी। एक ऐसा भी यन्त्र कक्षों में मौजूद था, जो कक्ष (कैपस्यूल) के अन्दर के वातावरण में नमी की आवश्यकता से अधिक होने पर उसे कम करने का कार्य करता था। इसके अतिरिक्त कक्ष के तापमान को समान रखने के लिये भी विशेष प्रकार के ताप-नियन्त्रक यन्त्र की भी व्यवस्था थी। विद्युदणु तरंगों द्वारा बन्दरों की श्वास प्रक्रिया, शरीर का तापमान, शरीर पर पड़ने वाले दबाव और हृदय की गतिविधि इत्यादि का विवरण देने वाले सूक्ष्म यन्त्र भी इन कक्षों में लगे थे। बड़े बन्दर को अन्तरिक्ष उड़ान के लिए बहुत पहले से प्रशिक्षण दिया जा रहा था। वह एक विशेष प्रकार की अन्तरिक्ष पोशाक धारण किये था और सर पर एक टोप लगाये था। इस पोशाक और टोप में बन्दर के शरीर पर उड़ान की प्रक्रिया अंकित करने वाले सूक्ष्मयन्त्र भी लगे थे। इस बन्दर को यह भी प्रशिक्षण दिया गया था कि उड़ान के दौरान वह एक छोटा सा बटन दबा दे, ताकि यह पता चल सके कि वह अन्तरिक्ष में शारीरिक कार्य में समर्थ है या नहीं।

शंकुयुक्त जूपिटर प्रक्षेपणास्त्र २८ मई को प्रातःकाल कैप कैनावरल स्थित परीक्षणस्थल से १५०० मील दूर स्थित लक्ष्य पर छोड़ा गया। प्रक्षेपणास्त्र अन्तरिक्ष में ८०० मील की ऊँचाई तक पहुँचा। परीक्षण स्थल से लक्ष्य स्थान तक की उड़ान में कुल १५ मिनट लगे। इन १५ मिनटों में से ६ मिनट का समय ऐसा था, जब शंकु के अन्दर भारहीनता की स्थिति स्थिर रही। पृथ्वी के वायु-मण्डल में प्रवेश करते समय शंकु की गति १० हजार मील प्रति घण्टा तक पहुँच गई थी। पूर्व निर्धारित लक्ष्य के अनुसार यह शंकु दक्षिणी अतलान्तक महासागर में गिरा, जहाँ से ६० मिनट बाद अमेरिकी नौसेना के गोताखोरों ने उसे प्राप्त कर लिया। समुद्र से शंकु के प्राप्त होते ही इस बात की पुष्टि हो गई कि बन्दर जीवित हैं। एक विशेष जहाज शंकु को लेकर तुरन्त सैन जुआन (प्वेर्टोरिको) रवाना हो गया है। जहाँ पर एकत्र वैज्ञानिक शंकु में परीक्षणार्थ रखी गई सभी वस्तुओं की जांच की। अमेरिकी वैज्ञानिकों के अनुसार इस परीक्षण के निम्न लक्ष्य थे :

(१) बड़े बन्दर 'एवल' को अन्तरिक्ष में भेज कर इस बात का पता लगाना कि गुरुत्वाकर्षण शक्ति के अभाव में क्या मनुष्य अपने अवयवों से आवश्यक कार्य ले सकेगा;

(२) छोटे बन्दर 'वेकर' द्वारा इस बात का पता लगाना कि भारहीनता का मनुष्य के शरीर और मस्तिष्क पर क्या प्रभाव पड़ेगा;

(३) जीवाणु-विज्ञान की विभिन्न प्रक्रियाओं—विशेष रूप से मानवरक्त तथा मक्का, सरसों इत्यादि के सूक्ष्म कोषों पर विकिरण के प्रभावों का अध्ययन करना;

(४) सूक्ष्म कोषों के विभाजन और गर्भ धारण क्रिया पर भारहीनता और विकिरण के प्रभावों का अध्ययन करना।

इन चारों उद्देश्यों की पूर्ति के लिए शंकु में जो अलग-अलग परीक्षणात्मक वस्तुएं रखी गई थीं, वह ठीक दशा में प्राप्त हो गई हैं।

संक्षेप में, इस परीक्षण का उद्देश्य यह पता लगाना था कि राकेट की उड़ान, तेज आवाज कम्पन, गुरुत्वाकर्षण शक्ति की हीनता तथा गति के तेज और धीमे होने का मानव के शरीर और मस्तिष्क पर क्या प्रभाव पड़ेगा। बन्दरों के अतिरिक्त शंकु में जीवाणुओं और वनस्पतियों के कुछ नमूने भी इस लिए रखे गए ताकि उन पर विकिरण और भारहीनता के होने वाले प्रभावों का अध्ययन किया जा सके। इन वस्तुओं में मानव रक्त भी सम्मिलित था। अन्तरिक्ष से वापस आए इन नमूनों का अध्ययन करने पर वैज्ञानिकों को अन्तरिक्ष उड़ान के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण बातों का पता चलेगा। इस परीक्षण से यह भी पता चलेगा कि विभिन्न वस्तुओं के सूक्ष्म कोषों की गतिविधियों पर, गर्भ धारण होने की प्रक्रिया पर तथा सूक्ष्म कोषों के विभाजन पर भारहीनता का क्या प्रभाव पड़ता है।

शंकु में मानव रक्त का नमूना रखने का उद्देश्य इस बात का पता लगाना था कि मानव रक्त पर गुरुत्वाकर्षण की शक्तियों और विकिरण का क्या प्रभाव पड़ता है। इस के अलावा शंकु में प्याज की कुछ गांठे भी रखी गई थीं, ताकि यह मालूम हो सके कि ब्रह्माण्ड किरणों का प्रभाव होने के बाद भी क्या उन में पुनः अंकुर फूट सकते हैं। इस बात का भी अध्ययन किया जाएगा कि अन्तरिक्ष से जो प्राणी लौटे हैं, उनकी प्रजनन शक्ति पर कोई असर पड़ा है या नहीं।

—संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के सूचना विभाग के सौजन्य से

विज्ञान वार्ता

जीवन सम्बन्धी रहस्य का उद्घाटनः

पृथ्वीमण्डल पर दृष्टिगोचर होने वाली समस्त बनस्पति में एक ऐसी रासायनिक प्रक्रिया निरन्तर जारी रहती है, जिसके द्वारा पत्तियाँ सूर्य के प्रकाश को सोख कर पानी और कार्बन के संयोग से कार्बोहाइड्रेटे का निर्माण करती हैं। यही कार्बोहाइड्रेट मनुष्य द्वारा खाद्य-पदार्थों के रूप में प्रयुक्त होता है। पारिभाषिक शब्दों में, इस रासायनिक प्रक्रिया को फोटोसिनथेसिस कहते हैं। इस प्रकार की प्रक्रिया में ऑक्सीजन गैस का निःसरण होता है। सुनने में यह प्रक्रिया बहुत ही सामान्य और सरल प्रतीत होती है लेकिन वस्तुतः बात ऐसी नहीं है। सुनने में सहज प्रतीत होने वाली यह रासायनिक प्रक्रिया प्रकृति का एक सबसे जटिलतम और गूढ़ रहस्य है। कोई भी यह नहीं जानता कि फोटो सिनथेसिस नामक इस प्रक्रिया के अन्तर्गत वस्तुतः क्या परिवर्तन और प्रक्रिया घटित होती है। यदि वैज्ञानिक इस रहस्य को जान जाएँ तो वे कृत्रिम रूप से बड़े परिमाण में खाद्य-पदार्थों का निर्माण कर पृथ्वी से भोजन का अभाव दूर कर दें।

फिर भी, वैज्ञानिक इस गूढ़ रहस्य को सुलझाने के लिए निरन्तर प्रयत्नशील हैं और इधर कुछ वर्षों में किए गये अनुसन्धान से इस प्रक्रिया पर कुछ और अधिक प्रकाश पड़ा है। अब एक अमेरिकी वैज्ञानिक प्रोफेसर एलसोफ एच० कौरबिन ने फोटोसिनथेसिस प्रक्रिया से सम्बन्धित एक और रहस्य का उद्घाटन करने में सफलता प्राप्त की है। श्री कौरविन पिछले १० बर्षों से इस रहस्य का उद्घाटन करने के लिए अनुसन्धान कर रहे हैं। उन्होंने अपने अनुसन्धान द्वारा यह पता लग लिया है कि इस प्रक्रिया के अन्तर्गत किस समय पानी, ऑक्सीजन और उद्जन में बंट जाता है। जब इस समस्या पर विचार किया जाएगा कि जल और कार्बन डाइऑक्सायड मिल कर किस प्रकार खाद्य-पदार्थ का निर्माण करते हैं तो इस खोज के महत्व का तुरन्त अनुभव हो जाएगा।

इस रासायनिक प्रक्रिया के तीन मुख्य पहलू हैं :

१—कार्बन डाइऑक्साइड से कार्बन की प्राप्ति, २—जल से उद्जन का निःसरण और ३—सूर्य से प्राप्त शक्ति का उपयोग। वैज्ञानिक अभी यह पता नहीं लगा पाए हैं कि पत्तियाँ सूर्य की रश्मियों से जो शक्ति प्राप्त करती हैं, उनका किस प्रकार उपयोग होता है। वैज्ञानिक गणों को केवल यह ज्ञात है कि कार्बन डाइआक्साइड से कार्बन किस तरह प्राप्त किया जा सकता है। परन्तु शेष दो पहलुओं के बारे में उन्हें कोई जानकारी नहीं है।

इस बात का पता लगाने के लिए कि जल किस प्रकार उद्जन और आक्सीजन में परिणत किया जाता है, डाक्टर कौरबिन और उनके सहयोगियों ने अनेक सूक्ष्म परीक्षण किए। इन परीक्षणों के सिलसिले में उन्होंने कणों के नमूने तैयार किये। ये कण इतने सूक्ष्म होते हैं कि अत्यधिक शक्तिशाली अनुवीक्षण यन्त्र के द्वारा भी इन्हें देख पाना सम्भव नहीं। उक्त नमूनों के तैयार हो जाने से प्रत्येक तत्व की स्थिति जानने में आसानी हो गई है।

हालैण्ड के दो वैज्ञानिको ने एक नए भौतिकी सिद्धान्त की खोज की है, जिससे यह पता चलता है कि सूर्य से प्राप्त होने वाली शक्ति एक सूक्ष्म कण से होकर दूसरे सूक्ष्म कण को उस समय तक स्थानांन्तरित होती रहती है, जब तक कोई सूक्ष्म कण उसका उपयोग करने में समर्थ नहीं हो जाता। इस प्रक्रिया में शक्ति का तनिक भी ह्रास नहीं होने पाता।

ध्वनि तरंगों का प्रयोग:

बेस्टिंग हाउस कार्पोरेशन ने धातुओं को जोड़ने के लिए अत्यधिक शक्तिशाली ध्वनि तरंगों का उपयोंग करने में सफलता प्राप्त कर ली है। यह विधि आगे चल कर बहुत उपयोगी सिद्ध हो सकती है। इस विधि द्वारा धातुओं की ऊपरी सतह के कण पिघल कर आपस में मिल जाते हैं। एक विशेष प्रकार के यन्त्र द्वारा विद्युतशक्ति को अत्यधिक प्रबल ध्वनि तरंगों में परिणत कर दिया जाता है। दबाव और कम्पन के फलस्वरूप धातु की सतह पर चढ़ी ऑक्साइड की सतह नष्ट हो जाती है और धातुओं के कणों का परस्पर सभागम हो जाता है। इस प्रकार दो धातुएँ आपस में जुड़ जाती हैं।

ब्रह्माण्ड की आयु १३ अरब वर्ष:

माउण्ट पालोमार (कैलिफोर्निया) स्थित २००इंच व्याज वाले टेलिस्कोप द्वारा ब्रह्माण्ड के स्वरूप और विस्तार के बारे में महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त की गई हैं। निरीक्षणों के आधार यह अनुमान लगाया गया है कि ब्रह्माण्ड की आयु ७ अरब वर्ष से लेकर १३ अरब वर्ष तक हो सकती है।

अंधों को दृष्टि-दान :

अमेरिकी वैज्ञानिक ऐसे चश्मे तैयार करने के लिए प्रयत्नशील है, जिनके द्वारा कई हजार कम अन्धे व्यक्तियों को दृष्टि मिल सकेगी। लगभग २८१ रोगियों पर इस प्रकार के चश्मों की सफल परीक्षा भी की जा चुकी है। प्रकार के चश्में का शीशा प्रकाश स्तम्भों में प्रयुक्त होने वाले शीशे से बहुत कुछ मिलता-जुलता है। इस चश्मे का शीशा पारदर्शक प्लास्टिक से बनेगा।

ब्रह्माण्ड किरणों के सम्बन्ध में नई जानकारी:

अन्तर्राष्टीय भू-भौतिक वर्ष के दौरान में किए गए परीक्षणों और निरीक्षणों से ब्रह्माण्ड किरणों के उद्भव, स्वरूप, गुणों और प्रभाव के सम्बन्ध में नई जानकारी प्राप्त हुई है। उन्होंने यह पता लगाया है कि ब्रह्माण्ड किरणें वस्तुतः किरणें नहीं बल्कि ऐसे प्रचण्ड वेगयुक्त कण हैं, शक्ति में जिनकी समता किसी अन्य से नहीं हो सकती। पृथ्वी के वायुमण्डल पर जिन ब्रामण्ड किरणों का निरन्तर प्रहार होता है, उसमें ६० प्रतिशत उद्जन अणुओं की न्यष्टियों का निर्माण करने वाले प्रोटोन होते हैं, शेष १० प्रतिशत में हिलियम गैस तथा इससे कुछ भारी अणु की न्यष्टियाँ होती हैं। मूल ब्रह्माण्ड किरण कण पृथ्वी की सतह तक नहीं पहुँच पाते बल्कि वायुमण्डल में टकरा कर बिखर जाते हैं। समय व्यतीत होने के साथ उनसे निःसृत विकिरण में अन्तर आ जाता है।

फसल को हानि पहुँचाने वाले कीड़ों का विनाश:

अमेरिका के दो वैज्ञानिक एक ऐसी छोटी आणविक भट्ठी तैयार करने के सम्बन्ध में परीक्षण कर रहे है,जिस का उपयोग खाद्यान्न उत्पादन में वृद्धि के लिए किया जा सकता है। इस आणविक भट्ठी से निकलने वाली गामा किरणें और न्यूट्रान फसलों को हानि पहुँचाने वाले कृमियों को नष्ट कर देंगे। अभी इन कीड़ों को नष्ट करने के लिए खर्चीले रासायनिक पदार्थों का उपयोग किया जाता है। यह छोटी आणविक भट्ठी १ मिनट में ७ हजार वर्ग फुट भूमि के कीड़ों और मकोड़ों को नष्ट कर देगी।

सस्ती कार का निर्माण:

अमेरिका की एक रासायनिक कम्पनी मोटरकारों के निर्माण के लिए पृथ्वी में विशाल परिणाम में सुलभ सिलिकोन तत्व के उपयोग करने के बारे में विचार कर रही है। यह तत्व बालू और चट्टानों में मिलता है और प्रचुरता में आक्सीजन के उपरान्त इसी का स्थान है। इसे शुद्ध करके तांबा तथा अल्यूमीनियम इत्यादि धातुओं को अधिक मजबूत और टिकाऊ बनाने के लिए इस्तेमाल किया जाता है। अनेक रासायनिक पदार्थों के निर्माण के लिए भी इसका प्रयोग किया जाता है।

अमेरिकी मोटर निर्माता दीर्घकाल से सिलिकोन तत्व के मिश्रण से तैयार मजबूत अल्यूमीनियम धातु से मोटर के इंजन तैयार करने के सम्बन्ध में अनुसंधान कर रहे हैं और अब यह सम्भव दीखता है कि निकट भविष्य में इस प्रकार के पदार्थ से मोटरों के सस्ते इंजनों का निर्माण होने लग जाएगा। ये इंजन सस्ते होने के साथ-साथ सामान्य इंजनों से ३० प्रतिशत हल्के होंगे तथा इन में कम पेट्रोल भी खर्च होगा। इंजनों के हल्के होने पर टायर इत्यादि भी कम घिसेंगे।

दर्द नाशक नई औषधि:

अमेरिकी चिकित्साशास्त्रियों ने अनुसन्धान करके दर्द हरने वाली एक ऐसी औषधि का विकास किया है जो पीड़ा कम करने वाली औषधि 'मोरफीन' से १० गुना अधिक कथा 'कोडीन से ५० गुना अधिक शक्तिशाली है। यह: मारफीन से कम हानिकारक है। यह सर्वथा एक नई औषधि है और इसके निर्माण में अफीम का बिल्कुल प्रयोग नहीं किय ा जाता। आशा है कि पीड़ा को रोकने में यह औषधि अत्यधिक प्रभावशाली सिद्ध होगी।

हृदय रोगों के अपरेशन के लिए नयी विधि का अविष्कार:

अभी तक हृदय रोगों सम्बन्धी आपरेशन के लिए ६ से ८ मिनट की अवधि समय की सुरक्षित सीमा समझी जाती रही है, लेकिन अब अमेरिकी चिकित्सकों ने एक ऐसी नयी विधि का अविष्कार किया है, जिसके अनुसार हृदय का आपरेशन जितने समय तक आवश्यक हो बिना किसी खतरे के किया जा सकता है। इसके लिए नेशविल (टेनेसी) के वेटरन्स ऐडमिनि-स्ट्रेशन अस्पताल के डा० फ्रैंक गोल्लन ने एक हृदय-फेफड़ा यन्त्र तैयार किया है, जिसकी सहायता से शरीर में आक्सिजन युक्त और शीत रक्त संचालित कर शरीर को ठण्डा कर लिया जाता है। ऐसा कर देने से काफी देर तक हृदय का आपरेशन किया जा सकता यह विधि रोगी के लिए पहले की अपेक्षा अधिक सुरक्षित सिद्ध हुई है।

जमे हुए रक्त के थक्कों को गलाने की नयी औषधि :

'दि ओर्थी फार्मेश्युटिकल कार्पोरेशन' नामक फर्म ने सूचित किया है कि वह 'ऐक्टेस' नामक ऐसी औषधि तैयार करने का प्रयत्न कर रही है, जिसका उपयोग कर के रक्त के जमे हुए थक्कों को गलाया जा सकेगा। यह फर्म 'दि जौन्सन एण्ड जौन्सन कम्पनी की एक शाखा है। उसका कहना है कि नयी औषधि की सहायता से रक्त के उन थक्कों को गलाया जा गसको, जो बांह और पैरों की धमनियों में जम कर रक्त-प्रवाह को अवरुद्ध कर देते हैं। इन धमिनियों में रक्त जम जाने से कभी-कभी मांस के सड़ने का खतरा उत्पन्न हो सकता है। नयी औषधि का प्रयोग रक्त के उन थक्कों को भी गलाने के लिए किया जा ककेगा, जोकि फेफड़े तक रक्त पहुँचाने वाली धमनियों में अचानक जम जाते हैं। इससे कभी-कभी मृत्यु का संकट उत्पन्न हो जाता है।

चेचक के लिए नया टीका :

अमेरिकी डाक्टरों के एक दल ने सूचित किया है कि उस ने एक नया चेचक-विरोधी टीका तैयार किया है. यह टीका पहले परीक्षणों में अत्यन्त प्रभावकारी सिद्ध हुआ है। इस टीके को विकसित करने की घोषणा नोवेल पुरस्कार-विजेता डा० जौन-एफ० ऐण्डर्स और उन के सहयोगी सैम्युएल कैट ने की है। डाक्टरों ने बताया कि नये टीके का प्रयोग २० बच्चों के एक दल पर

किया गया था, जिसके परिणाम बहुत ही अच्छे रहे। टीके से शरीर में चेचक-विरोधी तत्व उत्पन्न हो जाते हैं और रोग से उस की रक्षा करते हैं।

मोतियाविन्द की नयी औषधि :

शिकागो की औषधियों की एक फर्म 'दि आर्मर फार्मैश्युटिकल कम्पनी' ने सूचित किया है कि उस ने 'बल्फा आईमार' नामक एक ऐसा घोल तैयार किया है, जिसके प्रयोग से आँख के मोतियाविन्द इस प्रकार ढीले हो जाते हैं कि आँख को किसी प्रकार की क्षति पहुँचाये बगैर आसानी से हटाया जा सकता है। मोतियाविन्द एक प्रकार के पर्दे होते है, जो आँख की पुतलियों को ढक लेते है, और इस कारण आँख से कुछ दिखलाई नहीं पड़ता। कम्पनी का कहना है कि घोल के प्रयोग से आँख की पुतली के बन्धन ढीले हो जाते हैं। फिर, पुतलियाँ अपने ऊपर झिल्ली से पृथक् हो जाती हैं, जिससे मोतियाविन्द को हटा लेना आसान हो जाता है।

धूप-दाह के पीड़ितों के लिए नयी औषधि :

पेन्सिल्वेनिया विश्वविद्यालय के चिकित्सा-अनुसन्धानकर्ताओं ने घोषणा की हैं कि उन्होंने 'ट्रायेमसिनालोन' नामक एक ऐसा घोल तैयार किया है, जो भयंकर धूप-दाह के कारण होने वाली पीड़ा कों दूर करने में अत्यन्त प्रभावकारी सिद्ध हुआ है। विश्वविद्यालय के चिकित्सा विशेषज्ञों का कहना है कि धूप-दाह से पीड़ित १४ व्यक्तियों के उपचार में इस घोल की परीक्षा की गयी। उन्हें गोली के रूप में यह घोल दिया गया। इसके खाने के २४ घण्टे बाद उन सबकी पीड़ा, सर्दी और बुखार बिल्कुल दूर हो गया। इस घोल का सम्बन्ध 'कार्टिसोन' नामक औषधि से है, जिस का प्रयोग अधिकांश जलन वाले रोगों में होता है।

सम्पादकीय

मुक्ति का मार्ग

विज्ञान की उन्नति राष्ट्र की उन्नति है। जो राष्ट्र जितना आगे है, विज्ञान की दृष्टि से उतना ही सुदृढ़ है। विज्ञान के दुर्ग के बिना अब सुरक्षा की आशा निराशामात्र है। यही कारण है कि विश्व के प्रमुख राष्ट्रवैज्ञानिकप्रगति के लिये इतने उतावले हो रहे हैं। फिर विज्ञान तो 'नितनूतन' है। प्रकृति की ही भांति वह अपना कलेवर बदलता रहता है। कल वह कौन रूप धारण करेगा, निश्चित नहीं। इसी अनिश्चितता के कारण सभी राष्ट्र उसके मर्म को जानने के लिये उत्सुक हैं। और उसकी खोज में विपुल धनराशि पानी की तरह बहा रहे हैं। इस अनुसरण में राष्ट्रों को क्या प्रतिफल मिलेगा, यह इतना असंदिग्ध है, कि वे स्वयं उसकी कल्पना नहीं कर पा रहे। हां सबों के अन्तरतमों में इतना अवश्य है कि जो इस मर्म को समझ लेगा उसकी प्रतिष्ठा बनी रहेगी, विश्व में उसी की एकछत्र स्थापना होगी। इस होड में राष्ट्रों ने विज्ञान को अपनी स्वार्थसाधना का यंत्र बना लिया है, अपनी सुरक्षा का कवच और अपनी अहंमन्यता का ढिंढोरा।

जैसे-जैसे विज्ञान आगे बढ़ता जा रहा है, नयेनये अविष्कार होते जा रहे हैं जिनसे सुदूर देशों के प्राणी परस्पर सन्निकट होकर एक दूसरे को समझने का प्रयत्न कर रहे हैं। किन्तु दूरी के इस विलोप से अभी तक वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना स्थापित नहीं हो पाई। ऐसा न होने देने में कतिपय राष्ट्रों का विज्ञान की कुंजी से अधिकृत होना हैं। यद्यपि वैज्ञानिक आविष्कार या अनुसन्धान किसी राष्ट्र विशेष की व्यक्तिगत सम्पत्ति नहीं, किन्तु फिर भी अभी तक राष्ट्र उन्हें अपनी कीर्ति तथा अहंमन्यता के लिये, "ट्रेड सीक्रेट" या व्यापारिक मर्म, बनाये हुये हैं। विशेषतया जब से परमाणु-बम का निर्माण हुआ है, यह प्रवृत्ति जोर पकड़ने लगी है। तब से न जाने, इस दिशा में कितनी प्रगति हुई है, जिसका लेखा-जोखा सब राष्ट्रों के लिये सम्भव नहीं रूस तथा अमेरिका के बीच तनातनी का मुख्य कारण अब और किसी प्रकार का 'वाद' न होकर अधिकाधिक अणु-शस्त्रों का स्वामित्व है। शान्ति के इच्छुक सभी राष्ट्र एक बार इस

'भय के भूत' से स्तम्भित अवश्य हो जाते हैं, जो रातदिन छाया की भांति उनका अनुसरण कर रहा है। 'भूत के भगाने' के लिये उसके शमन की गोष्ठियां अवश्य होती हैं, किन्तु वे एक एक करके उपहास मात्र सिद्ध होती जा रही हैं।

विश्व के समक्ष अब दो ही समस्यायें हैं। एक तो बुद्धिमान प्राणिसमुदाय को अन्नदान तथा दूसरे उसकी सुरक्षा का उपाय। भारत जैसे निरुपाय देश में ये दोनों उपकरण अभी तक उपलब्ध नहीं हैं। उसके समक्ष आदर्श हैं, व्यवहारिक मार्ग नहीं। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् से ही पंचवर्षीय योजनायें देश भर में प्रचारित की गई हैं जिससे अधिकाधिक अन्नोत्पादन के साधन जुट जायँ 'अधिकाधिक लोगों की जीविकार्जन के साधन उपलब्ध हों और राष्ट्र उन्नति करे किन्तु लोगों में ईमानदारी न होने तथा उनके कर्त्तव्यपरायण न होने के कारण आशातीत सफलता नहीं। मिली सुरक्षा के साधन अब जनबल पर निर्भर न हो कर अणुअस्त्रों के स्वामित्व पर आधारित हैं। अभी हमारा देश उस सीमा तक वैज्ञानिक प्रगति नहीं कर पाया, जहाँ वह अपने को आणविक शस्त्रों से सुसज्जित कर सके। हाँ, अहिंसा तथा शन्ति के प्रेमपूर्ण आदर्शों के बल पर वह नैतिक रीति से सुसज्जित है। उसे किसी भी प्रकार के विप्लवकी आंधी हिला नहीं सकती, किन्तु यह आदर्श तभी काम देगा जब दूसरे राष्ट्र भी इसी की अनुकरण करें। शन्ति के अग्रदूत, विध्वंसकशस्त्रास्त्रों से सुसज्जित होकर कुछ कर सकेंगे, ऐसा सोचना बेकार है। इन विध्वंसक शस्त्रास्त्रो के निर्माण में जिस शक्ति का उपयोग किया जा रहा है, वह यदि शन्तिपूर्वक जनकल्याण के लिये नवीन आविष्कारों में लगाई गई तो अन्तरष्ट्रिीय तनातनी का वातावरण समाप्त हो सकेगा, विश्ववन्धुता स्थापित हो सकेगी और विश्व के समन्त प्राणी सुख पूर्वक पेट भर भोजन पा सकेगी। अन्यथा साधन विहीन राष्ट्र इस अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के शिकार बनते रहेंगे और घातक शस्त्रास्त्रो का उपयोग भी उन्हीं पर होता रहेगा। स्वार्थ साधना तथा राज्य लोलुपता आज भी नहीं मिट पाई, यह अत्यन्त लज्जा का विषय है। विज्ञान के अनुगामी राष्ट्रों सम्भवतया विज्ञान की आत्मा से आज तक परिचित नहीं हो पाये। विज्ञान का ध्येय विनाश नहीं, सृजन और पालन है। विज्ञान ब्रह्मा और विष्णु है, रुद्र नहीं किन्तु विज्ञान के अनुगामी स्वयं रुद्र अथवा संहारक बने हुये हैं। विज्ञान तो जन जन की सेवा के लिये है। उसके लिये सभी समान हैं। उसकी उपयोगिता इसी में है कि उससे जनकल्याण का मार्ग प्रशस्त किया जाय न कि कटुता के बीज बोये जायँ।

यदि निष्पक्ष तथा निःस्वार्थ भाव से सभी राष्ट्र एक दूसरे की हित चिंतना करें, एक दूसरे का सुख-दुख-देखें सहें तो संसार से कलह की मूल ही नष्ट हो जाय। न तो कहीं अकाल रहे और न व्याधियाँ। किन्तु एक राष्ट्र दूसरे के हित में अपने स्वार्थों की वलिक नहीं करना चाहता। यदि इसी प्रकार मनोमालिय बढ़ता रहा और विज्ञान की उन्नति कुछ ही राष्ट्रों के हाथ की दासी बनकर रह गयी तो इसमें सन्देह नहीं कि मानवता का अंत हो जावेगा। इस युग के पूर्व सम्भवतः द्वापर में ऐसी युद्धप्रियता विभिन्न राज्यों में थी जिसके परिणाम से दुनिया परिचित है। इस संक्रान्ति से उद्धार के लिए आवश्यक है कि विज्ञान को सभी राष्ट्रों के लिये समान रीति से उन्मुक्त किया

जाय। सभी राष्ट्र आपस में मिलकर उसकी प्रगति में हाथ बटावें और उससे देशवासियों को परिचित करावें। जब तक विज्ञान जन-जन की रुचि नहीं बनेगा, जन-जन से परिष्कृत नहीं होगा, उसके एकांगी विकास से संकट की सम्भावना बनी रहेगी। राजनीति को सदैव एवं सर्वत्र विज्ञान के क्षेत्र से पृथक रखना पड़ेगा। समाचार पत्रों के द्वारा राजनीति को प्राथमिकता न देकर वैज्ञानिक अनुसंधानों को मान्यता देनी होगी तब वह समय जो नित्यप्रति प्रत्येक नागरिक राजनीतिक गुत्थियों को समझाने में लगता है, वैज्ञानिक तथ्यों के चिन्तन में बितावेगा। इससे विश्व भर में विज्ञान के प्रति रुचि उत्पन्न होने के साथ ही, उसकी जन कल्याणकारिणी शक्ति का उसे परिचय मिलेगा। तब विज्ञान की किसी भी शक्ति को चाहे अणु शक्ति हो या कोई दूसरी शक्ति—कोई दूसरा प्रतिद्वन्दी उस आतंक से प्रयुक्त न कर सकेगा, जितना कि उससे अनभिज्ञ होने पर। विज्ञान की प्रगति के लिये यही सुलभ मार्ग है। विज्ञान जीवी बनने के लिये परिश्रमी तथा अध्ययन शील बनना पड़ेगा। बाल-वृद्ध-युवा सबों को विज्ञान से परिचित कराना होगा। उसी के स्वप्न में सोना और जगना पड़ेगा। उसी में साहित्य का निर्माण करना होगा। उसी के माध्यम से धर्म की विवेचन करनी होगी। उसी से मुक्ति मार्ग ढुंढना होगा।

'विज्ञान' के परिवर्तन में प्राप्त होने वाले पत्र और पत्रिकाओं की सूची

क्रम सं०	नाम पत्रिका	पता
१	खाद्य विज्ञान	केंद्रीय खाद्य औद्योगिक अनुसन्धानशाला, मैसूर।
२	साहित्य सन्देश	साहित्य रत्न भण्डार, आगरा
३	ग्राम सुधार	ग्वालियर।
४	आयुर्वेद विज्ञान	खारी बावली, दिल्ली–६।
५	वीणा	इन्दौर।
६	सोवियत भूमि	बाराखम्बा रोड, नई दिल्ली।
७	विज्ञान प्रगति	नई दिल्ली।
८	हिन्दी प्रचारक	हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी-१।
९	भारत सेवक समाज	नई दिल्ली।
१०	संजीवन	संजीवन कार्यालय, पांडीचेरी।
११	कृषि और पशुपालन	लखनऊ।
१२	मध्य प्रदेश सन्देश	ग्वालियर।
१३	शोध पत्रिका	उदयपुर।
१४	द्युलोक	करोल बाग, नई दिल्ली।
१५	भेषजायन	काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।
१६	आज का चीन	कुतुब रोड़, नई दिल्ली।
१७	आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका	दिल्ली।
१८	उत्तर प्रदेश पंचायती राज्य	लखनऊ।

सम्पादक,
विज्ञान,

विज्ञान परिषद् द्वारा

हरिशरणानन्द वैज्ञानिक पुरस्कार

सूचना

बड़े हर्ष के साथ विज्ञान परिषद्, प्रयाग सूचित कर रहा है कि इस संस्था की ओर से प्रतिवर्ष सर्वोत्कृष्ट मौलिकता लिये विषय के वैज्ञानिक हिन्दी ग्रन्थ पर दो हजार रुपये का नगद 'हरिशरणानन्द वैज्ञानिक पुरस्कार' दिया जायगा। यह प्रथम पुरस्कार उन वैज्ञानिक ग्रन्थों में से किसी एक को दिया जायगा जो जनवरी १९५४ के बाद प्रकाशित ग्रन्थों में से श्रेष्ठ होगा।

उक्त विज्ञप्ति के द्वारा विज्ञान परिषद्, प्रयाग पुरस्कार के लिये प्रत्येक वैज्ञानिक विषय की पुस्तकें आमन्त्रित करता है।

१—प्रत्येक पुस्तक की ८ प्रतियां १५ अगस्त १९५९ तक विज्ञान परिषद्, प्रयाग के कार्यालय में आ जानी चाहिये।

२—पुस्तकें शुद्ध हिन्दी भाषा में प्रकाशित हुई हों।

३—अनुवाद के ग्रन्थों पर विचार नहीं किया जायगा।

४—इन प्रकाशित पुस्तकों में विज्ञान परिषद्, प्रयाग, नागरी प्रचारणी सभा, वाराणसी, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग अथवा भारत सरकार के शिक्षा मन्त्रालय द्वारा स्वीकृत में से कोई भी वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्दावली व्यवहृत हुई हो, मान्य होगी।

ग्रन्थ-लेखकों को पुरस्कार सम्बन्धी नियमावली परिषद् से मंगाकर देखना चाहिये।

मंत्री,
विज्ञान परिषद्,
प्रयाग।

हरिशरणानन्द विज्ञान-पुरस्कार

पंजाब आयुर्वेदिक फार्मेसी के अध्यक्ष, लब्धप्रतिष्ठ वैद्य श्री हरिशरणानन्द जी का विज्ञान परिषद् पर पुराना अनुग्रह है और उन्हें विज्ञान, वैज्ञानिक साहित्य तथा वैज्ञानिक पद्धति में अतीव निष्ठा है। आपने विज्ञान परिषद् को इस कार्य के निमित्त एक निधि दी है, जिससे हिन्दी में वैज्ञानिक साहित्य के सृजन करने वालों को गौरवान्वित किया जा सके। विज्ञान परिषद्, प्रयाग श्री हरिशरणानन्द जी के नाम के साथ सम्बद्ध एक पुरस्कार की स्थापना करने में अपना गौरव अनुभव करता है, क्योंकि इस पुरस्कार से वह हिन्दी वैज्ञानिक साहित्य के उच्चतम साहित्यकों को सम्मानित कर सकेगा।

नियमावली

१—पंजाब आयुर्वेदिक फार्मेसी के अध्यक्ष श्री हरिशरणानन्द जी की निधि से संचालित एवं विज्ञान परिषद्, प्रयाग द्वारा प्रदत्त इस पुरस्कार का नाम "हरिशरणानन्द विज्ञान पुरस्कार" होगा।

२—यह पुरस्कार प्रतिवर्ष दिया जायगा और साम्प्रत दो सहस्र, रुपये, (२०००) का होगा।

३—इस पुरस्कार का संचालन विज्ञान परिषद्, प्रयाग द्वारा होगा, जो प्रतिवर्ष इस कार्य की सुविधा के निमित्त पांच सदस्यों की एक "हरिशरणानन्द पुरस्कार समिति" बनाया करेगी। समिति के सदस्य निम्न होंगे :—

(क) श्री हरिशरणानन्द जी (आजीवन सदस्य)

(ख) विज्ञान परिषद्, प्रयाग के सभापति अथवा कार्यवाहक सभापति (पदेन)

(ग) परिषद् के मंत्रियों में से कोई एक (संयोजक)

(घ) दो अन्य सदस्य, जिसकी संस्तुति विज्ञान परिषद्, प्रयाग की कार्यकारिणी समिति किया करेगी।

श्री हरिशरणानन्द जी के जीवन के अनन्तर, यदि उनका आदेश होगा, उनके उत्तराधिकारी को भी उनके स्थान पर सदस्य बनाया जा सकेगा, पर इस सम्बन्ध में उसकी सदस्यता एवं सदस्यता-काल के सम्बन्ध में अन्तिम निर्णय विज्ञान परिषद् की कार्यकारिणी समिति का ही मान्य होगा।

४—प्रतिवर्ष अक्टूबर मास के निकट परिषद् की ओर से पुरस्कार के निमित्त पुस्तकें आमंत्रित की जावेंगी, और इस सम्बन्ध में समयानुसार विज्ञप्तियां समाचार पत्रों में प्रकाशित होंगी, इन विज्ञप्तियों में पुस्तक भेजने की अन्तिम तिथि, की घोषणा होगी।

५—यह पुरस्कार 'विज्ञान' सम्बन्धी विषय की किसी भी रचना पर दिया जा सकेगा। अनुवाद—ग्रन्थों और एक से अधिक व्यक्तियों के सहयोग में लिखे गए ग्रन्थों पर विचार नहीं किया जावेगा।

६—पुरस्कार के निमित्त "पुरस्कार समिति" को यह अधिकार होगा कि आमंत्रित पुस्तकों के अतिरिक्त अपनी ओर से भी पुस्तकें विचारार्थ रक्खे।

७—लेखकों अथवा प्रकाशकों के लिए यह आवश्यक होगा कि विचारार्थ पुस्तक की आठ प्रतियाँ घोषित तिथि के भीतर परिषद् के पास भेजें।

८—पुरस्कार का निर्णय निम्न प्रकार होगा :—

(क) पुरस्कार समिति पुस्तकों को तीन विशेषज्ञ निर्णायकों के पास भेजेगी। निर्णायकों की नामावली समिति गोपनीय रक्खेगी। निर्णायक पुस्तक की उपयोगिता, मौलिकता, भाषा आदि के सम्बन्ध में अपनी लिखित सम्मति देंगे, जिनके आधार पर पुरस्कार समिति पुरस्कार का निर्णय करेगी। निर्णायकों को निर्देश करना आवश्यक होगा, कि उनके विचारानुसार कौन सी रचना प्रथम, द्वितीय अथवा तृतीय है।

(ख) पुरस्कार समिति इस बात पर वाध्य न होगी, कि प्रतिवर्ष पुरस्कार दिया ही जाय। योग्य पुस्तकों के न आने पर किसी भी वर्ष का पुरस्कार स्थगित किया जा सकता है। स्थगित पुरस्कार का रुपया पुरस्कार की स्थायी निधि में जमा कर दिया जायगा, जिसके उपयोग के सम्बन्ध में पुरस्कार समिति आवश्यक निर्णय करेगी।

(ग) पुरस्कार-निर्णय के सम्बन्ध में पुरस्कार समिति का निर्णय अन्तिम और मान्य होगा।

(घ) यदि किसी पुस्तक पर पुरस्कार न मिल सका हो, तो वह अधिक से अधिक तीन बार तक विचारार्थ प्रस्तुत की जा सकती है।

(ङ) पुरस्कार समिति विज्ञप्तियों द्वारा इस बात की घोषणा किया करेगी, कि अमुक वर्ष विज्ञान सम्बन्धी किस विषय की पुस्तकें आमंत्रित की जांयगी और किस अवधि के भीतर प्रकाशित पुस्तकों पर विचार होगा। उस सम्बन्ध में पुरस्कार समिति समय समय पर अपनी सुविधा के लिए नियम बना सकती है। इन नियमों की पुष्टि विज्ञान परिषद् की कार्य समिति से करा लेना आवश्यक होगा। कार्य समिति द्वारा व्यक्त मतवैभिन्य पर पुरस्कार समिति फिर विचार करेगी पर पुरस्कार समिति का निर्णय अन्तिम और मान्य समझा जावेगा।

(च) पुरस्कार समिति के सदस्यों और निर्णायकों की रचना पर पुरस्कारार्थ विचार न हो सकेगा। यदि उनकी रचना विचारार्थ आयी हो, तो उन्हें समिति से और निर्णायकों की सूची से उस वर्ष अलग रहना होगा।

९—(क) किसी भी व्यक्ति को एक से अधिक बार यह पुरस्कार नहीं मिल सकेगा।

(ख) पुरस्कार एक से अधिक व्यक्तियों में बाँटा न जा सकेगा। पुरस्कार के साथ पुरस्कृत व्यक्ति को एक स्वर्ण पदक "हरिशरणानन्द विज्ञान परिषद् पदक" भी भेंट किया। जावेगा।

(घ) पुरस्कार और पदक का वितरण साधारणतः विज्ञान परिषद्, प्रयाग के वार्षिक अधिवेशन के अवसर पर विशेष समारोह के साथ हुआ करेगा। यदि किसी कारण से वार्षिक अधिवेशन के साथ प्रबन्ध की सुविधा न हुई, तो परिषद् की कार्य समिति अन्य प्रबन्ध भी कर सकती है। उसे यह अधिकार होगा कि यह समारोह प्रयाग में करे अथवा अन्यत्र।

१० पुरस्कार सम्बन्धी इन नियमों में आवश्यक परिवर्तन पुरस्कार समिति की संस्तुति पर यथासमय कार्य समिति कर सकती है। नियमों में समय समय पर जो भी परिवर्तन होंगे, उनकी सूचना श्री हरिशरणानन्द जी को भी अनिवर्यातः दी जावेगी और सुझावों पर कार्य समिति आवश्यक विचार करेगी।

प्रधान मंत्री,
विज्ञान परिषद्,
थार्नहिल रोड,
इलाहाबाद—२
उ० प्र०

हमारी प्रकाशित पुस्तकें

		मूल्य
१	विज्ञान प्रवेशिका भाग १—श्री रामदास गौड़, प्रो० सालिगराम भार्गव	३७ नये पैसे
२	वैज्ञानिक परिमाण—डा० निहालकरण सेठी	१ रु०
३	समीकरण मीमांसा भाग १—पं० सुधाकर द्विवेदी	१ रु० ५० नये पैसे
४	समीकरण मीमांसा भाग २—पं० सुधाकर द्विवेदी	६२ नये पैसे
५	स्वर्णकारी—श्री गंगा शंकर पचौली	३७ नये पैसे
६	त्रिफला—श्री रमेश वेदी	३ रु० २५ नये पैसे
७	वर्षा और वनस्पति—श्री शंकरराव जोशी	३७ नये पैसे
८	व्यंग चित्रण—ले० एल० ए० डाउस्ट, अनुवादिक—डा० रत्न कुमारी	२ रुपया
९	वायुमंडल—डा० के० बी० माथुर	२ रुपया
१०	कलम पैवन्द—श्री शंकरराव जोशी	२ रुपया
११	जिल्द साजी—श्री सत्य जीवन वर्मा एम० ए०	२ रुपया
१२	तैरना—डा० गोरख प्रसाद डी० एस-सी०	१ रुपया
१३	वायुमंडल की सूक्ष्म हवायें—डा० संत प्रसाद टंडन	७५ नये पैसे
१४	खाद्य और स्वास्थ्य—डा० ओंकार नाथ पर्ती	७५ नये पैसे
१५	फोटोग्राफी—डा० गोरख प्रसाद	४ रुपया
१६	फल संरक्षण—डा० गोरख प्रसाद डी० एस-सी०, श्री वीरेन्द्र नारायण सिंह	२ रु० ५० न० पै०
१७	शिशु पालन—श्री मुरलीधर बौड़ाई	४ रुपया
१८	मधुमक्खी पालन—श्री दयाराम जुगड़ान	३ रुपया
१९	घरेलू डाक्टर—डा० जी० घोष, डा० उमाशंकर प्रसाद, डा० गोरख प्रसाद	४ रुपया
२०	उपयोगी नुसखे, तरकीबें और हुनर—डा० गोरखप्रसाद, डा० सत्यप्रकाश	३ रु० ५० नये पैसे
२१	फसल के शत्रु—श्री शंकर राव जोशी	३ रु० ५० नये पैसे
२२	सांपों की दुनिया—श्री रामेश वेदी	४ रुपया
२३	पोर्सलीन उद्योग—श्री हीरेन्द्र नाथ बोस	७५ नये पैसे
२४	राष्ट्रीय अनुसंधान-शालायें	२ रुपया
२५	गर्भस्थ शिशु की कहानी—अनु० प्रो० नरेन्द्र	२ रु० ५० नये पैसे
२६	रेल इंजन, परिचय और संचालन—श्री ओंकारनाथ शर्मा	६ रुपया

मिलने का पता :

विज्ञान परिषद्

विज्ञान परिषद् भवन, थार्नहिल रोड

इलाहाबाद—२

लेखकों से निवेदन

१—रचना कागज के एक ही ओर स्वच्छ अक्षरों में पर्याप्त पार्श्व एवम् पंक्तियों के बीच में अन्तर देकर लिखी होनी चाहिये। यदि टाइप की हुई हो तो और भी अच्छा है।

२—चित्रों से सज्जित गवेषणापूर्ण लेखों को "विज्ञान" में प्राथमिकता दी जावेगी।

३—प्रेषित रचना की प्रतिलिपि अपने पास रक्खें। आवश्यक डाक टिकट प्राप्त होने पर ही अस्वीकृत रचना लौटाई जावेगी।

४—स्वीकृति की सूचना यथासम्भव शीघ्र ही दी जावेगी। किसी भी लेख से संशोधन, संवर्धन अथवा परिवर्तन करने का अधिकार सम्पादक को होगा।

५—"विज्ञान" में प्रकाशित लेखों पर "विज्ञान" का पूर्ण अधिकार होगा।

६—समालोचनार्थ पुस्तकों की दो-दो प्रतियां भेजी जानी चाहिये।

नीचे लिखे पते पर पत्र व्यवहार करें —

सम्पादक, "विज्ञान"

विज्ञान-परिषद्,

म्योर सेण्ट्रल कालेज, थार्नहिल रोड,

इलाहाबाद—२

उ० प्र०

विज्ञान
लाई १९५९

रजिस्टर्ड नं० ए० ३७२

उत्तर प्रदेश, बम्बई, मध्यप्रदेश, राजस्थान, बिहार, उड़ीसा, पंजाब तथा आंध्र प्रदेश के शिक्षा विभागों द्वारा स्कूलों, कालिजों और पुस्तकालयों के लिये स्वीकृत।

विषय-सूची

प्रकाशक—डा० रमेशचन्द्र कपूर, प्रधान मन्त्री, विज्ञान परिषद्, इलाहाबाद
मुद्रक—हिन्दुस्तान प्रेस, कटरा, इलाहाबाद।

भाग ८९] [संख्या ५-६
श्रावण-भाद्रपद २०१६ वि०, १८८१ शा० अगस्त-सितम्बर १९५९

इस अंक में

सम्पादक : डा० शिवगोपाल मिश्र

ैकि मूल्य : ४ रुपये प्रति अंक : ४० नये पैसे

विज्ञान परिषद्‌ प्रयाग

विज्ञान

विज्ञान परिषद् प्रयाग का मुख-पत्र

विज्ञान ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञान जानेतानि जीवन्तिविज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्ति। तै० उ० ।३।५।

भाग ८९	२०१६ विक्र०; श्रावण-भाद्रपद १८८१ शाकाब्द; अगस्त-सितम्बर १९५९	संख्या ५-६

आध्यात्मिक सत्यों की उपलब्धि में क्या विज्ञान विघ्न स्वरूप है ?

डा० सत्य प्रकाश

विज्ञान की वर्तमान प्रगति को देखकर बीसवीं शताब्दी का ही व्यक्ति सशंकित हो, ऐसी कोई बात नहीं है। यूरोप में आधुनिक विज्ञान की नींव लगभग ४०० वर्ष पूर्व अथवा दूसरे शब्दों में १६वीं शती में पड़ी। लगभग इसी समय कोपर्निकस ने, जिसका जीवनकाल १४७३ ई० से १५४३ ई० तक था, यह घोषित किया कि सूर्य अपने स्थान पर स्थिर है, और पृथिवी उसकी परिक्रमा करती है। इस घोषणा के विरोध में यूरोप के अध्यात्मवादियों ने प्रतिवाद की आवाज उठायी, लूथर ऐसे सुधारकों को भी सूर्य की स्थिरता असह्य थी, क्योंकि ऐसी विचारधारा उस समय के उस ग्रन्थों के उद्धरणों के विरुद्ध थी जिनमें धार्मिक जनता की आस्था थी। गेलिलिओ ने कोपर्निकस की विचारधारा की पुष्टि की। इस व्यक्ति को वैज्ञानिक सत्य के प्रतिपादन के फलस्वरूप कारावास का दण्ड भोगना पड़ा। गेलिलिओ का जीवनकाल १५६४ से १६४२ ई० तक था। १८वीं और १९वीं शती में विज्ञान के चरण बहुत आगे बढ़ चुके थे। सर हम्फ्री डेवी ने (१७७८-१८२९) नाइट्रस आक्साइड गैस की खोज की, जेम्स सिम्पसन ने क्लोरोफार्म की, और डा० सी० डी० लौंग ने अमरीका में ईथर की। इन रासायनिक द्रव्यों की सहायता से निश्चेतन या सम्मूर्च्छित करके माताओं की प्रसव वेदना में जब कमी की जाने लगी, तो फिर एक बार जनता ने विरोध में अपने हाथ उठाये। उसका कहना था कि प्रसव के समय के कष्टों का निवारण करना ईश्वर के काम में हस्तक्षेप करना है, क्योंकि इन कष्टों की अपेक्षा से ही पापी और पुण्यात्मा की पहिचान होती है, और पापी आत्माओं को कष्ट भोगना ही चाहिए। चार्ल्स डार्विन ने अपने विकासवाद के मूल नियमों का जब प्रतिपादन १९वीं शती में किया तब तो संसार के अध्यात्मवादी एक प्रकार के विक्षिप्त से हो गए। बन्दर से विकसित

होकर अगर मनुष्य बना है, तो फिर मनुष्य की श्रेष्ठता ही क्या रही ! विकासवाद को मानते हुए फिर सृष्टि में आत्म और अनात्म का कोई भेद हो सकेगा, इसमें लोगों को सन्देह होने लगा। यूरोप और अमरीका में विचार शील व्यक्तियों के दो दल हो गये। विकासवादी अपने को बुद्धिवादी कहने लगे, और अपने से इतर व्यक्तियों को, जिनकी आस्था ईश्वर, आत्मा, पाप-पुण्य आदि में थी, रूढ़िवादी गिना जाने लगा। विज्ञान विचारधारा के मानने वालों और पुराने धर्माध्यक्षों के प्रभाव के भीतर रहने वाले आध्यात्मिकों के बीच में खाई गहरी होने लगी। नास्तिक और आस्तिक ये दो दल फिर जोर पकड़ने लगे।

हमारे अपने देश में ही लगभग सभी युगों में नास्तिक और आस्तिक इस प्रकार के दो वर्ग रहे हैं। लोकसाधकों और परलोक साधकों के दल अलग-अलग भी कार्य करते रहे और उन दोनों के बीच में समन्वय करने वाले भी रहे हैं। लोक साधकों ने जिस ज्ञान का विकास किया उसे अविद्या या अपराविद्या कहा गया। उपनिषदकार कहते हैं कि ऋग्, यजु, साम, अथर्व, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष ये सब अपराविद्या हैं। परन्तु जिससे अविनाशी अक्षर ब्रह्म जाना जाता है, वह पराविद्या है। दूसरी एक श्रुति कहती है कि लौकिक विद्या को, जिसका वास्तविक नाम अविद्या है, जानने वाले मृत्यु तक के जीवन को ही सुखमय बना सकते हैं, पर अमृतत्व प्राप्त करने के लिए विद्या या ब्रह्मविद्या का आश्रय लेना चाहिए। वैशेषिक धर्म के आचार्य कणादि ने लोक और परलोक दोनों का समन्वय किया—अभ्युदय अर्थात इस लोक की सम्पन्नता, और निःश्रेयस अर्थात् मृत्यु के बाद वाले जीवन में अमरत्व की प्राप्ति, इन दोनों को धर्म के अन्तर्गत मान अनात्म धर्म वालों ने भी इस देश में ऐसी विचारधाराओं को प्रश्रय दिया कि मृत्यु के बाद क्या है,यह तो अनिश्चित है, शरीर छोड़ने के बाद मोक्ष है भी या नहीं, असली मोक्ष तो यही है कि शरीर रहते ही सुख और आनन्द मिले। जो संदिग्ध है,उसकी चिन्ता में असंदिग्ध जीवन की तपस्या आदि द्वारा कष्ट देना इस वर्ग ने अनुचित ही समझा। गौतम बुद्ध ने संदिग्ध अप्राप्त और असंदिग्ध प्राप्त अर्थात् लोक और परलोक के बीच में एक मध्यम मार्ग अपनाने का उपदेश दिया।

उन्नीसवीं शती से विज्ञान की प्रगतियों ने जीवन के सभी अंगों पर प्रभाव डालना आरंभ किया। समाज की अन्तर-रचना को ही इसने उलटनापुलटना आरंभ हुआ। उद्योग और व्यवसाय की रूपरेखा इसने बदल डाली। विशालकाय यंत्रों ने विशद पैमानों पर वस्तुओं को बनाना आरंभ किया। यातायात के साधन पहले से अधिक सुलभ हो गए, छोटी सी दुनिया में रहने वाले व्यक्तियों के सम्पर्क धरती के सभी देशों से होने लगे। जंगल काटकर नए नए लहलहाते खेत बने। जिन द्वीपों पर आबादी कभी न थी,उन पर भी लोग बसने लगे। नये जीवन का आरंभ हुआ। पुरानी रूढियों में पले हुए व्यक्ति इस परिवर्तन को देखकर सशंकित होने लगे। गुलाम मुक्त हो गए, नारियाँ स्वतंत्र जीवन में पुरुषों की होड़ लेने लगी, जन्मजात वर्णों की दीवारें कमजोर पड़ने लगी, पुजारी-पुरोहितों, महन्तों, सन्तों और परलोक के पोषकों के प्रति जनता की आस्था कम होने लगी। ईश्वरीय पुस्तकों के आधार पर मुकदमों के निर्णय करने की प्रथा का शीघ्र उन्मूलन हो गया और न्यायालय का कार्य नये ढंग पर संगठित हुआ। लोगों को आशा हुई कि एक नये जगत् की सृष्टि हो गई है, जिसमें पुरुषार्थी मानव ने स्वर्ग को अदृष्ट स्थली से स्थानान्तरित करके इस धरती पर ला दिया है।

बीसवीं शती का आरंभ इस सुखद पृष्ठभूमि में हुआ। १९१४ ई० में यूरोप का प्रथम महायुद्ध आरंभ हो गया। सिकन्दर और चंगेज का मानों धरा पर फिर अवतार हुआ हो। चक्रवर्ती साम्राज्य और परस्पर होड़ की भावना ने द्वेष, कलह, विग्रह और वैमनस्य को नये विकसित रूप में हमारे समक्ष रख दिया। समस्त भूमंडल इस युद्ध में दो पक्षों में बट गया। युद्ध दृढ़ भूमि तक ही में सीमित न रहा, यह जल तक फैल गया। विज्ञान द्वारा आविष्कृत नूतन समस्त साधन जो स्वर्ग स्थापित करने की चेष्टा कर रहे थे, युद्ध कार्य में जुटा दिए गए। फलतः ऐसा युद्ध हुआ, जिससे संसार सशंकित हो उठा। नयी बारूदें, नये गोले, रासायनिक पदार्थों से बने नये विस्फोटक, पानी के भीतर-भीतर जाने वाली पनडुब्बियाँ—इन सबने युद्ध की प्रणाली को ही बदल दिया। दूसरे महायुद्ध में जल-स्थल में सीमित युद्ध आकाश में भी पहुँच गया। रण में भाग लेने वाले सिपाही ही पुरानी प्रथा के युद्धों में मारे जाते थे, पर नयी प्रणाली के युद्धों में निरीह लोक जनता का विध्वंसा आरंभ हुआ। पुराने किले, और नगरों की रक्षा के पुराने विधान सब बेकार हो गए। शान्ति के समय लगाया गया स्वर्ग-उपवन युद्ध की रणभेरी में श्मशान भूमि बन गया। द्वितीय महायुद्ध की समाप्ति होते-होते सशंक दयनीय जनता की दुरवस्था पराकाष्ठा तक तब पहुँची जब परमाणु बम का प्रयोग युद्ध के अन्त करने के उद्देश्य से हुआ। जापान की भूमि पर इस परमाणु विस्फोट के प्रभाव ने युद्ध समाप्त तो कर दिया, पर भावी युद्ध की विकरालता इससे और स्पष्ट हो गयी। इस युद्ध के अनन्तर ही "एक-जगत्" के नारे तो बारबार लगाये जाते रहे, पर वह कल्पनागत एकता कहीं दृष्टिगत नहीं हुई। विज्ञान के चरण उत्तरोतर आगे बढ़ते चले जा रहे हैं। रूस और अमरीका के प्रक्षेपास्त्रों में होड़ लगी हुई है। रूस और अमरीका से फेंके गए बम एक दूसरे का विध्वंस कर सकते हैं। निशाने भी इनके अचूक हैं। मनुष्य ने गतवर्ष चन्द्रमा के समान भूमि को प्रदक्षिण करने वाले कई उपग्रह अन्तरिक्ष में छोड़े हैं। सूर्य की प्रदक्षिणा करने वाले कृत्रिम ग्रह भी बन ही जायेंगे। विज्ञान के इस उत्कर्ष को देखकर विचारशील व्यक्तियों के समक्ष पुन: यह प्रश्न उपस्थित हुआ है, कि कल्याण और सुख के स्थान में मानवसमाज का विध्वंस ही तो कहीं निकट नहीं आ रहा! एक परमाणु विस्फोट के अनन्तर उसका दूषित प्रभाव वर्षों तक रहता है। विस्फोट से उत्पन्न नये प्रकार के सक्रिय परमाणु अन्न, जल और श्वास द्वारा शरीर में जाकर आगे आने वाली सन्तानों के जीवन को भी त्रस्त कर सकते हैं।

इसीलिए हमारे समक्ष यह प्रश्न जागरूक रूप से आ रहा है कि आधुनिक भौतिक सत्यों की हमारी उपलब्धि वस्तुतः हमारे लिए श्रेयस्कर होगी या नहीं, कहीं यह मनुष्य के लिए अभिशाप ही न बन जावे। यातायात के सुलभ साधनों और रेडियो आदि के आविष्कार ने एक ओर तो विश्व-बन्धुत्व को पोत्साहित किया, पर मनुष्य के हृदयों में बैठे हुए शैतान ने अन्तःकरणों में लिप्सा, द्वेष, प्रतियोगिता, अहंकार, छल, कपट, अनुदारता और बल-प्रदर्शन की वासना को बड़े परिमाण में उत्पन्न कर दिया। व्यक्तिगत अध्यात्म के स्थान समष्टि आधिभौतिकता आ गयी। छोटी-छोटी मछलियों के बीच में दो-तीन मगर-मच्छ आ पड़े। इनके सामने संसार के छोटे असहाय देशों की अवस्था कारुणिक बन गयी है।

ऐसी स्थिति में जीवन के ऊँचे मूल्यों का क्या स्थान रहेगा, यह सन्दिग्ध है। इस नई दौड़ में व्यक्ति तो राष्ट्र का गुलाम ही बनकर रह सकेगा। समस्त सम्पत्ति राष्ट्र की होगी। राष्ट्र के

संकेत पर ही मनुष्य अपना श्रम करेगा । दान के स्थान पर वह राष्ट्र को 'कर' देगा । राष्ट्र ही पुरुष के गार्हस्थ्य धर्म को निर्धारित करेगा, संन्यास और वैराग्य की रूपरेखा बदल जायगी । यंत्रवत् जीवन में आध्यात्मिक तत्वों का क्या-क्या स्थान रहेगा यह कहना कठिन है ।

फिर भी मनुष्य का कल्याण इसमें ही है कि वह संयम और उदारता से काम ले । आध्यात्मिक जीवन की वाह्य रूप-रेखायें बदल सकती हैं । पूजा और उपासना के ढंगों में परिवर्तन हो सकते हैं । दान और दानपात्र में अन्तर पड़ सकता है । तो क्या मानव की आध्यात्मिक उत्कृष्टता को सर्वथा उपेक्षा की दृष्टि से देखा जाय ? घोर विपदाओं के समय आस्तिक भावनायें ही हमें सान्तवन प्रदान कर सकती हैं । विज्ञान के आविष्कार न तो भुलाये जा सकते हैं और न इसकी प्रगति बन्द की जा सकती है, पर सब विचारशील व्यक्ति बैठकर संयत बुद्धि से अपने कल्याण की बात तो सोच सकते हैं । हमारी आस्तिक भावनायें हमें विश्वास दिला रही हैं, कि विज्ञान के आधुनिक उत्कर्ष से जो नया आतंक फैल गया है, वह शीघ्र ही समाप्त हो जायगा । मनुष्य की आसुरी प्रवृत्तियों पर दैवी प्रवृत्तियाँ कालान्तर में विजय प्राप्त करेंगी । यों तो मनुष्य के इतिहास में देवासुर संग्राम सदा ही चलता रहा है, पर मनुष्य अभी सर्वथा नष्ट नहीं होगा, यह आगे ही बढ़ा है, और बढ़ता जायगा । यह ग्रह-उपग्रह में जाकर बसेगा, और जिस भ्रातृत्व की कल्पना केवल पृथ्वी के लिए हमने की थी, वह लोक लोकान्तरों में विस्तृत हो सकेगी ।

सबसे बड़ा आध्यात्मिक सत्य यह है कि आत्मा शरीर से भिन्न अक्षुण्ण सत्ता है, शरीरस्थ प्रत्येक इस आत्मा से भिन्न एक आत्मा और है, जिसके हाथ में चराचर जगत् की बागडोर है । यह आत्मा आनन्दमय और कल्याणकर है । सृष्टि और संहार दोनों में ही कल्याण है । दोनों ही प्रवाह से आदि और अनन्त हैं । अगर इस संसार के विध्वंस द्वारा ही कल्याण हो सकता है, तो अध्यात्मवादी इस संहार का भी स्वागत करेगा पर हमारा दृढ़ विश्वास है कि हम प्रलय से अभी बहुत दूर हैं, विज्ञान की प्रगति मनुष्य की शक्ति को बहुत बढ़ावेगी, जिससे उसका लोक लोकान्तरों में आना-जाना संभव हो सके । यह शक्ति बिना त्याग और तपस्या के नहीं प्राप्त हो सकती । विज्ञान की वर्तमान प्रगतियां त्याग और तपस्या का नये रूप से हमें अवसर प्रदान कर रही है । कालान्तर में ये आध्यात्मिक सत्यों का उपलब्धि में विघ्नस्वरूप न होकर इनमें साधक ही सिद्ध होंगी ।

(१७ फरवरी १९५९ की रेडियो वार्ता)

कोयले के बारे में अनुसन्धान

डी० एल० दत्त

जियालगोड़ा बिहार राज्य में धनबाद और सुप्रसिद्ध सिन्दरी खाद कारखाने के लगभग मध्य में है। यहां एक ऐसी संस्था स्थापित है जो उन संस्थाओं में से है जिन पर भारत उचित रूप से गर्व कर सकता है। इस संस्था का नाम "केन्द्रीय ईंधन अनुसन्धान संस्थान" है। यहाँ संस्थान के निर्देशक डा० ए० लाहिड़ी की देखरेख में लगन वाले वैज्ञानिकों की एक टोली लगभग १० वर्षों से, बिना किसी दिखावे के इस बारे में उपयोगी कार्य कर रही है कि इस देश में कितना कोयला उपलब्ध हो सकता है और उसका कैसे उपयोग किया जाना चाहिए।

संस्थान भारत-सरकार की इस मान्यता का प्रतीक है कि भारत के औद्योगिक विकास में कोयले का बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है। देश का औद्योगिक विकास इस बात पर निर्भर है कि कोयला मिलता रहे और जिस काम में उसे इस्तेमाल करना हो उसके लिए वह ठीक किस्म का हो। यदि किसी विशेष काम के लिए ठीक किस्म का कोयला उपलब्ध न हो तो केन्द्रीय ईंधन अनुसन्धान संस्थान के वैज्ञानिकों का यह कार्य है कि वे ऐसे उपाय ढूंढें जिनसे देश में उपलब्ध कोयले का उस काम में प्रयोग किया जा सके।

भारत में उपलब्ध कोयले को जिस ढंग से इस्तेमाल किया जाता है, उस पर पिछले सालों में देश के अर्थशास्त्रियों, राजनीतिज्ञों और उद्योग पतियों द्वारा बड़ी चिन्ता व्यक्त की गई थी। अनेक कोयला-कमीशनों की रिपोर्टों में इस बात पर जोर दिया गया कि इस विषय में वैज्ञानिक रीति से पड़ताल करने की तत्काल आवश्यकता है। इस पर, वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसन्धान मण्डल ने पत्थर के कोयले से सम्बन्धित मुख्य समस्याओं के महत्व को अनुभव करके तथा देश में जलाने के काम आने वाले तरल पदार्थों तथा गैस की सीमित उपलब्धि को ध्यान में रख कर एक "ईंधन-अनुसन्धान समिति" की स्थापना की। उसने फैसला दिया कि एक केन्द्रीय ईंधन अनुसन्धान कायम किया जाये।

आज केन्द्रीय ईंधन अनुसन्धान संस्थान १७० एकड़ भूमि में फैला हुआ है। यहां संस्थान की प्रयोगशालाओं, प्रबन्ध-कार्यालयों, वर्कशापों और कारखानों के अतिरिक्त कर्मचारियों की बस्ती भी है। यह भूमि झरिया के राजा ने दान में दी है। संस्थान की आधारशिला १७ नवम्बर, १९४६ को रखी गई थी और २२ अप्रैल, १९५० को राष्ट्रपति राजेन्द्र प्रसाद ने उसका उद्घाटन किया था। डा० राजेन्द्र प्रसाद ने अपने उद्घाटन-भाषण में कहा था कि इस संस्थान का उद्देश्य जलाने के काम आने वाले ठोस और तरल पदार्थों तथा गैसों के बारे में सैद्धान्तिक और व्यावहारिक दोनों दृष्टियों से, सभी मामलों में अनुसन्धान करना है। उन्होंने कहा था "मुझे पूर्ण रूप से विश्वास है कि जब हम संस्थान की जांच-पड़ताल का काम करने वाली स्थानीय अथवा

सम्बद्ध प्रयोगशालाएं पूरी तरह काम करने लगेंगी तो जलाने के काम आने वाले हमारे साधनों और विशेषकर कोयले का सर्वोत्तम ढंग से उपयोग करने में मदद मिल सकेगी।

उद्योग-धंधों के वास्तविक आयोजन के लिए यह जानकारी होनी जरूरी है कि भारत के पास किस किस्म का कोयला है। संस्थान ने इस दृष्टि से अपना कार्य शुरू करते हुए कोयले के रूप-रंग तथा रासायनिक विश्लेषण द्वारा पड़ताल करने का एक कार्यक्रम चालू किया। यह कार्य प्रमुख कोयला-उत्पादक क्षेत्र में स्थित अनेक प्रादेशिक जांच-केन्द्रों द्वारा किया गया। संस्थान ने इस जांच-पड़ताल से ऐसे आंकड़े इकट्ठे कर लिये हैं जो देश की विकास योजनाओं के लिए बड़े उपयोगी हैं। डा० लाहिड़ी के कथनानुसार, कोयले की किस्मों के बारे में हमारी जानकारी उन बहुत से उन्नत देशों से किसी प्रकार कम नहीं, जो पिछले १० वर्षों से बहुत बड़े पैमाने पर कोयला निकाल कर उसका उपयोग कर रहें हैं।

भारत के योजना निर्माताओं के समक्ष एक सबसे मुख्य समस्या यह है कि वे तेजी से बढ़ते हुये लोहा और इस्पात उद्योग के लिए आवश्यक मात्रा में पत्थर के कोयले का कैसे उत्पादन किया जाये। संस्थान ने, अपने निरन्तर अनुसन्धान के आधार पर, न केवल इस समस्या को हल करने के लिए सिफारिशे प्रस्तुत की हैं, बल्कि लोहा और इस्पात उद्योग के सामान्य आयोजन में भी मदद दी है। जिन कारखानों का निर्माण हो रहा है, उनके लिए संस्थान ने उपलब्ध साधनों को ध्यान में रखकर सर्वाधिक उपयुक्त विभिन्न किस्मों के कोयले को छांटने का कार्य अपने हाथ में लिया है। संस्थान ने यह भी सिद्ध कर दिया है कि पहले जिस कोयले को पत्थर का कोयला तैयार करने की दृष्टि से अनुपयुक्त समझा जाता था, उसे अब इस कार्य के लिए प्रयुक्त किया जा सकता है और जिस कोयले को पहले घटिया समझा जाता था, अब उसे बढ़िया किस्म का बना में जा सकता है।

देश में पैदा होने वाले अधिकांश कोयले का प्रयोग या तो बिजलीघरों में तैयार की जाने वाली बिजली के रूप में किया जायेगा अथवा कोयले को पूर्णतः गैसों में परिणत करके जलाने के लिए प्रयुक्त किये जाने वाले तरल पदार्थों के रूप में। इसीलिए संस्थान भविष्य में कोयले से गैस तैयार करने के कारखानों के निर्माण और उसके साथ-साथ गैस को शुद्ध करने की विधियों पर अपना ध्यान दे रहा है। चूंकि इन विधियों की परीक्षा प्रयोगशालाओं में नहीं की जा सकत इसीलिए संस्थान ने गैस तैयार करने वाली चार भिन्न किस्म की मशीनें लगाई है। इन मशीनों द्वारा विभिन्न किस्मों के कोयले का उपयोग करने के सर्वोत्तम उपाय मालूम किये जायेंगे।

अमेरिकी टैक्निकल सहयोग मिशन ने गैस तैयार करने की मशीन लगाने के लिए १। लाख रुपये की राशि प्रदान की है। यह राशि उस सहायता से अतिरिक्त है जो संस्थान के चार वैज्ञानिकों को अमेरिका में प्रशिक्षण प्राप्त करने के लिए दी गई है। इन वैज्ञानिकों में संस्थान के दो सहायक निर्देशक भी हैं।

संस्थान की कार्यवाहियों के तेजी से बढ़ते चले जाने के कारण शीघ्र ही संस्थान के पास स्थान की न्यूनता अनुभव की जाने लगी अतएव सन् १९५७ में इमारतों का विस्तार किया गयी

और कई प्रयोगशालाओं तथा एक विशाल टैक्निकल लाइब्रेरी के लिए स्थान की व्यवस्था की गई। टैक्निकल लाइब्रेरी में सूक्ष्म-फिल्में और फोटो-प्रतियां भी हैं, जिन्हें प्रार्थना करने पर बाहर का कोई भी टैक्निकल व्यक्ति प्राप्त कर सकता है।

धनबाद-सिंदरी की अत्यधिक यातायात वाली सड़क से यात्रा करने वाले यात्रियों का ध्यान संस्थान के सुन्दर मैदान और आधुनिक इमारतों पर आये बिना नहीं रह सकता, परन्तु वह राष्ट्रीय महत्व की दृष्टि से होने वाले कार्यों को शायद बहुत कम लोग अनुभव करते हैं। किन्तु भारत की औद्योगिक उन्नति में इस संस्थान के महत्वपूर्ण योग का पता इस बात से चलता है कि भारत-सरकार ने, दूसरी पंचवर्षीय योजना के अधीन, इस संस्थान के विस्तार के लिए लगभग ३॥ करोड़ रुपये की राशि दी है और अमेरिकी सरकार की ओर से भी इस संस्था को बड़ी सहायता दी गई है।

भारत में कोयले का उत्पादन

दूसरी पंचवर्षीय आयोजना में ६ करोड़ टन कोयले के उत्पादन का लक्ष्य रखा गया है।

* इस प्रकार २ करोड़ २० लाख टन का अधिक उत्पादन होगा। पहली आयोजना की अवधि में सालाना उत्पादन ३ करोड़ ८० लाख टन था।

* इसमें १ करोड़ २० लाख टन उत्पादन सरकारी क्षेत्र से होगा। इसमें से १५ लाख टन सिंगरनी (आंध्र) की कोयला खानों से, शेष केन्द्रीय सरकार की ११ कोयला खानों से निकाला जायगा।

* इसके लिये नई खानें खोदी जाएगी और पुरानी खानों का विस्तार किया जाएगा। इस उद्देश्य से ही अक्टूबर १९५६ में रांची में राष्ट्रीय कोयला विकास निगम, प्राइवेट लि० की स्थापना की गयी।

* कोरबा, कथेरा, गिड़ी, सोंडा, सयाल, विश्रामपुर और कोरिया में कोयला खदानों की जांच व ड्रिलिंग पूरी हो चुकी है।

* कोयला खदानों को जोड़ने वाली रेलवे लाइनें भी बन रही है। चम्पा और कोरबा के बीच २५ मील लम्बी लाइन बन चुकी है। विजुरी और केरोंजी के बीच ६० मील लम्बी लाइन बन रही है। गिडी की खानों के लिये रेलों की पेट्राटू दामोदर शाखा का विकास हो रहा है। केथरा, बछरा और सोंडा के लिये भी रेल की लाइनें बन रही हैं। कोरवा क्षेत्र में हसदे नदी के ऊपर पुल बनाने की भी योजना है।

* निगम ने काम सीखे हुए लोगों की मांग को देखते हुए गिरीडीह, कागेंली, कुरासिया और तालछड़ में ट्रेनिंग स्कूल भी खोल दिये हैं।

विशेष लेखमाला : पुष्प–१

आधुनिक रसायन के संस्थापक : लेवोशिये

नंदलाल जैन, विज्ञान महाविद्यालय, रायपुर, म० प्र०

रसायन-विज्ञान के विकास के इतिहास में जिन वैज्ञानिक महापुरुषों ने 'मील के पत्थरों' का काम किया है, उनमें फ्रांस के श्री ए० एल० लेवोशिये का नाम प्रमुख है। ये अठारहवीं सदी के उत्तरार्द्ध में अपने नवीन सिद्धान्तों की स्थापना कर रहे थे, जब फ्रांस अपनी राज्यक्रांति के दौर में चल रहा था, और इंग्लैंड को छोड़ अन्य देशों में रसायन के प्रति अभिरुचि कुछ मंद थी। श्री लेवोशिये के कार्य का महत्व हम जर्मनी के प्रसिद्ध वैज्ञानिक श्री वर्ट्ज के निम्न शब्दों से ज्ञात कर सकते हैं, जो उन्होंने अपनी पुस्तक 'डिक्शनरी ऑव केमिस्ट्री' (रसायन का शब्द कोष) में रसायन शब्द की परिभाषा करते समय लिखे हैं—'श्री लेवोशिये द्वारा स्थापित फ्रांसीसी विज्ञान-शास्त्र—सचमुच ही श्री लेवोशिये ने मिश्र व यूनान तथा भारतीय विचार परंपरा को प्रयोग विरुद्ध सिद्ध करते हुए पृथ्वी, जल वायु, अग्नि के भूत-चतुष्ठयात्मक सृष्टि-वाले दो हजार वर्षों से चले आते सिद्धान्त को असत्य सिद्ध कर दिया। श्वास और ज्वलन के सिद्धान्त की विशद-व्याख्या करते हुए उसने अपने मौलिक प्रयोगों से फ्लोजिस्टनवाद को समाप्त कर दिया और नयी-ज्वलन, अम्ल-रचना आदि संबंधी-स्थापनायें की। यही नहीं, उसने रसायनशास्त्र में समीकरणों की परंपरा का बीजारोपण किया, पदार्थों की नामावली निर्मित की, उनका वर्गीकरण किया, विश्लेषण किया और एक विस्तृत पुस्तक लिखकर प्रचलित रसायन-शास्त्र के इतिहास में क्रांति उत्पन्न कर दी। हम आजकल बहुत कुछ श्री लेवोशिये की मान्यताओं पर चल रहे हैं। उनके विषय में सबसे महत्व पूर्ण बात है कि वह न केवल वैज्ञानिक ही थे, अपितु वे एक प्रमुख प्रजातांत्रिक जनसेवी एवं फ्रांस को प्रगतिपथ पर ले आने वाले राष्ट्रभक्त भी थे जिसका ज्ञान हमें उनके विभिन्न सार्वजनिक एवं राजकीय पदों पर काम करने से ज्ञात होता है। वे एक अच्छे लेखक, कुशल प्रयोग-कर्ता,सुमधुर भाषणकर्ता और उदार हृदय व्यक्ति थे, जिनके सहयोग से बहुत वर्षों तक फ्रांस में रसायन-विज्ञान प्रगति करता रहा, और अन्य देशों में भी तीव्र गति से नवीन दिशाओं की ओर बढ़ता रहा।

श्री लेवोशिये का जन्म सोमवार, दिनांक २६ अगस्त सन् १७४३ को पेरिस में हुआ था। इनके पिता श्री जे० एल० लेवोशिये एक प्रसिद्ध वकील थे और इनकी माता का नाम श्रीमती एमिल पंशि था। पांचवर्ष की अवस्था तक वे घर पर ही रहे। पांचवी वर्ष में ही इनकी माता का देहावसान होजाने पर ये अपनी नानी के घर गये, जहां इन्हें श्रीमेरी मारगरेट कान्स्टेंस की स्नेहपूर्ण गोद प्राप्त हुई जिसने श्री लेवोशिये के विवाह होने तक अपना विवाह तक नहीं किया। श्री लेवोशिये के पिता भी दुबारा विवाह नहीं किया, यही कारण है कि उनके सामाजिक जीवन में बहुत ही कम मित्र थे, केवल अपने परिवार तथा घर के लोग ही थे।

सन् १७५४ से १७६० तक लेवोशिये ने माशारिन महाविद्यालय में शिक्षा पाई, जहां उन्होंने ग्रीक, लेटिन फ्रांसीसी भाषाओं में दक्षता-सूचक कई पुरस्कार प्राप्त किये, और अपनी अध्ययनशीलता के लिये विशेष पुरस्कार भी प्राप्त किया। १७६० ई० में फ्रांसीसी स्कूलों की वार्षिक कविता प्रतियोगिता में वे द्वितीय घोषित किये गये। अपने कुल की परंपरा के अनुसार उन्होंने १७६३ में वकालत पास की।

वकालत का अध्ययन करते समय उन्हें इतना समय मिल सका था कि वे मशारिन महाविद्यालय में विज्ञान के व्याख्यान सुन सकें। इन व्याख्यानों के कारण उनके मन में विज्ञान के प्रति अभिरुचि उपन्न हो गई और वे तत्कालीन फ्रांस के चार प्रमुख वैज्ञानिकों से विज्ञान अध्ययन करने लगे जिनके नाम श्री लेकाले (गणित), गटर्ड (भूगर्भ), श्री रूल (रसायनशास्त्र), श्री जोसे (उद्भिज) हैं। इनमें सबसे अधिक प्रभाव श्री रूल के व्याख्यानों का पड़ा, जो मनोरंजक रूप से रसायन विषयक तथ्य और प्रयोग बताया करते थे। श्री लेवोशिये ने श्री रूल के 'नोट्स' प्राप्त कर लिये और उनके आधार पर अपने विचारों को प्रकट करते हुए संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखीं। इसी समय इन्होंने शरीर विज्ञान भी पढ़ा, वे गणित और अंतरिक्ष-विज्ञान में भी अभिरुचि दिखाने लगे, जिसके परिणाम स्वरूप ऋतु-सूचनाओं के लिये वे सदैव स्वयं और अपनी अनुपस्थिति में अपने परिवार वालों से 'दाबमापक' के कई बार पाठ - लिखाते थे। बड़े होने पर उन्होंने फ्रांस के कई स्थानों में 'दाब' ज्ञात कर अंतरिक्ष-मंडल और जलवायु के संबंध में तुलनात्मक सूचनायें प्रस्तुत कीं। इन्हीं निरीक्षणों के आधार पर वे 'ऋतु-सूचनाओं' की भविष्यवाणी की संभावना के विषय में आशावादी हो गये थे। बीस वर्ष की अवस्था में श्री लेवोशिये ने कानून और विज्ञान का अच्छा अध्ययन कर लिया था, लेख लिखने की कला सीख ली थी, गंभीर अध्ययन की आदत डालकर अपने मस्तिष्क और ज्ञान को पर्याप्त तीक्ष्ण और विस्तृत कर लिया था।

सन् १७६३ से १७६३ तक के तीस वर्ष श्री लेवोशिये के जीवन की सक्रियता को प्रदर्शित करने वाले रहे हैं। इसी समय में उन्होंने श्री गटर्ड के साथ भूगर्भीय यात्रा, सड़कों पर रोशनी करने के विषय में सैद्धान्तिक निबंध पर प्रथम राजकीय पुरस्कार प्राप्ति (१७६६), साइंस एकेडेमी की सदस्यता तथा उसके विभिन्न पदों (पेंशन, डायरेक्टर, खजांची आदि पर काम करना (१७६८) जल, वायु, ज्वलन तथा अन्य वैज्ञानिक विषयों पर अनुसंधान कर नये सिद्धान्तों की स्थापना करना, रसायन-शास्त्र की नयी नामावली, सभीकरण-प्रक्रिया तथा शब्दावली की रूपरेखा प्रस्तुत करना, फ्लोजिस्टनवाद की समाप्ति (१७६३), रसायन-शास्त्र की प्रारंभिक पुस्तक का लेखन और प्रकाशन, विभिन्न वैज्ञानिकों से—केवेंडिश, शील, ब्लेक आदि से आदान-प्रदान, जैसे विद्वात्तापूर्ण कार्यों के साथ अपना राजकीय—बारूद आयोग-आयुक्त के रूप में—सेवा कार्य का सफल संपादन, अपने कृषि-क्षेत्र का सफल व प्रजातांत्रिक ढंग से संचालन करने का उद्यम आदि सामाजिक व राजनीतिक क्षेत्रों की सफलतायें प्राप्त कीं।

उन्होंने मार्च १७६८ में एक 'कृषि क्षेत्र' खरीदा, जिसमें उन्होंने पर्याप्त सुधारात्मक प्रयोग किये। सन् १७७१ में केडस पोल वे आपका विवाह हुआ। आपकी पत्नी की आयु उस समय १४ वर्ष की थी। श्री लेवोशिये का पारिवारिक जीवन बहुत ही सुखद रहा और उन्होंने

श्री लेवोशिये के अनुसंधान कार्य में बड़ी सहायता पहुँचाई है। मेडम पोल एक अच्छी चित्रकार भी थीं। वे अतिथि-संकार में बड़ी दक्ष थीं। दुर्भाग्य से यह परिवार निस्संतान रहा।

श्री लेवोशिये को राज्यक्रान्ति के अवसर पर ८ मई १७६४ को फाँसी दे दी गई। फाँसी दिये जाने के कारण वैधानिक रूप से कई थे, पर उसमें कुछ व्यक्तिगत ईर्ष्या भी सम्मिलित थी, जो लेवोशिये के जीवन की वृद्धिगत सफलता के कारण कई क्षेत्रों में उत्पन्न हो गई थी। जनता की उच्छृखलता के परिणाम स्वरूप विश्व को नयी ज्योति देनेवाले वैज्ञानिक को अपना बलिदान देना पड़ा। मेंडम पोल ने इस संबंध में उन्हें बचाने का काफी प्रयत्न किया, पर फ्रांस का दुर्भाग्य जो था···

रसायन-शास्त्र को देन

जिस प्रकार भौतिक शास्त्र के विकास में श्री न्यूटन ने योगयान किया है उसी प्रकार श्री लेवोशिये ने भी अपने मौलिक अनुसंधानों द्वारा सदियों से चली आती हुई मान्यताओं में आमूलचूल परिवर्तन कर रसायन-शास्त्र का वैज्ञानिक रूप दिया है।

सन् १७६३ में २० वर्ष की अवस्था में श्री लेवोशिये ने गटर्ड के साथ तीन वर्ष तक यात्रायें की जिनका सबसे पहले परिणाम हुआ, सन् १७६४ में 'जिपसम' पर एक शोधपत्र, जिसमें इस खनिज के विविध रूप, इसकी घुलनशीलता तथा इसके पेरिस-प्लास्टर में परिणत होने तथा प्लास्टर के कठोर होने आदि तथ्यों की सर्वप्रथम सैद्धांतिक स्थापना की गई थी। यह शोधपत्र फ्रांसीसी विज्ञान अकादमी को १७६५ में भेजा गया और १७६८ में प्रकाशित हुआ। इस शोधपत्र के समय वे २१ वर्ष के थे। २३ वर्ष के होते होंते उन्होंने सड़कों के वैद्युतीकरण विषय पर सैद्धान्तिक निबंध लिखने के उपलक्ष में सर्वश्रेष्ठ राजकीय पुरस्कार प्राप्त किया। १७६७ में उन्होंने श्री गाटर्ड के साथ चार मास की भूगर्भीय यात्रा की और फ्रांस के एटलस-निर्माण के लिये कई नक्शे बनाये, जो श्री गाटर्ड की असमायिक मृत्यु के कारण, श्री मोने ने १७७० में प्रकाशित कराये, पर उनमें श्री लेवोशिये का नाम न था। इसे उन्होंने प्रकाशक की धृष्टता बताया, फलतः श्री मोने उनके कट्टर शत्रु हो गये।

पहली जून सन् १७६८ में श्री लेवोशिये विज्ञान अकादमी के सहायक चुने गये और उन्हें आते ही विभिन्न विषयों पर विवरण प्रस्तुत करने पड़े जिनमें जल-पूर्ति-समस्या, गुब्बारे, विरंजन, रंगों के सिद्धान्त, विभिन्न प्रकार के रासायनिक व कृषि उपयोगी पदार्थों के उत्पादन व सदुपयोग के विषय मुख्य हैं।

केवेंडिश और अन्य वैज्ञानिकों के प्रयोगों के परिणाम श्री लेवोशिये को ज्ञात हो चुके थे। अतः उन्होंने उन प्रयोगों को दुहरा कर अपने परिणामों को नवीन रूप में प्रस्तुत किया। अपने प्रयोगों के आधार पर लेवशिये ने बताया कि जल में हाइड्रोजन और ओषजन का अनुपात १:६ है। [अब १:८ है]। सन् १७८३ में 'जल की प्रकृति' पर एक और शोधपत्र उन्होंने प्रस्तुत किया और एक बार फिर दो हजार वर्ष से चली आती हुई जल की तात्विकता की परम्परा को प्रयोग-विरुद्ध सिद्ध कर दिया और जल को हाइड्रोजन और ऑक्सीजन का यौगिक बताया।

अभी तक वायु को भी तत्व माना जाता था। श्री प्रीस्टले, श्री केवेंडिश तथा अन्य ने वैज्ञानिक वायु के समान कितने ही गैसों का ज्ञान कर लिया था, जिनके गुण भिन्न-भिन्न थे पर वे इन सबको वायु का परिवर्धित रूप ही समझते थे। श्री लेवोशिये को वायु के विषय में अध्ययन करने की प्रेरणा श्री बोयल के प्रयोग से हुई, जिसमें उन्होंने यह सिद्ध किया कि हीरे को हवा में जलाने पर नष्ट किया जा सकता है। उसने यह सोचा कि हीरे के नाश से क्या तात्पर्य है? क्या यह उद्वाष्पित हो जाता है या जल जाता है? अपने प्रयोगों के आधार पर श्री लेवोशिये ने सिद्ध किया कि (१) हीरा बिना वायु में उत्तापित किये नष्ट नहीं होता (२) वायु में उत्तापित करने पर यह 'स्थिर वायु' (CO_2) उत्पन्न करता है, जिसका भार हीरे से अधिक होता है। उसने गंधक और फास्फोरस को जलाकर देखा और बताया कि ये यदार्थ जलते समय हवा के कुछ अंश को ग्रहण कर लेते हैं। उसने धातुओं के केल्कस (ऑक्साइड) को कोयले के साथ जलाकर देखा और एक विशेष वायु प्राप्त की। अतएव पदार्थों के जलने पर जो भार-वृद्धि होती है, वह पदार्थों के हवा से संयोग के कारण है न कि फ्लोजिस्टन या अग्निकणों के निकलने या संयुक्त होने के कारण इन प्रयोगों को लक्ष्य में रखकर सन् १७७२ में श्री लेवोशिये ने विज्ञान -एकादमी को एक सीमाबन्द पत्र दिया, जो मई १७७३ में खोलकर पढा गया, जिसमें उन्होंने जलने के इस नये सिद्धान्त का वीजारोपण किया था और जो पढ़ने के समय तक पर्याप्त रूप से प्रयोगों द्वारा सत्य हो चुका था। उसने यह भी जान लिया कि जो हवा जलने के बाद निकलती है, उसमें तथा श्वास लेने के काम आनेवाली हवा में बहुत अन्तर है। इस पत्र में उन्होंने यह भी संकेत किया था कि मेरे इस प्रयोग के परिणाम से भौतिक और रसायन-शास्त्र में क्रान्ति करने के वीज निहित हैं। और सचमुच ही, सन् १७७५ तक ज्वलन, श्वासोच्छ्वास, वनस्पति-क्रिया, जंग लगने जैसी सभी क्रियाओं में वायु के किसी न किसी भाग की अनिवार्यता सिद्ध हो गई। १७७४ के एतद्विषयक शोधपत्र में वायु और ज्वलन संबंधी ऐतिहासिक और प्रायोगिक जानकारी का विवरण भी उन्होंने प्रस्तुत किया किया। लाल पारे की आक्साइड को गरम करने पर (कोयले के साथ) एक गैस प्राप्त होती है जो विषैली है और जलने में सहायक नहीं है। परन्तु अकेले ही इस पदार्थ को गरम करने पर जो गैस प्राप्त होती है, वह जलने में, श्वासोच्छ्वास में सहायक है। उन्होंने यह देखा कि यह गैस हवा से कुछ भारी है, और हवा का शुद्ध अंश है। गंधक व फास्फोरस के जलने के प्रयोगों से पता चलाया कि हवा में $\frac{1}{5}$ भाग शुद्ध वायु है। उन्होने बोयल के प्रयोगों को परिमाणात्मक विधि से दुहराया, और धातुओं की भारवृद्धि के विषय में नयी ही बात बतायी। उनके इस परिणाम पर बकरिया और श्री वायन की ओर से अपनी प्राथयिकता के दावे प्रस्तुत किये गये, पर इनके प्रयोग के परिणाम फ्लोजिस्टनवाद पर आश्रित थे जब कि श्री लवोशिये का आधार था —वायु के शुद्ध अंश का संयोग—बिलकुल ही नया और निराला। जब सन् १७७४ में श्री प्रीस्टले ने आक्सीजन की खोज की, और इस बात का ज्ञान श्री लवोशिये को कराया, तो उन्होंने फिर से अपने प्रयोगों को नयी दिशा दी और यह श्निचित रूप से बताया कि प्रीस्टले का पदार्थ ही—वायु का शुद्ध अंश ही-जलने में सहायक होता है जो पारद-केल्कस के गरम करने से प्राप्त होता है। श्री ब्लेक की 'स्थिर वायु' कोयले और श्री प्रीस्टले के गैस (या वायु के शुद्ध अंश) के संयोग से बनता है, यह उन्होने १७७४ में प्रमाणित किया। इन प्रयोगों से यह सिद्ध हुआ कि साधारण वायु में दो अवयव होते हैं— (१) शुद्ध वायु व (२) अशुद्ध वायु (नाइट्रोजन)। अपने जलती हुई मोमबत्ती के शुद्ध वायु में रखने

प्रयोग से उसने यह सिद्ध किया कि फ्लोजिस्टनवाद हमें संदेह पैदा करता है। शुद्ध वायु ही सारी क्रियाओं की कुंजी है, इसी से अम्ल बनते हैं। इसी शुद्ध वायु को ग्रीक भाषा में 'अम्ल उत्पादक' होने के कारण उसने नवंबर १७७८ में 'आक्सीजन' नाम दिया जो आज तक वैज्ञानिक जगत में प्रचलित है। सन् १७८३ में उन्होंने 'फ्लोजिस्टन पर विचार' नामक निबंध में जर्मन-वैज्ञानिकों द्वारा उत्थापित एवं सर्वमान्य फ्लोजिस्टन सिद्धान्त पर अपनी तर्कपूर्ण टीका-टिप्पणी दी कि यह एक विचित्र सिद्धान्त है, जिसकी कोई निश्चित परिभाषा ही नहीं है। कभी इसमें भार होता है, कभी नहीं, कभी यह अग्नि का रूप लेता है, तो कभी यह पृथ्वी और अग्नि का रूप लेता है। कभी यह पदार्थों की क्षारीयता की व्याख्या करता है, तो कभी रंगों की उत्पत्ति का मूलरूप बनता है। तात्पर्य यह कि यह एक बड़ा ही लोचदार तत्व हैं, जो प्रयोगों द्वारा सत्यापित नहीं किया जा सकता है। अपने प्रयोगों के आधार पर उन्होंने बताया कि जब हम 'आक्सीजन' से दहनशीलता आदि का व्याख्यान कर सकते हैं, तो एक नये अवयव मानने की क्या जरूरत ? इस प्रकार श्री लेवोशिये ने वायु की तात्विकता समाप्त की, फ्लोजिस्टन को कल्पनामात्र बताया और नये दहन-सिद्धान्त की स्थापना कर रसायन को नयी प्रयोगकला प्रदान की।

श्री लेवोशिये ने १७८९ में अपने दहन-सिद्धान्त और नयी भाषा को मूर्तरूप देने के लिये रसायन-शास्त्र की एक पाठ्य-पुस्तक प्रकाशित की, जिसका यूरोप की लगभग सभी भाषाओं में क्रमशः अनुवाद प्रकाशित होता रहा। इस पुस्तक में तीन खंड थे, (१) रसायन-शास्त्र की नयी परम्परा और उसका इतिहास (२) तत्वों और यौगिकों का अध्ययन और (३) रसायन-शास्त्र में प्रयुक्त विधियाँ और उपकरण। इसी पुस्तक में सर्वप्रथम जल और वायु को भिन्न-भिन्न तत्वों से मिलकर बना बताया गया था। इसी पुस्तक में बहुत से कार्बनिक अम्लों और किण्वीकरण का अध्ययन प्रस्तुत किया गया था। रासायनिक समीकरण और अविनाशिता के नियम का प्रतिपादन भी सर्वप्रथम इसी समय (१७८९) में प्रकाशित हुआ। इस पुस्तक में ही तत्वों की संशोधित सारिणी भी प्रकाशित की गई। इन सब नये तथ्यों के कथन के बाद भी उन्होंने यह अभिव्यक्त किया कि मैंने अपने प्रयोगों के परिणामों के आधार पर तथ्य उद्घारित किये हैं। अभी विश्लेषण की विधि पूर्ण नहीं है, अतः इन्हें ही अन्तिम रूप मान लेना भ्रान्ति होगी। इस पाठ्य-पुस्तक ने ही, सच पूछिये तो, आधुनिक रसायन-शास्त्र की आधारशिला का काम किया है। यही लक्ष्य में रखकर श्री लेवोशिये ने १७९१ में कहा था, चूँकि सभी वैज्ञानिकों ने मेरे सिद्धान्त को स्वीकार कर लिया है, इससे मैं यह समझता हूँ कि रसायन-शास्त्र में क्रांति हो गई है।'

शरीर-कार्य-विज्ञान के क्षेत्र में उन्होंने भोजन-पाचन तथा श्वासोच्छ्वास क्रिया का विधिवत् अध्ययन किया और बताया कि ये दोनों क्रियायें 'शुद्ध वायु' की उपस्थिति में घटित होती हैं। ये क्रियायें दहन-क्रिया के ही मन्द रूप है। उनके अनुसार फेफड़ों में जाकर 'शुद्ध वायु' कार्बन-डाइ-ऑक्साइड में परिणत हो जाती है। इस परिणमन में काफी मात्रा में ताप उत्पन्न होता है, जिससे शरीर का तापक्रम स्थिर रहता है। अपने इन प्रयोगों में उन्होंने श्री लेपलेस से सहायता ली और एक छोटे से जन्तु-विशेष को अपना प्रयोग-पात्र बनाया। उन्होंने देखा कि १० घण्टे में उसने १३ औंस बर्फ को पिघलाने के योग्य ताप उत्पन्न किया है। उन्होंने १० घण्टे में जन्तु द्वारा उत्पादित CO_2 की मात्रा भी ज्ञात की और बताया कि बर्फ के पिघलनेका ताप जन्तु के श्वास से निःसृत

CO_2 की मात्रा के अनुपात में ही होता है,क्योंकि जब कार्बन और ऑक्सीजन मिलकर CO_2 बनाते हैं, तब काफी ताप उत्पन्न होता है, यह आज सभी जानते हैं। अतः श्वासोच्छ्वास किया मंद दहन है जिसमें जो ताप उत्पन्न होता है, वह फेफड़ों, रक्त और अन्य माध्यमों से सारे शरीर में व्याप्त हो जाता है। श्वास में ली गई वायु दो काम करती है, (१) रक्त में से विषैली गैस निकाल देती है और (२) शरीर का तापक्रम स्थिर रखती है। फलतः श्वासोच्छ्वास क्रिया रासायनिक परिवर्तन है, यांत्रिक नहीं, जैसा कि तब तक विश्वास किया जाता रहा है। श्री लेवोशिये के इस मत में अब केवल इतना ही परिवर्तन हो सका है कि यह परिवर्तन फेफड़ों में न होकर पेशियों (muscles) में होना सिद्ध हो गया है। उक्त प्रयोगों में श्रीमती लेवोशिये ने भी काफी हाथ बटाया और विभिन्न अवसरों—परिश्रम और आराम-के समय ताप की विविध मात्रा की आवश्यकता सिद्ध की। उन्होंने शाकों की पोषण शक्ति का अध्ययन और विवरण भी प्रस्तुत किया।

भौतिक विज्ञान के क्षेत्र में उन्होंने गुब्बारों पर एक विवरण-पत्रिका प्रस्तुत की और हवा की जगह हाइड्रोजन को उसमें भरने का सुझाव दिया। उनके निर्देशन में किये गये गुब्बारे की उड़ान के कुछ प्रयोगों में सर्वप्रथम भेड़, मुर्गे और बत्तखों ने हवा में सैर की और उसके उपरान्त २५ नवम्बर १७६३ को दो पुरुषों ने २००० फीट की ऊँचाई पार की। उन्होंने फ्रांस में प्रचलित माप व तौल की विविध प्रणालियों में एकरूपता लाने के लिये दशमलव प्रणाली का विकास किया एवं ग्राम और सेंटीमीटर प्रणाली प्रचलित की गई। माप-तौल का यह कार्य राष्ट्रीय आयोग द्वारा प्रस्तुत किया गया था, जिसके मन्त्री श्री लेवोशिये स्वयं थे। फ्रांस में राज्यक्रान्ति हो जाने के कारण इस कार्य का विवरण प्रकाशित न हो सका।

कृषि विज्ञान के क्षेत्र में उन्होंने अपने क्षेत्र का अच्छी तरह सर्वेक्षण किया और फ्रांसीसी कृषि की कम उपज के कई कारण खोज निकाले। उन्होंने बताया कि हरे और वानस्पतिक दोनों प्रकार के पदार्थों को मिलाने से अच्छा खाद बनता है और उपज बढ़ती है। इसलिये अपने क्षेत्र में उन्होंने चारे के चरागाहों का विकास क्रिया और पशुओं के मलमूत्र को एकत्रित करने के साधन जुटाये फलस्वरूप १० वर्ष के अन्दर ही उसकी उपज दुगुनी हो गई।

—:-०-:—

प्लास्टिक

अरुण कुमार सक्सेना, बी० एस-सी०

प्लास्टिक का जन्म सर्वप्रथम १८६८ में अमेरिका में हुआ था। उन दिनों बिलियर्ड की गेंदें हाथी दाँत की बना करती थीं, किन्तु हाथी दांत की कमी के कारण गेंद बनाने वालों के समक्ष एक कठिन समस्या उपस्थित हो गई थी। एक कम्पनी के मालिक ने हाथी दांत के स्थान पर अन्य किसी उपयुक्त सामग्री की खोज करने वाले को दस हजार पौण्ड का पुरस्कार देने की घोषणा की। उसी समय एक युवक ने यह पुरस्कार जीतने का निश्चय किया। इसका नाम था **जोन वेजली हेयर।** अपने अथक परिश्रम और अनुसन्धान के अनन्तर उसने गेंद बनाने के लिये सेल्यूलाइड नामक एक पदार्थ को तैयार किया। इसमें उसने कपूर और सेल्यूलोस नाइट्रेट का प्रयोग किया था। यही सेल्यूलाइड सर्वप्रथम अमेरिका के बाजारों में बिकने के लिये आया किन्तु इसकी गेंदें बहुत अच्छी सिद्ध नहीं हुईं।

इकतालिस वर्ष पश्चात् अर्थात् १६०६ में अमेरिका के एक रसायनशास्त्री **डा० लियो हेण्ड्रिक बेकलैण्ड** ने प्लास्टिक के विकास में दूसरा महत्वपूर्ण कदम उठाया। उन्होंने एक अधिक मजबूत तथा कठोर प्लास्टिक का निर्माण किया। यह प्लास्टिक बेकेलाईट के नाम से प्रसिद्ध हुआ। डा० लियो हेण्ड्रिक बेकलैण्ड ने इसको फीनोल तथा फारमेल्डीहाइड नामक पदार्थों से बनाया था,।

विद्युत्-निरोध की आश्चर्य जनक क्षमता रखने के कारण विद्युत-वस्तुओं, यंत्रों, टेलीफोन, रेडियो इत्यादि के निर्माण में इसका बड़े पैमाने पर उपयोग किया गया।

मुख्यतः प्लास्टिक की १७ जातियाँ हैं। कुछ उदाहरण के लिये नीचे दी जा रही हैं

१—सेल्यूलाइड

२—प्लेक्सि गिलास

३—नाईलोन

४—सेल्यूलोस प्रोपियोनेट प्लास्टिक

(१) **सेल्यूलाइडः**—यह टिकाऊ है और इसके ऊपर पानी का प्रभाव नहीं पड़ता है। इसको किसी भी रंग में लाया जा सकती है। इसके खिलौने और कंघी इत्यादि बनाये जाते हैं। इतनी सब अच्छाई होते हुये भी इसमें एक भयंकर दुर्गुण यह है कि यह थोड़ी सी आग दिखाने पर बड़ी शीघ्रता से जल उठता है।

(२) **प्लक्सिग्लासः**—यह **मीथक्रिलेट** से बनाया जाता है। इस पर धक्कों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता हैं और यह काँच के समान पारदर्शक है। इसका उपयोग टेलीफोन रिसीवर तथा हवाई जहाजों की खिड़कियों के लिये काम आता है।

(३) **नाइलोनः**—यह भी अमेरिका में १६३५ में खोज निकाला गया था। यह नकली रेशम के कपड़ों के बनाने के काम में लाया जाता है।

(४) **सेल्यूलोस प्रोपियोनेट प्लास्टिकः**—यही सबसे नवीनतम तथा उत्तम हैं। इसका उपयोग चादरें, फिल्म, इत्यादि बनाने में होता है।

प्लास्टिक के विषय में कुछ रसायन-शास्त्रियों का कथन है कि निकट भविष्य इसका उपयोग इमारतों के बनाने में होगा। आजकल इसका उपयोग भवनों, पाइपों, विद्युत-निरोध, रंग-रोगन, फर्श की बिछावन, काँच, अलमारियों, दीवालों की टाइलों, पर्दो और इसी प्रकार के अन्य कार्यों के लिये होता है। रूस में इसकी नावें, मोटर, और यहाँ तक कि पानी के जहाज बनाने के काम में लाया जा रहा है। अंतरिक्ष के राकेट विमानों में भी यह उपयोगी सिद्ध हुआ है।

भारतवर्ष में भी प्लास्टिक के प्रयोग नित्यप्रति प्रगति पर है। कच्ची फिल्मों के बनाने का कारखाना अभी हाल ही में खोला गया है जो कि पोलीथीन बनाता है। यह भी प्लास्टिक की एक किस्म है।

इसमें कोई सन्देह नहीं है कि निकट भविष्य में प्लास्टिक के उपयोगों में और भी अधिक वृद्धि होगी। तब इसकी उपयोगिता और भी बढ़ती जायेगी।

चीन में कृषि का आठ-सूत्री चार्टर

वू यी-चेंग

"कृषि का आठ-सूत्री चार्टर" आठ उपायों की एक पूरी लड़ी है, जिसे प्रयोग में लाने से उपज में वृद्धि होती है। चार्टर में निम्नलिखित बातें सम्मिलित हैं: गहरी जोताई और मिट्टी का सुधार, खाद, जल-संरक्षण, बीजों का चुनाव, सघन रोपाई, पौधों की रक्षा, खेती का प्रबन्ध तथा खेती का औजारों में सुधार।

चीनी कम्युनिस्ट पार्टी हमेशा इस बात को अत्यधिक महत्व देती आयी है कि किसानों के कृषि-उत्पादन के अनुभवों का निचोड़ निकाला जाए, ताकि वैज्ञानिक सिद्धान्त तथा उत्पादन-क्रिया को परस्पर जोड़ा जा सके और किसानों के अनुभवों को उन्नत व क्रमबद्ध किया जा सके। १६५८ की कृषि की लम्बी छलांग में किसानों तथा शोध-संस्थानों ने सदियों से संचित खेती के अनुभवों को सृजनात्मक ढंग से विकसित किया। उन्होंने विभिन्न उपायों को न केवल समृद्ध किया, बल्कि उनमें सुधार भी किये। चार्टर में दिये गये आठ उपायों में से शायद ही कोई कृषि-टेक्नीक में पूर्णतया नया हो, फिर भी गत वर्ष की भरपूर फसल के फलस्वरूप प्रत्येक को नया अंतर्तत्व मिल गया है।

चार्टर एक पूर्ण इकाई है और उसके आठों सूत्र आपस में घनिष्ठ रूप से जुड़े हुए हैं तथा एक-दूसरे के पूरक हैं। किसी भी एक सूत्र की उपेक्षा से पूरी फसल पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है। उदाहरण के लिए, पर्याप्त खाद और पानी के अभाव में केवल गहरी जोताई से अच्छी फसल नहीं हो सकती। इसी तरह गहरी जोताई किये बिना, काफी मात्रा में डालने से खाद संभवत: फसल गिर जायगी।

आठ उपाय कोई जड़ फार्मूला नहीं हैं, बल्कि ये लचकीले ढंग से इस्तेमाल किये जाने चाहिये। स्थानीय परिस्थितियों पर ठीक से विचार करने के बाद इन पर अमल किया जाता है। प्रत्येक विषय के विशिष्ट प्रबन्ध में मिट्टी, मानव-शक्ति, मौसम, फसल, बीज की किस्म आदि के अनुसार परिवर्तन होता रहता है। यहाँ तक कि एक ही प्रान्त में उदाहरण के लिए क्वांगतुंग में, १०० से अधिक किस्म की मिट्टी पायी जाती है। अतः, पूरे क्षेत्र में एक-जैसी कृषि-टेक्नीक इस्तेमाल नहीं की जा सकती। ऐसे जिलों में जो विभिन्न अक्षांशों पर स्थित हैं अथवा समुद्र-तल से जिनकी ऊंचाई विभिन्न है, लाजमी तौर पर एक ही प्रकार के उपाय काम में नहीं लाये जा सकते।

गहरी जोताई और मिट्टी का सुधार

ऊपरी मिट्टी को गहराई तक ढीला करने के अलावा, जब गहरी जोताई के साथ-साथ पर्त-दर-पर्त खाद डाली जाती है, तो इससे निचली मिट्टी के परिपक्व होने तथा मिट्टी के रवे बनने

में मदद मिलती है। इस तरह, मिट्टी को पानी और खाद हजम करने में मदद मिलती है। गहरी जोताई के बिना पौधे की जड़ें मिट्टी में गहरी नहीं घुस सकतीं। ऐसी दशा में बहुत पास-पास रोपे गये पौधे पर्याप्त मात्रा में पानी और आहार नहीं पाते और फलस्वरूप गिर जाते हैं।

१६५८ के प्रयोगों से यह पुरानी धारणा चकनाचूर हो गयी है कि धान के खेतों को गहरा जोतने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि धान की जड़ें किसी भी हालत में गहरी नहीं जा सकतीं। यही नहीं बल्कि गहरी जोताई, धान के अलावा मक्का, कपास और दूसरी चीजों की भी भारी फसलें तैयार करने में सहायक सिद्ध हुई है।

चीन में पिछले साल ८० करोड़ मऊ जमीन लगभग ३३ सेंटीमीटर गहरी जोती गयी थी। योजना यह है कि काश्त की बाकी जमीन भी, जो गहरी जोती जा सकती है, अगले सालों में एक बार गहरी जोती जायगी।

भूमि के युक्तिसंगत उपयोग तथा मिट्टी के सुधार के लिए आधारभूत सूचना-सामग्री प्रदान करने के लिए, किसान मिट्टी का राष्ट्रव्यापी सर्वेक्षण व विश्लेषण कर रहे हैं। चूँकि किसानों को अपने जिले की मिट्टी की विशिष्टताओं का अच्छी तरह से पता होता है, इसलिए उनके निष्कर्ष —जो वैज्ञानिक परीक्षणों की सहायता से निर्धारित किये जाएंगे—उत्पादन की आवश्यकताओं से घनिष्ठ रूप से जुड़े होते हैं।

मोटी गणना के अनुसार, चीन में ४७ करोड़ मऊ रेह वाली, क्षारीय, बलुई और लाल दोमट तथा अन्य प्रकार की घटिया जमीन है, जिसका सुधार आवश्यक है। १६५८ के अन्त तक, अलग-अलग मात्रा में, २० करोड़ मऊ भूमि का सुधार किया जा चुका था। बाकी भूमि का सुधार अगले वर्षों में किया जाएगा।

खाद

चीनी किसानों में लीद-गोबर, खलिहानों की खाद, पीट (सड़ी हुई वनस्पति) तथा तालाब-पोखरों के तल की गीली मिट्टी जैसी कार्बनिक खादें इस्तेमाल करने की पुरानी परम्परा है। पिछले कुछ वर्षों में हरी खाद की फसलों के रकबे में भी लगातार वृद्धि हुई है। इन खादों से मिट्टी के सुधार में मदद मिलती है और इन्हें प्राप्त करने के लिए प्रचुर स्रोत मौजूद हैं। १६५८ में ये खादें प्रति मऊ पहले से कई गुनी मात्रा में इस्तेमाल की गयीं। रासायनिक खादों के इस्तेमाल में भी पर्याप्त वृद्धि हुई।

रासायनिक खादों की तीव्र मांग की पूर्ति के लिए, पिछले साल लोक कम्यूनों ने देशी प्रणालियों से रासायनिक खाद तैयार करने के बहुत-से कारखाने खोले। इन कारखानों में वे साधारण मशीनें तथा स्थानीय रूप से उपलब्ध कच्चा माल इस्तेमाल करते हैं। इन उपायों से उन्होंने करोड़ों टन रासायनिक खाद तैयार की है! साथ ही, आधुनिक कल-कारखानों ने भी, १६५८ में, रासायनिक खादों के उत्पादन में (एमोनियम नाइट्रेट को छोड़ कर) २६ प्रतिशत वृद्धि कर ली, और

प्रायोगिक तौर पर उन्होंने कुछ नयी खादें भी तैयार कीं। इनमें से कुछ को अब काफी मात्रा में तैयार किया जा रहा है।

१९५८ में, अत्यधिक उपज वाले खेतों ने खाद के प्रयोग में आम तौर पर दो सिद्धान्तों का का पालन किया। प्रथम, इस बात पर जोर दिया गहा कि बाद में अतिरिक्त खाद देने के बजाय, बोने से पहले खेतों में अच्छी तरह खाद देनी चाहिये, उनके अनुपात में भले ही अन्तर हो सकता है। दूसरे, पहले से कहीं अधिक बार अतिरिक्त खाद दी गयी, लेकिन प्रत्येक बार खाद की मात्रा में कमी हो गयी।

जल-संरक्षण

गत वर्ष जल-संरक्षण के लिए जो अकूत परिश्रम किया गया, उसकी बदौलत ४८ करोड़ मऊ काश्त की जमीन की सिंचाई होने लगी। इससे राष्ट्र की कुल सिंचित भूमि एक अरब मऊ हो गयी, जो काश्त की कुल जमीन की लगभग ६० प्रतिशत होती है। आरम्भ में २१ करोड़ मऊ भूमि पर जलानुवेधन की रोक-थाम की गयी।

१९५७ से ही किसान पूरे देश में बहुत-से छोटे-छोटे जलाशय, पोखर तथा सिंचाई की छोटी-छोटी नहरें बना रहे हैं। अधिकतर कांउंटियों में इस प्रकार के दर्जनों, यहाँ तक कि कोड़ियों निर्माण कार्य किये गये हैं। विस्तृत छितराव के कारण, बाढ़ों के नियंत्रण की इनकी कुल सम्मिलित क्षमता, चन्द भारी-भरकम परियोंजनाओं की अपेक्षा कहीं अधिक है। फिर भी कुछ क्षेत्रों में बड़ी और मझोली जल-संरक्षण परियोजनाएं नितांत आवश्यक है।

जल-संग्रह पर अधिक ध्यान दिया जा रहा है। बाढ़ों का मुकाबला करते हुए केवल पानी की निकासी से, कभी-कभी नदी के ऊपर क्षेत्र में सूखा पड़ गया और निचले क्षेत्र में बाढ़ आ गयी। इसके अतिरिक्त, नदी की धाराओं के लिए सीमित समय में बाढ़ का तमाम पानी खींच ले जाना भी काफी मुश्किल था। सर्वांगीण योजना तथा सभी प्रकार की सुविधाओं के उपयोग से, अधिक मात्रा में जल-संग्रह करके, सिंचाई तथा जलानुवेधन दोनों की समस्याओं को संतोषप्रद ढंग से हल किया जा सकता है।

विभिन्न प्रकार की स्थानीय परिथितियों के अनुसार, कई प्रकार की जल-संरक्षण परियोजनाओं का निर्माण किया गया है। उदाहरण के लिए, आन्हवे और कियांग्सू प्रान्तों में हुआई नदी के किनारे के निचले मैदान में, बहुत-सी नहरें और नाले खोदे जा रहे हैं और वे एक-दूसरे को इस तरह काटते हैं कि शतरंज के बिसात की तरह जल-मार्गों का एक जाल-सा बन गया है। इस प्रकार की जल-व्यवस्था सिंचाई और पानी की निकासी की आवश्यकताएं पूरी करने के साथ-साथ, मछली पालन, परिवहन तथा बिजली तैयार करने में भी उपयोगी होती है। जल-मार्गों के दोनों ओर सड़कें बनायी जाएंगी और उन के किनारे पेड़ लगाये जायँगे।

बीजों का चुनाव

चीन में बीज की सुधरी हुई किस्मों का मुख्य स्रोत नाना प्रकार के बीजों का वह भंडार है जिसे चीनी किसान इस्तेमाल करते आये हैं। सावधानी के साथ बीजों का चुनाव और परीक्षण करके, इस स्रोत से स्थानीय परिस्थितियों के उपयुक्त बहुत-से अच्छी किस्म के बीज चुने जा सकते हैं। जिन बीजों की आम प्रचलन के लिए सिफारिश की गयी है, उनमें से ७० प्रतिशत खेतों से प्राप्त हुए हैं। पिछले साल अकेले क्वांगतुंग-प्रान्त में, धान की १२१ किस्में खेतों से चुनी गयीं थीं, जिनमें से प्रत्येक की हर बाली में २०० दानों से कम नहीं लगते।

अनुसंधान शालाएं तथा किसान, दोनों ही नयी किस्मों का चुनाव और प्रजनन कर रहे हैं। पिछले साल हजारों कम्यून-सदस्यों ने इस क्षेत्र में काम किया और दो सौ से ऊपर लोगों ने महत्वपूर्ण परिणाम प्राप्त किये।

१९५८ में, १ अरब ७५ करोड़ मऊ खेतों में यानी काश्त की कुल जमीन के ७६ प्रतिशत भाग में अच्छी किस्म के बीजों से फसलें तैयार की गयीं। १९५७ की तुलना में यह रकबा कोई एक-तिहाई ज्यादा था।

सघन रोपाई

प्रति मऊ उपज बढ़ाने का एक महत्वपूर्ण उपाय समुचित ढंग से की गयी सघन रोपाई है। एक ओर पंक्तियों के बीच और पौधों के गुच्छों के बीच इतना फसला रखना चाहिये कि फसल में हवा और सूर्य का प्रकाश पहुँचने तथा जड़ों के फैलने के लिए पर्याप्त स्थान हो। दूसरी ओर अन्य उपायों—गहरी जोताई, मिट्टी का सुधार, खाद और सिंचाई—का नयी परिस्थित से तालमेल रहना चाहिए, ताकि पूर्ण रूप से भासंश्लेषण (फीटो-सिंथिसिस) हो सके। यदि इन प्रतिमानों के अनुसार सघन रोपाई की जाए, तो छोटी बालियां लगने और फसल गिरने की चिंता नहीं करनी पड़ेगी।

कुछ लोगों की धारणा थी कि धान के एक मऊ खेत में कोई २ लाख बालियां लगनी चाहिए, इससे अधिक नहीं। परन्तु पिछले साल, अधिक उपज वाले बहुत-से खेतों में बालियों की संख्या में काफी वृद्धि कर दी गयी।

किसी भी लोक कम्यून में एक फसल के लिए भी, कोई ऐसे निश्चित नियम नहीं बनाये जा सकते जो सब खेतों में समान रूप से लागू हो सकें। फुक्येन प्रान्त के व्येशिन लोक कम्यून की एक टोली ने मिट्टी, बीज की किस्म तथा दूसरे सम्बन्धित तत्वों पर ठीक से विचार करने के बाद, इस साल पहले होने वाले धान के अपने १,०८० मऊ खेतों में सघन रोपाई के छः प्रतिमान प्रयुक्त किये हैं।

एक मऊ खेत में सघन रोपाई को निश्चय ही अति तक नहीं पहुँचाना चाहिए, बल्कि

उसे एक युक्तियुक्त सीमा के भीतर रखना चाहिए। फसलों की जब सघन रोपाई की गयी हो, तो खेतों के बेहतर प्रबन्ध तथा पौधों की कड़ाई से रक्षा करने की आवश्यकता होती है।

पौधों की रक्षा

पिछले साल पौधों की बीमारियों और कीटाणुओं का निरोध तथा अन्त करने में भी तीव्र प्रगति की गयी, और कई सौ काउंटियों ने फसलों के एक या अधिक प्रमुख शत्रुओं—पौधों की बीमारियों, विनाशकारी कीड़ों, पक्षियों और जानवरों—का सफाया कर डाला। सर्वांग रूप से तथा निरंतर उद्योग करके ही जनता इस कार्य को सम्पन्न कर सकी। पौधों पर आने वाली विपत्तियों के सम्बन्ध में निराशापूर्ण धाराओं को उसने गलत सिद्ध कर दिया।

पौधों की बीमारियों और कीड़े-मकौड़ों के जन्म और प्रसार के सम्बन्ध में समय से सूचना देना, पौधों की रक्षा के लिए अत्यन्त आवश्यक है। प्रारम्भिक रिपोर्टों के अनुसार, १९५८ के अंत तक ६७८ अग्र-सूचना केन्द्र तथा १२,००० सूचना केन्द्र काम कर रहे थे और लाखों लोग कम्यूनों में सूचना एकत्र कर रहे थे। इससे मानव-शक्ति तथा सामग्री का किफायत से प्रयोग करके, शीघ्रातिशीघ्र पौधों की बीमारियों और कीटाणुओं का नाश करने में काफी सहायता मिलती है।

आधुनिक कारखानों में कीटाणुनाशक दवाइयां बनाने के साथ-साथ, पिछले साल किसानों ने सैकड़ों प्रकार की स्थानीय सामग्री से—अधिकतर जंगली पौधों से—'देसी' कीटाणुनाशक दवाइयां तैयार कीं। इनमें से कुछ दवाइयां काफी प्रभावपूर्ण हैं। उदाहरण के लिए, भूमिगत विनाशकारी कीटाणुओं को मारने में **यूफोर्बिया हेलिओस्कोपिया** का चूर्ण तथा **नेफोटेटिक्स एपीकैलिस सिंक्टीसेप्स** का मुकाबला करने में **पालीगोनम नोडोसम पेर्स** से संतोषजनक परिणाम प्राप्त हुए हैं।

खेत का प्रबन्ध

चीनी किसानों में अत्यन्त परिश्रम और सावधानी के साथ खेत को कमाने की सुन्दर परम्परा है। १९५८ में पूरे देश में खेत के प्रबन्ध में काफी उन्नति हुई: हेंगी चलाने, घास-पात साफ करने, सिंचाई और खाद देने का काम पहले से भी अच्छे समय पर और अधिक सावधानी के साथ किया गया। अधिक उपज वाले बहुत-से खेतों की सफलता का खेत के उत्तम प्रबन्ध से अटूट सम्बन्ध रहा है। उदाहरण के लिए कियांग्सू प्रांन्त की स्चेयांग काउंटी को ही लीजिए। वहां दो लाख मऊ से अधिक भूमि पर भारी परिमाण में कपास पैदा की गयी। खेतों को कमाते समय, अन्य उपायों के अलावा, ६ से १४ बार तक खाद डाली गयी, १० से भी अधिक बार हेंगी चलायी गयी और घास-पात साफ की गयी तथा सूखे का सामना करने के लिए दो बार और पानी दियां गया।

आजकल चीन के गावों में यह कहावत प्रचलित है कि खेत का प्रबन्ध "आसमान, जमीन और फसल को देख कर" करना चाहिए। इसका अर्थ यह है कि वह मौसम, मिट्टी की दशा और फसल के विकास के अनुसार होना चाहिए।

खेत के औजारों में सुधार

अधिक उपज के उपायों को लागू करने से, खेती का काम इतना ज्यादा बढ़ गया है कि साधारण और पिछड़े हुए औजारों से उसे पूरा करना संभव नहीं रहा। पहले, चीन के देहातों में मशीनी उपकरण बहुत ही सीमित थे, और बड़े पैमाने पर मशीनी खेती तो अभी भी धीरे-धीरे प्राप्त करनी है। इस समय खेती के औजारों में सुधार करना—पुराने व पिछड़े औजारों को सुधारना तथा अधिक कारगर औजार बनाना—मशीनी खेती के मार्ग पर एक आवश्यक कदम है।

पिछले साल, जल-संरक्षण परियोजनाओं के निर्माण, खाद जमा करने और परिवहन में इस्तेमाल होने वाले औजारों के सुधार के साथ, खेती के औजारों को सुधारने का जन-आन्दोलन शुरू हुआ था उसके बाद सिंचाई, पानी की निकासी, खेत कमाने तथा फसल काटने के औजारों में सुधार किया गया। फिर जुलाई में एक और उभार आया। इस बार गाड़ियों के पहियों में तथा खेती के औजारों के घूमने वाले पुर्जों में बाल-बियरिंग लगाने का अन्दोलन चला। अक्तूबर में तार से खींचे जाने वाले औजारों का प्रचलन होने लगा।

१९५८ में, समस्त चीन में भारी संख्या में सुधरे हुए औजार प्रचलित किये गये। साथ ही, खेती के औजार बनाने के ४०,००० कल-कारखाने खोले गये। पुराने, सीधे-सादे औजारों के मुकाबले में नये औजारों से कार्य-कुशलता ४ से १२ गुनी तक बढ़ गयी।

['आज का चीन' से साभार उद्धृत]

सहकारी कृषि—(२)

डा० शिव गोपाल मिश्र

"द्वितीय पंचवर्षीय योजना की प्रारम्भिक रूपरेखा" के पाँचवे अध्याय में सहकारिता के विकास पर पूर्ण रुप से विचार किया गया है। उसके निम्न अंश सारगर्भित ज्ञात होते हैं :—

"४—ऐतिहासिक कारणों से गत पचास वर्षो से सहकारिता का अधिकांश विकास ग्रामीण क्षेत्रों में ऋण की व्यवस्था के रूप में हुआ है। उचित शर्तों पर उचित ऋण की व्यवस्था निश्चय ही सहकारिता का एक अत्यन्त प्रमुख अंग है पर इस अन्दोलन के और विस्तृत तथा दूरगामी उद्देश्य हैं। सहकारिता में मुख्य इकाई गाँव है। सहकारिता के कार्य-क्रम को कार्यान्वित करने में तीन बातों पर विशेष रुप से ध्यान दिया जाता है —प्रथम तो यह कि ऋण व्यवस्था सहकारिता का आरम्भ मात्र है। इसके आगे बढ़कर सहकारिता को गाँव की और बहुत सी प्रवृत्तियों को अपने अन्तर्गत लेना होता है। **सहकारिता के आधार पर खेती भी इसमें सम्मिलित है**। इस सहकारिता में विकास के कठोर नियम नहीं बनाये जा सकते और अनुभव ही प्रत्येक अगले कदम को निर्धारित करता है।......"

"११—सहकारी ग्राम व्यवस्था के संक्रान्ति काल में ग्रामों में जमीन की व्यवस्था तीन विभिन्न तरीकों पर की जावेगी। प्रथम ऐसे व्यक्तिगत खेतिहर होंगे जो अपने खेतों में काम करेंगे। दूसरे, खेतिहारों के ऐसे समुदाय होंगे जो अपने ही हित में स्वेच्छा से अपने खेतो को सहकारी कार्य संस्थाओं में दे देंगे। तीसरे, कुछ भूमि ऐसी होगी जो सारे ग्राम समाज की होगी। इसमें गाँव की सारी भूमियां, ग्राम स्थान, ग्राम कृषि योग्य पड़ती जमीनें तथा वे जमीनें होंगी जिनका स्वामित्व अथवा जिनकी व्यवस्था प्रत्येक के लिये अधिकतम कृषि भूमि की व्यवस्था के बाद ग्राम के हाथ में आ जायगी, इसके अतिरिक्त वे भी भूमियाँ होंगी जो भूमिहींनों के बसावट के लिके उपहार में दी जायंगी। इस प्रकार ग्राम की भूमि व्यवस्था के अन्तर्गत देखने को मिलेगा—एक व्यक्तिगत क्षेत्र, ऐच्छिक सहकारिता क्षेत्र तथा सामुदायिक क्षेत्र। उद्देश्य यह होगा कि सहकारिता क्षेत्र को तब तक बढ़ाया जाय जब तक ग्राम की समस्त भूमि की व्यवस्था ग्राम समाज की सहकारी जिम्मेदारी नहीं बन जाती।···सहकारिता अपने सब रूपों में और सब क्षेत्रों में स्वागत योग्य चीज है।"

"२०—सहकारिता सभी प्रकार के ग्राम विकास का आवश्यक अंग है। दूसरी पंचवर्षीय योजना में राज्यों में सहकारी बिकास के लिये जों कार्य-क्रम निर्धारित किये गये हैं वे मुख्यत; ऋण तथा बिक्री से तथा कुछ अंश में वस्तुशोध से सम्बद्ध हैं। **सहकारी कृषि के कार्य-क्रम पर** अभी तक पर्याप्त ध्यान नहीं दिया गया हैं। इस पहलू पर और विचार किये जाने की आवश्यकता है।"

"२१—पहली पंचवर्षीय योजना में छोटे तथा मध्यम दर्जे के किसानों की स्वेच्छा से सहकारी कृषि संस्थाओं के रूप में संगठित होने के लिये कुछ सुझाव दिये गये थे।···समिति ने यह सुझाव दिया है कि जिन क्षेत्रों में साम्पत्तिक अधिकार सहकारी कृषि की स्थापना के मार्ग में बाधक नहीं—

उदाहरणार्थ गैर सरकारी पड़ती भूमि जिन्हें सुधारा गया है अथवा वे भूमि जो अधिकतम कृषि भूमि निर्धारण के बाद अतिरिक्त भूमि के रूप में प्राप्त होगी—वहां बन्दोबस्त यथासम्भव सहकारी आधार पर किया जाय। इन क्षेत्रों में सहकारी कृषि कार्यो के लिये उपयुक्त तरीकों को उन्नत करने के जोरदार प्रयत्न किये जाने चाहिये और आवश्यक टेकनिकल पथ प्रदर्शन, आर्थिक सहायता तथा देखभाल की व्यवस्था की जानी चाहिये। जो खेत छोटे हैं, उनमें इस उद्देश्य से विशेष ध्यान दिया जाना चाहिये कि वहाँ सब कामों में सहकारिता को विकसित किया जा सके।"

इसी रूप रेखा में आगे 'भूमि सुधार' की भूमिका में लिखा गया है "भूमि विहीन कृषि मजदूरों के लिये भूमि की व्यवस्था करने की दृष्टि से कोई उपाय नहीं किया है और सहकारी कृषि तथा ग्राम व्यवस्था की दिशा में जो कदम उठाये गये हैं वे भी अनुत्साह पूर्ण एवं अपर्याप्त हैं। स्पष्ट है कि भूमि सुधार कानून से उस हद तक लाभ नहीं हुआ है, जितनी कि आशा थी।

सन् १९५७-५८ की खाद्य और कृषि मन्त्रालय की वार्षिक रिपोर्ट में पृ० ४९-५० पर **'सहकारी खेती'** के विषय में निम्न वक्तव्य प्रकाशित हुआ है।

"जुलाई १९५६ में राज्यों के सहकारी मन्त्रियों का एक सम्मेलन मसूरी में हुआ था। उसने सिफारिश की थी कि सहकारी खेती करवाने के लिये हमें अपना लक्ष्य यह रखना चाहिये कि द्वितीय पंचवर्षीय योजना की अवधि में प्रत्येक राष्ट्रीय-विस्तार खण्ड में कम से कम एक सहकारी खेती संस्था का संगठन कर दिया जाय जिससे कि १९६०-६१ तक देश भर में सहकारी खेती के कोई ५ हजार प्रयोग योजना पूर्वक होने लगें। भारत सरकार ने एक दल चीन भेजा कि वह वहां सहकारी खेती का अध्ययन करके आवे क्योंकि सुना था कि वहां इस प्रकार की खेती बहुत सफल हुई है। इस दल ने चीन में इस प्रकार की खेती का विस्तृत अध्ययन करके अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत कर दिया। अब भारत सरकार ने उसकी सिफारिशों पर राज्य सरकारों के सुझाव और विचार मांगे हैं। उन्हें देखकर सहकारी खेती का रूप निर्धारित होगा।"

राष्ट्रीय विकास परिषद की स्थायी समिति ने १४ तथा १५ सितम्बर १९५७ को अपनी बैठकों में निश्चय किया था कि आगामी ३ वर्षो में सहकारी खेती के लगभग ३ हजार प्रयोग किये जांय और उनमें से ६०० तो १९५८-५९ में ही आरम्भ कर दिये जायें; तथा सहकारी खेती का काम सिखाने के लिये तीन प्रादेशिक प्रशिक्षण केन्द्र खोले जायें।

उपरोक्त भूमिका में नागपुर सम्मेलन के सहकारी कृषि सम्बन्धी प्रस्ताव किसी प्रकार भी नवीन एवं क्रान्तिकारी नहीं दिखाई पड़ते। कांग्रेस सरकार अपने पूर्व-वचनों का पालन मात्र करती दिखाई पड़ती है। हां, इससे इतना अवश्य स्पष्ट हो जाता है कि हमारे देश के शिक्षित लोग भी पुराने प्रस्तावों को भूलकर उनके दुहराये जाने पर उनके विरोधी बन गये हैं। राजा जी, मुंशी जी अथवा रंगा या मसानी के वक्तव्यों की कटुता का प्रतिकार उपरोक्त भूमिका में स्वतःसिद्ध है। निश्चित रूप से सहकारी कृषि का विरोध आज से चार वर्ष पूर्व ही डट कर होना चाहिये था किन्तु तब तो ऐसा लगता है कि सभी नेता जनता सहित निश्चेष्ट थे, सहकारी कृषि से अनभिज्ञ सहकारी

कृषि के विरोधियों का कथन है कि इस पद्धति के द्वारा व्यक्तिगत सम्पति का समूल विनष्टीकरण हो जावेगा, व्यक्ति-स्वातंत्रय न रहेगा और शीघ्र ही सारे देश में साम्यवाद फैल जावेगा। पता नहीं साम्यवाद से भयभीत होने के कारण सहकारी कृषि को भय का भूत क्यों समझा जाने लगा है। राजनीति किसी भी प्रकार की वैज्ञानिक प्रगति के लिए घातक होती है। राजनीति कूटनीति है और इससे सारे कार्यों के प्रति शंका बढ़ती जाती है। बेचारी सहकारी कृषि को भी भारत में राजनीति का शिकार बनना पड़ रहा है। एक ओर जहां सहकारी कृषि के समर्थकों को इस पद्धति के चमत्कारी प्रभावों एवं गुणों का अनुभव एवं ज्ञान है वहीं दूसरी ओर वे अपनी भूमि के जाने, स्वत्व के छिनने तथा श्रमजीवियों को अपने ही स्तर पर उठने के भयभीत हैं। ऐसी ही स्वार्थ की लड़ाइयों में भारत में सहकारी कृषि एक भयावह राक्षस के समान किसानों, जमींदारों अथवा भूपतियों के समक्ष दृष्टि गोचर होती है। रूस अथवा चीन जैसे साम्यावादी राष्ट्रों में आत्म निर्भरता की आधार शिला सहकारी कृषि ही है। ये ही देश सहकारी कृषि के लिये विश्व भर के लिये आदर्श एवं पथप्रदर्शक हैं। भारत में भी सहकारी कृषि का अनुकरण चीन अथवा रूस से है। परन्तु साम्यवादी राष्ट्रों में, कहा जाता है, सहकारी कृषि रात्रि भर में लाद की गई। पता नहीं हमारी जनवादी सरकार मत गणना के आधार पर अपने लक्ष्य में सफल होगी या नहीं, जब उसी में से कुछ लोग सहकारी कृषि की बुराइयों पर ही जोर देने लगे हैं।

यहाँ रूस की सहकारी कृषि का सूक्ष्म परिचय अत्यन्त आवश्यक प्रतीत होता है। साम्यवादी सिद्धान्तों के अनुसार यदि सहकारिता का आन्दोलन राष्ट्रीय आधार पर संगठित किया जाय तभी यह जनसाधारण के लिये कल्याणकारी हो सकता है। मार्क्स के सिद्धान्तों के अनुसार सहकारिता राज्य के द्वारा संचलित सारे देश की जनसंख्या की परतंत्रता तथा दरिद्रता के विनाश के लिये होनी चाहिए। रूस में सहकारिता का मूल-सिद्धान्त यही है। अन्य भी कारण हैं जिनके द्वारा रूस में सहकारिता को प्रोत्साहन मिला। प्रथम तो यह कि १६२१ के गृह युद्ध के पश्चात् रूस में कृषि उत्पादन घट गया था। आवश्यकता हुई कि उसे बढ़ाकर उचित वितरण किया जाय। दूसरे यह कि रूस अत्यन्त विस्तृत देश है। सम्पूर्ण भूभाग में वस्तुओं के पहुँचाने के लिये आवश्यक था कि शृङ्खला-बद्ध सहकारी समितियाँ खोली जायँ। फिर रूस में सहकारी समितियों को तो राज्य के अधिकारों में भी साझी बनने का अधिकार प्राप्त है। रूस में भी सहकारी आन्दोलन एकाएक प्रारम्भ नहीं हुआ। सन् १८०३ ई० में सर्वप्रथम शाहंशाह ने एक आज्ञा जारी की जिसमें नये रूस में आबाद होने वाले व्यक्तियों को खेती की उन्नति के लिये तकाबी दी गई। धीरे-धीरे किसानों को उधार देने वाले बैंकों की स्थापना हुई। सन् १८६५ ई० में जाकर पहली उपभोक्ता समिति की स्थापना हुई। फिर रूस में सहकारिता आन्दोलन ने जोर पकड़ा। उसके अन्तर्गत निम्न विकास आये :—

१—आर्टेल्स—कृषि तथा औद्योगिक

२—कृषि समितियाँ और संस्थायें

३—उपभोक्ता समितियाँ

४—उधार और बचत समितियाँ

५—कोआपरेटिव यूनियन

अक्टूबर क्रान्ति के समय रूस में ८ हजार कृषि समितियाँ तथा ५ हजार उत्पादक समितियाँ ग्राम के मजदूरों और कारीगरों द्वारा निर्मित थीं। गृह युद्ध के कारण ये सभी भिन्न भिन्न हो गईं परन्तु उत्पादन की वृद्धि के लिये आवश्यक था कि उनका पुनरुद्धार किया जाय। फलतः १६११ ई० में कृषि सहकारी समितियों के पुनः संगठन की आज्ञा मिल गई। तब से टुकड़ों में बँटी भूमि, कटी भूमि और पड़ती भूमि सामूहिक कृषि के रूप में प्रयोग में आने लगी। सामूहिक कृषि एक संगठित संस्था है जिसे राष्ट्र की ओर से भूमि-पट्टा लिखा कर सामूहिक हित के लिए कुछ लोगों को उत्पादन के लिये दी जाती है। इसमें किसी भी कृषक का स्वामित्व नहीं होता। एक व्यक्ति १—५ एकड़ तक का अधिकारी होता है। उसे एक गाय, दो बैल, २० भेड़ें तथा कुछ खरगोश आदि रखने के अधिकार प्राप्त होते हैं। कृषक इस भूमि पर खेती करता है। ये सब कार्य घरेलू कार्य में सम्मिलित होते हैं। सामूहिक कृषि से इनका कोई सम्बन्ध नहीं है। सदस्यगण एक प्रबन्ध-समिति बनाते हैं जो खेतों का प्रबन्ध, श्रम के अनुसार धन का विभाजन आदि करती है। मजदूरों की ५ से १० तक की संख्या 'चेन' कहलाती है, ३०--८० की संख्या को 'ब्रिगेड' कहते हैं। ब्रिगेड का नेता प्रबन्ध समिति द्वारा नियुक्त किया जाता है, जो सदस्य के कामों का बटवारा करता है। ट्रैक्टर स्टेशन द्वारा कई फार्मों को यान्त्रिक सहायता पहुँचाई जाती हैं। किसानों की प्राविधिक शिक्षा का भी आयोजन होता है।

कृषि की उत्पत्ति ४ भागों में बाँटी जाती है। उत्पादन का एक भाग सामूहिक फार्म द्वारा जानवरों को खिलाने तथा बीज आदि के लिये रख लिया जाता है। दूसरा भाग राज्य स्वयं ले लेती है। तीसरे भाग से ट्रैक्टरों आदि के किराये चुकाये जाते हैं। तब जो कुछ बचता है वह राज्य के अन्न भण्डार के लिये बेंच दिया जाता है। मजदूरी मजदूर को योग्यता और कार्य के अनुसार जो काम नहीं करता वह खाना भी नहीं खाता के आधार पर निर्धारित जाती है। इस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति को न्यूनतम कार्य करना निश्चित रहता है। हर एक व्यक्ति को जो उसे अधिक कार्य करता है अधिक और जो कम कार्य करता है उसे कम पारिश्रमिक दिया जाता है। परन्तु यह नियम बहुत दिनों तक नहीं चल पाया। सन् १६३५ में कार्यों के अलग-अलग स्तर भी बनाये गये और सन् १६४० में यूक्रेन गणतन्त्र में तो सदस्यों के आश्रितों के लिये भी कुछ छूटें दी गईं।

रूस के लोग उपरोक्त प्रकार की कृषि-पद्धति को सहकारी कृषि ही मानते हैं परन्तु विश्व के अन्य देश इस प्रकार की कृषि को सामूहिक ही कहते हैं। रूसी लोगों का तर्क है कि ऐसी खेती में सदस्यता वाध्य होती है, और प्रबन्ध जनतन्त्रात्मक ढंग से होता है क्योंकि प्रत्येक पद के लिये निर्वाचन होता है तथा उत्पत्ति का विभाजन भी सदस्यों द्वारा किये गये श्रम के अनुसार होता है। परन्तु प्रतिपक्षियों का कथन है कि रूस में सहकारी खेती नहीं प्रत्युत सामूहिक खेती होती है जो राज्य द्वारा संचालित होती है जिसमें सदस्यों को वाध्य होकर कार्य करना पड़ता है, जो सहकारिता के सिद्धान्तों के विरुद्ध है। यहीं नहीं प्रबन्ध समिति में भी राज्य का हाथ रहता है। बोर्ड का अध्यक्ष पार्टी का आदमी होता है। इस प्रकार अप्रत्यक्ष रीति से सरकार खेतों पर अपना प्रभाव बनाये हुए है। यही नहीं सामूहिक खेती की सफलता सरकार द्वारा दिये गये अनुदानों—विशेषतया ट्रैक्टर, बीज आदि—पर निर्भर करती है। इस प्रकार राज्य का अधिकाधिक आधिपत्य रहता है। ऐसी अवस्था में सामूहिक कृषि को सहकारी कृषि नहीं कहा जा सकता।

इन्हें पारिभाषिक रूप में चाहे जो संज्ञा प्रदान की जाय परन्तु इतना तो निश्चित है कि सहकारी अथवा सामूहिक कृषि के द्वारा रूस ने अन्नोत्पादन को खूब आगे बढ़ा लिया है। वहाँ की भूमि का उचित प्रयोग हुआ है। वैज्ञानिक रीति से खेती करने का मार्ग खुला है। आज रूस कृषि उत्पादन में सबसे आगे है और कृषि को उन्नत बनाने के लिये नयी-नयी योजनायें बनाई जा रही हैं। भारत के कल्याण का मार्ग भी ऐसी ही कृषि पद्धति के अपनाने से प्रशस्त होगा। जिनके पास भूमि नहीं हैं, इन्हें भूमि मिलेगी, उनकी जीवन भर की साध पूरी होगी, वे अपने लिये नहीं राष्ट्र के लिये कार्य करेंगे; अपने नहीं राष्ट्र के खेत जोते-बोवेंगे। राष्ट्र के लिये ही जीवेंगे और मरेंगे। सबों में समानता आवेगी। अपने-पराये का भेदभाव न रहेगा। छोटे खेत आपस में मिलकर बड़े बनेंगे, जिनमें बैल नहीं मशीने कार्य करेंगी। सबों की भूमि-तृषा मिट जावेगी। अन्नोत्पादन बढ़ेगा; राष्ट्र से भुखमरी हटेगी। जनता सुख से रहेगी। सुरक्षा शिक्षा आदि का भार राज्य की सरकारों पर होगा। सहकारी या सामूहिक खेती भारत के लिये वरदान सिद्ध होगी।

———

संकलनकर्ता—डा० शिवगोपाल मिश्र

वन महोत्सव और भूमि संरक्षण

अनुमान है कि भारत में २,८१ लाख वर्ग मील में जंगल हैं। यह देश के क्षेत्रफल का २२·३ प्रतिशत है।

जहाँ सोवियत रूस में प्रति व्यक्ति पीछे जंगलों का क्षेत्रफल ३·५ हैक्टर (१ हैक्टर २· ४७४ एकड़) और अमेरिका में १·८ हैक्टर बैठता है, वहाँ भारत में यह केवल ०·२ हैक्टर ही पड़ता है।

यह नहीं कि हमारे देश में जंगल कम है, बल्कि यह भी कि हमारे देश में वनों से लकड़ी भी कम मिलती है। फ्रांस में प्रति वर्ष प्रति एकड़ ५६·८ घनफुट लकड़ी मिलती है, जापान में ३७·० घनफुट ,अमेरिका में १८·० घनफुट और भारत में केवल २·५ घनफुट। इसके अलावा देश के कुछ भागों में जंगल हैं और कुछ में बहुत ही कम।

जंगलों की कमी का खेती और मौसम आदि पर असर पड़ना स्वाभाविक है। इसी कारण भारत में मौसम में परिवर्तन होता रहता है। और बाढ़ों में आने तथा जमीन के कटने आदि के कारण पैदावार कम हो गयी है।

भूमि के कटने और मरुस्थल बनने की क्रिया का सबसे अच्छा उदाहरण पव्वी और शिवालिक पहाड़ियों (पंजाब) का है। राजस्थान के मरुस्थल के बढ़ने के भी प्राय: समाचार आते रहते हैं। भारत में इधर कुछ वर्षों से काफी बाढ़ें आने लगी हैं। कुछ हद तक इसका कारण भी वनों का तेजी से सफाया होना है।

भारतवासियों को वृक्षों की उपयोगिता समझाने के लिये ही १९५० में देश भर में वन-महोत्सव का श्रीगणेश किया गया।

भूमि के कटाव को रोकने के लिये सरकार ने कई योजनाएँ बनायीं हैं। दूसरी योजना के पहले दो सालों में ४ लाख ६४ हजार एकड़ भूमि के कटाव को रोकने के लिए उपाय किये जा चुके हैं।

पहली पंचवर्षीय योजना में जाँच से यह पता चला था कि देश की २० करोड़ भूमि ऐसी है, जो हवा, नदियों और समुद्र से धीरे धीरे कट सकती है। इसमें से १ करोड़ भूमि ऐसी

है, जिसमें खेती की जाती है। जो भूमि कई महीनों बेजुती पड़ी रहती है, उसके संरक्षण की भी जरूरत है। इसी प्रकार उन क्षेत्रों में जमीन की रक्षा होनी चाहिए जहाँ का पानी किसी नदी में जाता है और बहते हुए जमीन को काटता जाता है। इससे एक तो पानी का सदुपयोग होगा, दूसरे नदियों और बाँधों में मिट्टी जमा नहीं होने पायेगी।

भारत के विभिन्न भागों की भूमि-कटाव को रोकने के लिये जो योजनाएँ बनायी गयी हैं,वे एक सी नहीं हो सकती हैं। विभिन्न क्षेत्रों की भौगोलिक स्थिति को देखते हुए ही यह योजनाएँ बनायी जाती हैं। हाल से अनुमान से पता चला है कि भारत के कुछ खास क्षेत्रों में जैसे, भारतीय प्राय-द्वीप, मध्यभारत के काली मिट्टी वाले क्षेत्र, हिमालय क्षेत्र और पूर्वी भारत के लाल मिट्टी के क्षेत्र में कटाव की समस्या काफी जटिल है और यहाँ कम से कम १० करोड़ एकड़ कृषि भूमि को कन्टूर बाँध कर या मारू खेती द्वारा बचाने की जरूरत है। करीब ५ करोड़ पड़ती और बिना जोती बोयी जमीन को इसलिये कटने से बचाना होगा कि इसके आसपास की कृषि योग्य भूमि की रक्षा हो सके। राजस्थान के रेगिस्तान में लगभग ५ करोड़ एकड़ भूमि में घास आदि उगाकर रेगिस्तान को रोकने की जरूरत है। इस क्षेत्र में कहीं-कहीं ऐसी घासदार पट्टियाँ बनानी होंगी, जो रेत के एक जगह से उड़कर दूसरी जगह जाने में रुकावट पैदा कर सकें।

पहली पंचवर्षीय योजना की अवधि भूमि में की रक्षा के प्रयत्न किये गये और ७ लाख एकड़ भूमि में रक्षा के उपाय बरते गये। १९५३ में केन्द्रीय भू-संरक्षण मण्डल स्थापित किया जो राज्य सरकारों और नदी घाटी-योजनाओं के अधिकारियों को उनके क्षेत्र में जमीन को कटने से बचाने के काम में सहायता देता है और आवश्यक कर्मचारियों को काम सिखाने की व्यवस्था करता है। मण्डल ने देहरादून, चण्डीगढ़, कोटा, आगरा, बसद (आनन्द), बिलारी, उदकमण्डलम, छत्रा और जोधपुर में अनुसन्धान केन्द्र स्थापित किये हैं।

दूसरी पंचवर्षीय योजना में कहा गया है कि हवा और पानी के निरन्तर प्रवाह से बहुत सी उपयोगी भूमि बेकार हो गयी हैं। इसी बात को ध्यान में रखकर भू-संरक्षण के कामों के लिये योजना में लगभग २५ करोड़ रुपया रखा गया।

जमीन कटना रोकने के लिये शिल्पिक तथा सीखे हुए कर्मचारियों की जरूरत पड़ती है। अनुमान लाया गया है कि पाँच हजार एकड़ भूमि में भूमि संरक्षण योजना लागू करने के लिये एक अधिकारी ५ सहकारियों तथा २० उप-सहकारियों की एक यूनिट की जरूरत पड़ती है। दूसरी योजना में ३० लाख एकड़ भूमि के कटाव को रोकने का लक्ष्य निर्धारित किया गया है। इसके माने यह है कि इसके लिये २०० अधिकारियों, १ हजार सहकारियों और ४ हजार उप-सहकारियों की जरूरत पड़ेगी।

जहाँ तक अधिकारियों की ट्रेनिंग का प्रश्न है, उनके लिए देहरादून में एक केन्द्र खोला गया है। इस केन्द्र में हर साल २०० अधिकारियों को ट्रेनिंग दी जाती है, किन्तु इस केन्द्र को बढ़ाया जा सकता है तथा हर साल लगभग ५० अधिकारियों की ट्रेनिंग व्यवस्था की जा सकती है। इसी प्रकार सहकारियों की समस्या भी हल की जा सकती है। इस समय सहकारियों की ट्रेनिंग के लिये ४ केन्द्र कोटा, बिलासी, उदकमण्डलम और हजारीबाग में हैं। यहाँ उम्मीदवारों की ६ महीने

की ट्रेनिंग दी जाती है। यदि यहाँ भर्ती किये जाने वाले उम्मीदवारों की संख्या ८० से बढ़ाकर ११० कर दी जाय तो भू-संरक्षण योजनाओं के लिये आवश्यक संख्या में सहकारी मिल सकते हैं। ये उपाय ऐसे हैं, जिन्हें आसानी से अमल में लाया जा सकता है। उप-सहकारियों को ट्रेनिंग राज्य सरकार द्वारा खोले गये केन्द्रों में दी जाती है। इस समय विभिन्न राज्यों में ऐसे १० केन्द्र हैं।

देश में अनाज की उपज बढ़ाने तथा अधिक से अधिक लोगों को रोजगार देने की आवश्यकता को देखते हुए भू-सरक्षण कार्यक्रम का महत्व और भी अधिक बढ़ जाता है। इस कार्यक्रम के परिणामस्वरूप बिना सिंचाई वाले ५० से ६० प्रतिशत क्षेत्र में खेती की उपज बढ़ाई की जा सकेगी। यह अनुमान लगाया गया है कि भू-संरक्षण वाली हर १० लाख एकड़ भूमि में लगभग २ करोड़ जन-हितों का काम लगा। इससे यह अन्दाज लगाया जा सकता है कि दूसरी योजना के पहले दो वर्षों में पाँच लाख एकड़ भूमि में भू-संरक्षण कार्यक्रम के कारण एक करोड़ जन-दिन काम हुआ होगा।

भूमि कटाव-समस्या की जटिलता और उपज बढ़ाने की आवश्यकता को देखते हुए तीसरी योजना में खेती योग्य भूमि के कटाव को रोकने कार्यक्रमों को कई गुना बढ़ाना पड़ेगा। इन कार्यक्रमों के द्वारा जो भूमि खेती योग्य हो गई है, उनका कटाव फिर से न होने पाये, इसकी देखभाल पर विशेष जोर दिया जायगा।

शुद्ध और सस्ता नमक

नमक मनुष्य के लिये सबसे काम की वस्तु है। इसी कारण इसका मनुष्य के सामाजिक जीवन और सामाजिक रीति-रिवाजों से बहुत सम्बन्ध है। पानी में नमक डालकर वचनवद्ध होना नमक हलाली आदि रिवाज और उक्तियाँ नमक और मनुष्य की घनिष्ठता की परिचायक हैं। प्राचीन भारत में नमक सिक्के का काम देता था और रोम की सेनाओं को वेतन नमक के रूप में ही दिया जाता था। अंग्रेजी शब्द 'सैलरी' की उत्पत्ति ही रोमन शब्द 'सैलेरियम' से हुई है, जिसका अर्थ होता है, नमक-धन।

आधुनिक युग में नमक से अन्य बहुत से पदार्थ बनने लगे हैं और दुनिया भर में जितना नमक बनता है उसका अधिकांश रासायनिक पदार्थ बनाने के काम आता है। भारी रासायनिक पदार्थ जैसे सोडा ऐश, कास्टिक सोडा, क्लोरीन, नमक का तेजाब, सोडियम सल्फेट आदि नमक से ही बनते हैं और साबुन, रंगों, चमड़े, कपड़े, काँच, मिट्टी, धातु और चीजों को ठण्डा करने के उद्योग में भी नमक का बहुत इस्तेमाल होता है। ६२ बड़े-बड़े उद्योगो में शुद्ध नमक की जरूरत होती है।

नमक के इसी महत्व के कारण नमक, गंधक के तेजाब और इस्पात के उत्पादन और उपभोग से ही देश की समृद्धि आंकी जाती है। १९५३ में भारत में नमक की प्रतिव्यक्ति खपत १४ पौंड थी, जब कि संसार भर का यह औसत ४० पौंड का था। उसी साल संसार भर में ५ करोड़ ६० लाख टन नमक तैयार हुआ और भारत में ३१ लाख टन।

कुछ समय पहले शासन नमक उद्योग से कर उगाहना ही अपना काम समझता था। कर वसूल करने के लिये तो काफी कड़े नियम बनाये गये थे, किन्तु नमक की किस्म सुधारने के लिये

कुछ नहीं किया जा सकता था। देश में अपनी जरूरत लायक भी नमक नहीं बनता था। इसका परिणाम यह हुआ कि १९५० तक हमें कई लाख टन नमक विदेशों से मँगाना पड़ता था। इससे बढ़कर आश्चर्य की और क्या बात हो सकती थी कि ३,५०० मील लम्बे समुद्र तट वाले देश को भी नमक के लिये दूसरों का मुहताज रहना पड़े।

स्वतन्त्रता के बाद सरकार ने नमक उद्योग को सुधारने और बढ़ाने की ओर बहुत ध्यान दिया और इसी कारण देश में इस उद्योग ने इतनी उन्नति की है।

अभी तक देश में नमक के उपयोग और नमक उद्योग की उपवस्तुओं से दूसरी चीजें तैयार करने के बारे में कोई खोज नहीं की गयी थी। यद्यपि काफी दिनों से इसकी आवश्यकता थी पर यह काम अप्रैल १९५० में वैज्ञानिक तथा औद्योगिक अनुसंधान परिषद् द्वारा नमक अनुसन्धानशाला (भावनगर) की स्थापना पर ही आरम्भ हुआ।

इस अनुसन्धानशाला ने (१) नमक के भिन्न-भिन्न उपयोगों के अनुसार स्टैंडर्ड निश्चित करने (२) नमक से कई उपयोगी पदार्थ निकालने (३) नमक और नमक की बनी चीजों की परीक्षा की नयी विधियाँ निकालने और (४) विभिन्न उप-वस्तुओं से कई प्रकार के रसायन बनाने आदि के बारे में अनुसन्धान किया।

भारत में लगभग ७० प्रतिशत नमक समुद्र के पानी से बनता है। नमक बनाने के बाद पानी में मैगनीसियम और पोटैशियम बहुत बचता है और ब्रोमीन तो केवल इसी से बनता है। अनुसंधानशाला ने पोटैशियम क्लोराइड, मैगनीसियम सल्फेट, मैगनीसियम क्लोराइड और ब्रोमीन निकालने की सस्ती विधि निकाली है। हाल में ही पोटैशियम क्लोराइड निकालने की एक बहुत ही सस्ती विधि निकाली गयी है। यह रसायन उपयोगी खाद होता है।

देश का करीब ३० प्रतिशत नमक राजस्थान की साँभर झील से निकाला जाता है। यह झील बहुत प्राचीन है। साँभर झील के नमक निकले हुए पानी में दो उपयोगी रसायन, सोडियम सल्फेट और सोड़ियम कार्बोनेट काफी मात्रा में पाये जाते हैं, किन्तु इनके निकालने की समस्या काफी जटिल बनी रही। इसके हल के लिये भारत सरकार ने कई विशेषज्ञों से सलाह ली और कई समितियाँ बैठायीं गयीं। अब अनुसन्धानशाला ने इस रसायनों को निकालने का व्यवहारिक और उपयुक्त तरीका निकाल लिया है।

इसी प्रकार अनुसन्धानशाला में नमक के विश्लेषण के भी सस्ते और जल्दी के तरीके निकाले गये हैं।

बाजार में खाने का जो नमक आमतौर से मिलता है, उसमें कई खराबियाँ होती हैं। अनुसन्धानशाला ने ऐसा नमक तैयार किया किया है, जो अधिक साफ होने के अलावा सीलता भी नहीं।

मैनगीसियम के योगिकों का उद्योगों में बहुत उपयोग है। अनुसन्धानशाला में जो काम हुआ है, उसके फलस्वरूप (१) लकड़ी के बुरादे, रेत, एसबस्टस चूर्ण आदि चीजों के साथ मिलाकर सीमेंट के चमकदार फर्श (२) रबड़, कागज और दवाइयों में काम आने वाले पदार्थ और मैगनीसियम युक्त अन्य औषधियाँ आदि बनायी जा सकी हैं।

इसके पहले नमक के सामान्य उपयोगों की ओर भी ध्यान नहीं दिया गया था। इस अनुसन्धानशाला में दुग्धशालाओं में पशुओं के खिलाने और दवाओं के द्वारा मनुष्यों के लिये बहुत उपयुत नमक तैयार करने के तरीके भी निश्चित किये हैं।

विज्ञान वार्ता

अद्‌भुत बाहु युक्त 'रोबट' का निर्माण

न्यूयार्क की जनरल इलेक्ट्रिक कम्पनी ने एक 'रोबट' का निर्माण किया है जो अपनी विशाल भुजाओं और हाथों से अपने काम उतनी ही सफाई के साथ कर सकता है जितनी सफाई से मनुष्य। उस कम्पनी के इन्जीनियरों ने उसका नाम 'हैन्डी मैन' रखा है। इसका निर्माण इस उद्देश्य से किया गया है कि यह प्रयोग की दृष्टि से बनाये जाने वाले अणुशक्ति-चालित विमानों के इञ्जिनो के कुशल इञ्जीनियर के रूप में काम कर सके। यह रेडियो-सक्रिय क्षेत्र में काम करता है। जिस समय यह काम पर होता है, इसकी गतिविधियों को, इससे कुछ दूरी पर बैठा एक मानव चालक नियंत्रित करता है। इस प्रकार के अन्य रोबटों तथा 'हैण्डी मैन' में मुख्य अन्तर यह है कि यह अपने इस्पाती हाथों में वस्तुओं को पकड़ सकता है। यह किसी वस्तु के पकड़ने में मनुष्य के हाथों की क्रिया की बड़ी सफाई से नकल कर सकता है। इस क्रिया को सम्पन्न करने के लिए इसकी प्रत्येक भुजा में एक अंगूठा और एक तर्जनी उंगली बनी होती है। प्रत्येक भुजा और हाथ कुल १० प्रकार की गतियां कर सकता है। 'रोबट' अपने मानव-चालक के हाथों की नकल करता है। इसकी भुजाएं और बाहें एक पेचीदा विद्युदणु प्रणाली द्वारा नियन्त्रित होती हैं।

चालक 'रोबट' की उंगलियों और अगूंठों को झुका सकता है या उन्हें मोड़ सकता है। इसकी कलाइयां और कुहनियां झुक सकती हैं, ऊपर और नीचे की भुजाएं मुड़ सकती हैं और कंधे के जोड़ों में आगे की ओर और बगल में घूमने वाली धुरियां हैं। इतने विविध प्रकार की गतियां करने में समर्थ होने के कारण यह 'रोबट' किसी पटरे में लोहे की कीलियां ठोंक सकता है, किसी पेंच को खोल सकता है और वृत्ताकार हुला-हूप को चारों ओर घुमा सकता है। इसके हाथ की गतियों को इतनी बारीकी से नियंत्रित किया जा सकता है। यह किसी फूल को भी तोड़ सकता है।

धातुओं की जोड़ाई में स्वर-लहरियों का प्रयोग

अमेरिका के वेस्टिंग हाउस इलेक्ट्रिक कार्पोरेशन ने एक ऐसी नवीन विधि विकसित की है जिसके अन्तर्गत धातुओं की जोड़ाई के लिए अत्यधिक तीव्रता वाली स्वर-लहरियों का उपयोग होता है। कम्पनी का कहना है कि इस विधि में व्यावहारिक होने तथा सफलता के साथ उत्पादन में प्रयुक्त हो सकने की महान सम्भावना निहित है। संक्षेप में, इस विधि द्वारा जिन धातुओं को जोड़ना होता है, उनके धरातल के धातु कणों को मिश्रित करके यह कार्य सम्पन्न किया जाता है। जोड़ने वाली धातुओं को 'ट्रांसड्यूसर' नामक शब्दोपरि यन्त्रों से जुड़ी हुई दो पहियों के

बीच पहुंचा दिया जाता है। ये यन्त्र बिजली की शक्ति को अत्यन्त ऊंची शक्ति वाले स्पन्दनों में परिणत कर देते हैं। पहियों के दबाव और स्पन्दनों के फलस्वरूप एक प्रकार की गूंथने जैसी क्रिया उत्पन्न होती है जो कि धातुओं की सतह के आक्साइड को तोड़ देती है। इससे धातु के कण गतिशील हो कर एक दूसरे से चिपक जाते हैं और धातुएं आपस में जुड़ जाती हैं। इस नयी विधि का प्रयोग इस्पात, तांबा, चांदी और अन्य मिश्रित धातुओं की पतली चद्दरें जोड़ने में सफलता के साथ किया गया है। इसके द्वारा एल्यूमिनियम के पतले टुकड़ों को प्रति मिनट १५ इंच की दर से जोड़ने में सफलता प्राप्त की जा चुकी है।

शब्दोपरि गति से उड़ने वाले विमान के चालक की प्राण रक्षा

अमेरिका की रिपब्लिक एविएशन कार्पोरेशन ने शब्दोपरि गति से उड़ने वाले विमान के चालक को संकट उपस्थित होने पर अपनी प्राण रक्षा करने का एक नया साधन प्रदान किया है। इस कम्पनी ने एक ऐसी राकेट चालित कैपस्यूल (नलिका के ढंग का वस्तु) का विकास किया है जो संकट उपस्थित होते ही २ सेकैंड के अन्दर ही चालक को बाहर फेंक देगा। इस कैपस्यूल का प्रयोग विशेषरूप से १४०० से ले कर २१०० मील तक की गति से उड़ने वाले विमानों के उपयोगार्थ किया जाएगा। यह भी सम्भव है कि भविष्य में इसका उपयोग अन्तरिक्ष-यानों को अन्तरिक्ष में उन्मुक्त करने के लिए किया जाए।

सामान्य उडान में यह कैपस्यूल सीट के रूप में रहती है, लेकिन संकट उपस्थित होने पर वह स्वतः चालक को चारों ओर से इस प्रकार घेर लेती है कि वह उसी के अन्दर बन्द हो जाता है और इसके उपरान्त यह तुरन्त यांत्रिक व्यवस्था द्वारा हवाई जहाज से बाहर फेंक दी जाती है।

खारे पानी से सैकड़ों रसायनों का उत्पादन

१९ वीं शताब्दी के अंतिम चरण में, जब मध्य-पश्चिम अमेरिका के उत्तरी भाग में स्थित केन्द्रीय मिशिगन प्रदेश लकड़ी के कारोबार के लिए प्रसिद्ध था, वहां के कबाड़ियों ने देखा कि उनके कारखानों के नीचे की भूमि में खारा पानी प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। उन्होंने सोचा कि यदि खारे पानी को जला कर नमक तैयार किया जाए तो उनकी आमदनी में काफी वृद्धि हो सकती है। इस उद्देश्य को कार्यरूप में परिणत करने के लिए उस क्षेत्र में खारे पानी का पहला कुंआ १८७८ में खोदा गया। बाद में पता चला कि नमक के अलावा खारे पानी से 'ब्रोमीन' (एक धातुहीन रासायनिक पदार्थ) भी निकाला जा सकता है इस प्रकार वहा ब्रोमीन तैयार करने का कारोबार प्रारम्भ हुआ। १८८४ तक आते-आते वहां के छोटे से गांव मिडलैण्ड में इतनी प्रचुर मात्रा में ब्रोमीन तैयार होने लगा कि विदेशों में उसका निर्यात करना प्रारम्भ हो गया। और, आज मिडलैण्ड का यह गांव विश्व भर में 'ब्रोमीन' और तत्सम्बधी अन्य सैकड़ों रासायनिक पदार्थों के उत्पादन के लिए विख्यात हो चुका है। वहां पर स्थापित 'दि डो केमिकल कम्पनी' इन पदार्थों का उत्पादन करने वाली दुनिया की सबसे बड़ी कम्पनियों में एक है।

१८९० में हर्वट डो नामक एक युवक वैज्ञानिक ने खारे जल के विद्युतीय विश्लेषण सम्बन्धी एक अविष्कार किया। इसकी सहायता से बिजली द्वारा उन्हें ब्रोमीन तैयार करने में

सफलता मिली। उसके सात वर्ष बाद उन्होने 'ब्रोमीन' उत्पन्न करने के लिए अपनी कम्पनी 'दि डो केमिकल कम्पनी' की स्थापना की।

श्री डी० क्लीवलैण्ड (ओहायो) के 'केस स्कूल औव ऐपलायड सांइस' के विद्यार्थी थे और उन्होंने अपने विद्यार्थी जीवन में ही 'ब्रोमीन' उत्पन्न करने की अपनी वैज्ञानिक विधि विकसित कर ली थी। उन्होंने देखा कि खारे जल में बिजली की धारा दौड़ाने पर वह लाल हो जाता है जिससे पता चलता है कि उसमें शुद्ध 'ब्रोमीन' मौजूद है। फिर, उस घोल में से हवा के बुलबुले उठा कर 'ब्रोमीन' को पृथक करना सम्भव हो गया। उसे क्षार में मिला देने पर 'ब्रोमीन' के ऐसे घोल तैयार हो सकते हैं जिन्हें विभिन्न प्रकार से प्रयुक्त किया जा सकता है। १८९३ तक 'डो कम्पनी' द्वारा तैयार 'ब्रोमीन और 'ब्रोमाइड' बाजार में काफी मात्रा में में बिकने लगे और मिडलैण्ड के भाग्य फिर चमक उठे। उसके बाद इस कम्पनी ने खारे पानी के 'ब्रोमीन' द्वारा ७०० से अधिक प्रकार के रसायन और रासायनिक पदार्थ तैयार करने में सफलता पायी है। उदाहरण के लिए, कुछ ही वर्षों में 'ब्रोमाइन' उत्पन्न करने कीं विधि द्वारा खारे पानी से 'क्लोरीन' नामक उत्पन्न किया जाने पदार्थ लगा।

गांगरीन की दवा

आज कल तो चीड़फाड़ के ऐसे वैज्ञानिक सड़ाव-निरोधक तरीकों का आविष्कार हो चुका है जिनकी सहायता से चीड़फाड़ करने पर मांस सड़ने नहीं पाता, किन्तु उस समय जब कि इन तरीकों का पता न था, 'ब्रोमीन' का प्रयोग आमतौर पर मांस के सड़ाव को फैलने से रोकने के लिए किया जाता था। कीटाणुनाशक होने के कारण 'ब्रोमीन के मिश्रित घोलों को शरीर के भीतर पहुँचा कर श्वास सम्बन्धी छूत के रोगों का भी उपचार किया जाता था।

आजकल 'ब्रोमीन' का प्रयोग बहुत बड़ी मात्रा में दवाओं के लिए होता है। किन्तु इसके अनेक औद्योगिक उपयोग भी हैं जिनमें इसकी बहुत अधिक खपत होती है। सूती वस्त्र, गैसोलीन, फोटोग्राफी, रंगरोगन, सौन्दर्य प्रसाधनों और इसी प्रकार के अनेक अन्य उद्योगों में 'ब्रोमीन' और 'ब्रोमाइड' (ब्रोमीन तथा कुछ अन्य तत्वों का घोल) का काफी प्रयोग होता है।

जब इन पदार्थों की मांग बहुत ही अधिक बढ़ गयी तो 'डो कम्पनी' ने १९३० के आसपास समुद्र के खारे पानी से 'ब्रोमीन' निकालने की दिशा में अनुसंधान कराये। इस प्रकार समुद्री पानी से 'ब्रोमीन' उत्पादन की दिशा में जो सफलता मिली वह इस शताब्दी के टेकनोलॉजी सम्बन्धी विकास की एक उल्लेखनीय सफलता सिद्ध हुई। युद्ध काल में इन पदार्थों की मांग बढ़ जाने पर टेक्साज राज्य से फ्रीपोर्ट नामक स्थान पर समुद्र के खारे पानी से 'ब्रोमीन' तैयार करने का एक अन्य कारखाना भी १९४१ में स्थापित किया गया।

इस सम्बन्ध में यह स्मरणीय है कि समुद्री पानी के प्रत्येक १० लाख अंशों में 'ब्रोमीन' के केवल ६७ अंश होते हैं। इस प्रकार, १ पौण्ड 'ब्रोमीन' प्राप्त करने के लिए २ हजार गैलन समुद्री पानी जलाना पड़ता है।

'ब्रोमीन' से तैयार एक अन्य रासायनिक पदार्थ 'इथिलीक डाई ब्रोमाइड' का प्रयोग मिट्टी के विकार को नष्ट करने के लिए किया जाता है। इसे खाद्य-पदार्थ तैयार करने वाले कारखानों, गोदामों, आटे के कारखानों, शीतगारों आदि को कीटाणु और रोग से युक्त करने के लिए प्रयुक्त किया जाता है।

'ब्रोमीन' और तत्सम्बन्धी अन्य रासायनिक पदार्थों का उपयोग कागज, रेशम, ऊन आदि रंगने तथा लिपस्टिक, नाखून की पालिश आदि के उत्पादन करने में भी होता है। फोटोग्राफी की फिल्में तैयार करने में 'ब्रोमीन' का प्रयोग आधारभूत सामग्री के रूप में होता है। दवाओं में भी इसका प्रयोग होता है।

चमत्कारी औषधियों का आविष्कार

पिछले कुछ वर्षों में रोगों के प्रसार को रोकने और रोगों का नाश करने वाली अत्यधिक प्रभावशाली औषधियों का विकास हुआ है। न केवल सामान्य रोगों, बल्कि शरीर और मस्तिष्क को पंगु और बेकार कर देने वाले भयंकर रोगों पर काबू पाने वाली काफी प्रभावशाली औषधियों का निर्माण किया गया है। आज मनुष्य के अनेकों रोगों पर काबू पाने के लिए जिन औषधियों का उपयोग होता है, उनमें से ६० प्रतिशत १० वर्ष पूर्व अज्ञात थीं। उदाहरणार्थ, पेनिसिलीन, स्ट्रप्टोमाइसिन इत्यादि। विभिन्न औषधि-निर्माता फर्मों में कार्य करने वाले औषधि विशेषज्ञों ने इन प्रभावशाली औषधियों के निर्माण में उल्लेखनीय योग दिया है। उदाहरण के लिए विस्कौसिन विश्वविद्यालय के वैज्ञानिकों ने रक्त में थक्का जमने के कारणों का अनेक वर्षों तक सूक्ष्मता से अध्ययन करने के उपरान्त एक ऐसी प्रभावशाली औषधि खोज निकाली जिससे इससे भयंकर रोग पर काफी हद तक काबू पाया जा सकता है। इस प्रकार हृदय की रक्तवाहिनी नाड़ियों में रक्त जमने के खतरे पर काबू पाकर हृदय रोगों के निदान और उपचार में काफी सहायता मिली है। इस औषधि के सेवन से स्वयं प्रेसिडेण्ट आइजनहौवर की प्राण-रक्षा हुई है।

अमेरिका में १३०० से अधिक-निर्माता फर्में हैं और उनके कारोबार की सफलता इसी बात पर निर्भर करती है कि वह अधिकाधिक प्रभावशाली और गुणकारी औषधियों का निर्माण करें। १९५७ में कई देशों में एशियाई फ्लू का प्रकोप हुआ है। ६ अमेरिकी औषधि-निर्माता कम्पनियों ने तुरन्त इस रोग पर काबू पाने के लिए एक टीका तैयार किया और रोग से पीड़ित देशों को पर्याप्त मात्रा में यह टीका सप्लाई किया। १९३९ में अमेरिका से २ करोड़ डालर मूल्यकी औषधियाँ निर्यात हुई थीं। इस समय इससे १५ गुना अधिक मूल्य की दवाएँ अन्य देशों को जाती है।

डिब्बा बन्द पदार्थों की जाँच करने के लिये नई आणविक विधि

अमेरिका में एक ऐसी आणविक विधि का आविष्कार हुआ है, जिसके अन्तर्गत आणविक विकरण द्वारा डिब्बों में बन्द पदार्थ का पता लगा लिया जाता है। इस विधि द्वारा एक मिनट में

१ हजार डिब्बों में बन्द सामग्री का पता लगाया जा सकता हैं। इस विकिरण का डिब्बों में बन्द खाद्य पदार्थों पर कोई बुरा प्रभाव नहीं पड़ता।

अणुशक्ति भोजन और विद्युत शक्ति की माँग पूरी करेगा

अमेरिका अणुशक्ति कमीशन के सदस्य डा० लिबी ने कहा है कि संसार की बढ़ती हुई जन-संख्या के लिये पर्याप्त भोजन और विद्युत शक्ति सुलभ करने की समस्या भविष्य में बड़ा गम्भीर रूप धारण कर लेगी, परन्तु अणुशक्ति इस माँग को पूरा करने में समर्थ रहेगी।

वर्तमान अनुमानों के अनुसार संसार की जन-संख्या हर ६० वर्ष बाद दुगनी हो जाती है। अतएव खाद्य-पदार्थों का उत्पादन बढ़ा देने के लिये हमें प्राणपण से चेष्टा करनी होगी। इसके साथ ही, विद्युतशक्ति की माँग में भी अप्रत्याशित वृद्धि होगी, और उस माँग को पूरा करना भी कठिन हो जायेगा। उन्होंने यह आशा प्रकट की है कि अणुशक्ति इन दोनों ही समस्याओं का सामना करने में समर्थ है।

आणविक विकरण द्वारा पौधों की नस्ल में उल्लेखनीय सुधार

आणविक विकिरण की सहायता से वैज्ञानिक पौधों की नस्ल में महत्वपूर्ण सुधार करने के लिये प्रयत्नशील है। उदाहरणार्थ, अमेरिका में वैज्ञानिक विकिरण की सहायता से ओट, मूँगफली, सफेद सरसों के पौधों की नस्लों में सुधार करने में कुछ हद तक सफल भी हो गये हैं।

आलू की फसल की रक्षा के लिये नई कीटाणुनाशक औषधि

अमेरिकी कृषि विभाग ने 'थीमेट' नामक कीटाणुनाशक औषधि को आलू की फसल की सुरक्षा के लिये इस्तेमाल करने की स्वीकृति प्रदान कर दी है। अब तक यह औषधि कपास और चुकन्दर के पौधों की रक्षा के लिये इस्तेमाल की जाती थी। आशा है कि निकट भविष्य में अन्य फसलों की रक्षा के लिये भी इसे प्रयुक्त दिया जा सकेगा।

बछड़ों की आयरियोमाइसीन

अमेरिकी कृषि विभाग के वैज्ञानिकों ने परीक्षणों द्वारा यह पता लगाया है कि यदि बछड़ों को चारे के संग आयोरियोमाइसीन नामक कीटाणुनाशक औषधि मिला कर खिलाई जाये तो उन्हें दस्त की बीमारी नहीं होती।

पृथ्वी के भीतर ३३ हजार फुट गहरा सूराख खोदने की योजना

अमेरिकी वैज्ञानिकों ने समुद्री क्षेत्र में एक ३३ हजार फुट गहरा सूराख खोद कर पृथ्वी के गर्भ के अज्ञात रहस्यों की खोज करने की योजना तैयार की है। इसके लिये उन्होंने अमेरिकी काँग्रेस से १.५ करोड़ डालर की सहायता माँगी है। उन्हें आशा है कि इस योजना के सफल हो जाने पर

वे समुद्र के प्राणिशास्त्रीय इतिहास और पृथ्वी की भौतिक विशेषताओं के सम्बन्ध में अनेक महत्व-पूर्ण जानकारी प्राप्त करेंगे।

अभी हाल में राष्ट्रीय अकादमी की 'अमेरिकी विविध परिषद्' के दो अधिकारियों ने काँग्रेस की व्यापारिक, समुद्री और मत्स्य उप-समिति को अपनी योजना समझाते हुए कहा कि पृथ्वी में सूराख खोदने सम्बन्धी यह 'मोहौल प्रोजैक्ट' कार्यान्वित हो सकता है और इसे कार्यान्वित करना उचित भी है। अमेरिकी विविध परिषद् राष्ट्रीय विज्ञान प्रतिष्ठान से प्राप्त एक अनुदान की सहायता से कार्य कर रही है। वह सरकारी और निजी सहायता से पृथ्वी की ऊपरी परत को छेद कर उसके नीचे के भाग तक जो पृथ्वी की ऊपरी परत को पृथ्वी के मर्म या मध्य भाग से पृथक करती है, सूराख बनाना चाहती है। पृथ्वी के मर्म भाग और उसकी ऊपरी परत के बीच के क्षेत्र का पता १६१२ में प्रोफेसर ए० मोहोरविशियों ने एक भूकम्प की कम्पन-लहरों का अध्ययन करके लगाया था। उन्हीं के नाम पर इस योजना का नाम 'मोहाल' योजना रखा गया है।

पृथ्वी के प्रकम्पन सम्बन्धी बाद के अध्ययनों के आधार पर यह निश्चित किया गया कि पृथ्वी की महाद्वीपी परत औसतन ३३ कीलोमीटर मोटी है, जब कि महासागरीय परत, पानी सहित केवल १२ कीलोमीटर मोटी है, इस खोज के कारण और इस बात का पता चल जाने से कि महा-द्वीपी परत में ग्रेनाइट मिलती है, जब कि महासागरीय परत में उसका अभाव है। अब वैज्ञानिक यह आशा करने लगे हैं कि पानी पर तैरते मंचों से खनिज-तेल की खुदाई करने वाले विशिष्ट उपकरणों की सहायता से इस सूराख का खोदना सम्भव है। सबसे गहरा खनिज तेल का कुआ टैक्साज राज्य के पश्चिमी क्षेत्र में है और उसकी गहराई लगभग २५,३०० फुट है।

अगले दस वर्षों में चिकित्सा के क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रगति

अमेरिका की एक प्रसिद्ध औषधिनिर्माता कम्पनी 'चेज पिफजर एण्ड कम्पनी' के एक प्रसिद्ध वैज्ञानिक का कथन है कि चिकित्सा विज्ञान के क्षेत्र में अगले दस वर्ष विशेष उल्लेखनीय होंगे। उन्होंने जो भविष्य वाणियाँ की हैं, इनमें मुख्य ये हैं :

१६६२ तक हृदय रोगों पर नियन्त्रण पाने वाली प्रभावशाली औषधियों का विकास;

१६७५ तक कैंसर रोग से मरने वाले रोगियों की संख्या में उल्लेखनीय कमी;

१६६२ तक गठिया रोग पर नियन्त्रण तथा जुकाम पर नियन्त्रण करने वाले ठीके का विकास।

रक्ताभाव रोग की जाँच करने के लिये आणविक विधि का उपयोग

अमेरिकी वैज्ञानिकों ने रक्ताभाव (एनीमिया) रोग के तथा पेट में होने वाली गड़बड़ियों के निदान के लिये एक नई विधि का विकास किया है। इस विधि के अन्तर्गत रोगी को रेडियो-सक्रिय विटामिन बी० १२ की छोटी खुराक पिलाई जाती है और अनुसूचक यन्त्रों की सहायता से

इस बात का पता लगाया जाता है कि शरीर में वह शोषित हो गई है या नहीं। शोषित होने पर यह निश्चित हो जाता है कि रोगी रक्ताभाव से पीड़ित है।

ब्रह्माण्ड किरणों का उद्भव नक्षत्रों से होता है

अन्तर्राष्ट्रीय भू-भौतिक वर्ष में ब्रह्माण्ड किरणों का अध्ययन करने वाले अमेरिकी वैज्ञानिक डा० एच० विक्टर नेहर (कैलिफोर्निया इन्स्टिट्यूट और टैक्नोलौजी) का कथन है कि सम्भवतः ब्रह्माण्ड किरणों का उद्भव अत्यधिक दूरी पर स्थित आकाशगंगाओं और नक्षत्रों से अथवा नक्षत्रों के विस्फोट इत्यादि के फलस्वरूप होता है। उनका कहना है कि यदि सूर्य ब्रह्माण्ड किरणों का निस्सरण होता तो दिन और रात में उसके परिणाम में थोड़ा-बहुत अन्तर अवश्य पड़ता। परन्तु परीक्षणों के फलस्वरूप यह पता चला है कि रात और दिन में ब्रह्माण्ड किरणों का प्रभाव एक समान रहता है। इस सम्बन्ध में अभी आगे अध्ययन जारी है।

जहाज की स्थिति बताने वाला नया गणकयन्त्र

रेडियो कार्पोरेशन औव अमेरिका ने एक ऐसे नये गणक यन्त्र का आविष्कार किया है, जो महासागरों में यात्रा करने वाले जहाजों को उनकी सही स्थिति की जानकारी करा देगा। अब तक जहाज की स्थिति का पता लगाने के लिये मार्ग-दर्शकों को बहुत अधिक गणना करनी पड़ती थी। अब यह स्वचालित यन्त्र तुरन्त यह बता दिया करेगा कि जहाज कितने देशान्तर अक्षांश पर सफर कर रहा है। यह यन्त्र मोटरों में फिट 'स्पीडो मीटर' की तरह कार्य करेगा।

———

सहयोग की कामना

अपने ४४ वर्षीय जीवन में 'विज्ञान' ने हिन्दी में वैज्ञानिक साहित्य के सृजन की अभूतपूर्व प्रेरणा देकर जो सेवा की है, उससे उसके सभी पाठक ही नहीं वरन् अन्य शिक्षित लोग भी भली भांति परिचित हैं। जब हिन्दी राष्ट्र भाषा नहीं थी, महत्वाकांक्षा के रूप में हिन्दी को समृद्ध बनाने के लिये 'विज्ञान' ने अथक प्रयास किये। विज्ञान परिषद की ओर से ऐसी-ऐसी पुस्तकें प्रकाशित हुई जिनके द्वारा पाठकों के समक्ष बिल्कुल नई जानकारियां प्रस्तुत हुई। रुचि एवं भाषा-दोनों को ध्यान में रखते हुये—परिषद ने वैज्ञानिक विषयों के प्रति सर्वसाधारण का ध्यान आकृष्ट किया। उसने वैज्ञानिकों को प्रेरित किया कि वे एक सर्व सम्मत पारिभाषिक शब्दावली विकसित करें जिसके द्वारा भावों का वहन उचित रीति से तो हो ही, प्रयुक्त शब्दावली नित्यप्रति की बोलचाल की शब्दावली के सन्निकट भी हो। हर्ष की बात है कि अब केन्द्रीय सरकार ने देशभर के वैज्ञानिकों की परामर्श से इस प्रकार की शब्दावली का निर्माण किया है; किन्तु अभी उसका सभारम्भ भर हुआ है। पूर्ण सफलता के लिये अभी बहुत काम करने की आवश्यकता होगी।

हिन्दी के राष्ट्र भाषा घोषित हो जाने से सर्वसम्मत शब्दावली के साथ ही वैज्ञानिक विषयों पर रोचक लेखों के प्रकाशन की नितान्त आवश्यकता का सभी क्षेत्रों में अनुभव किया जा रहा है। अपने पिछले जीवन में 'विज्ञान' ने इस प्रकार की आवश्यकता को पूरा करने का प्रयास किया है। यदि उसे कभी उद्देश्य की पूर्ति में सफलता नहीं प्राप्त हुई तो उसका मुख्य कारण उसकी आर्थिक विपन्नता अथवा व्यवस्था का सम्यक अभाव ही था। प्रारम्भ से ही उसका सम्बन्ध ऐसे जिज्ञासुओं से रहा है जो वैज्ञानिक विषयों के पारंगत होने के साथ ही हिन्दी के ज्ञाता भी थे। यही कारण है कि जो भी सेवा उसके द्वारा हुई है वह इस दृष्टि से महत्वपूर्ण रही है कि उससे हिन्दी में वैज्ञानिक साहित्य का अवतरण होता रहा है। किन्तु पिछले दशक में विश्व में ऐसे परिवर्तन हुये हैं और विज्ञान ने इतनी प्रगति की है कि भरसक प्रयत्न करने पर भी 'विज्ञान' जैसी छोटी पत्रिका उन वैज्ञानिक विषयों को अपने में समेट नहीं सकी। साथ ही धीरे-धीरे उसका साथ भी पुराने सेवियों से छूटता रहा है। नवीन पीढ़ी में बहुत ही कम ऐसे सेवी आगे बढ़कर आये हैं जो 'विज्ञान' के कार्य भार को ले सकते। ऐसी स्थिति में स्वाभाविक था कि 'विज्ञान का स्तर आधुनिक वैज्ञानिक प्रगति को देखते तथा हिन्दी को राष्ट भाषा मानते हुये, बहुत नीचे चला जाय। और यही हुआ भी। अब हमें एक ऐसी योजना बनानी है जिसके द्वारा हम तरुण-पीढ़ी का अधिकाधिक सहयोग प्राप्त कर सकें और विज्ञान में नूतन से नूतन सामग्री का चयन कर पाठकों को आह्लादित कर सकें। वैज्ञानिक विषयों पर रोचक निबन्ध दो श्रेणी के ही लोग लिख सकते हैं। प्रथम तो वे जो अपने विषय के प्रकाण्ड पण्डित

हैं, दूसरे वे जिन्होंने किसी विषय का गहन अध्ययन किया है। प्रथम कोटि के लेखक प्रायः शोध-निबन्ध लिखते हैं जो सर्व साधारण के लिये अधिक महत्व के नहीं होते। दूसरे कोटि के लेखकों से सर्वप्रिय अथवा सूचना प्रद निबन्ध प्राप्त हो सकते हैं। ऐसे लेखकों को पाठकों में ही सम्मिलित किया जा सकता है। हमारा अनुरोध है कि दोनों ही प्रकार के लेखक अपनी रचनाओं से विज्ञान को लाभान्वित करें। ऐसे ही सहयोग द्वारा जनता में स्तरीय वैज्ञानिक साहित्य प्रचारित एवं प्रसारित किया जा सकता है।

हाँ, एक बात है। एक ओर जहाँ हिन्दी साधारणतम मासिक पत्रिकायें तक लेखकों को कुछ न कुछ पारिश्रामिक के रूप में आर्थिक दान देती हैं, 'विज्ञान' सदैव इस क्षेत्र में पीछे रहा है जिसका मुख्य कारण उसका आर्थिक दृष्टि से सुदृढ़ न होना ही था। यदा-कदा उसने लेखकों को यदि कुछ प्रदान भी किया तो वह सूक्ष्म था। हमारी योजना है कि भविष्य में हम नवोदित लेखकों की रचनाओं पर कुछ न कुछ पारिश्रमिक अवश्य दें। साथ ही लब्धप्रतिष्ठ लेखकों से आग्रह करें कि वे अपनी रचनायें निःशुल्क हमें प्रदान कर 'विज्ञान' की सेवा में अपना योग प्रदान करें।

भाविष्य में 'विज्ञान' सुसम्पादित होकर पाठकों के पास पहुँचे, इसके लिये हम विभिन्न विषयों पर लिखे जाने वाले लेखों की एक-एक पूर्व योजना यहाँ प्रस्तुत कर रहे हैं। साथ ही लेखकों से निवेदन कर रहे हैं कि वे अपनी रुचि तथा क्षेत्र के अनुसार लेख अथवा लेखमाला प्रेषित कर अनुग्रहीत करें।

१. विज्ञान की विभिन्न शाखाओं के ऐतिहासिक विश्लेषण-यथा रसायन शास्त्र का इतिहास, गणित का इतिहास, जीवशास्त्र का इतिहास आदि पर सुसम्बद्ध एवं भारतीय विचारधारा के अनुसार श्रृंखलित लेख मालायें;

२. वैज्ञानिकों के जीवन से सम्बन्धित लेख या लेखमाला,

३. आधुनिक वैज्ञानिक प्रगति से सम्बन्धित आविष्कार या अन्य विवरण सम्बन्धी निबन्ध;

४. भारतीय कृषि के विभिन्न अंगों पर सचित्र लेख;

५. वैज्ञानिक विषयों पर पारिभाषिक शब्दावली का प्रस्तुती करण या विचार विमर्श;

६. विविध विषय, जो लेखक की रुचि पर छोड़े जाते हैं।

ऐसी आशा की जाती है कि लेखक सर्व स्वीकृत शब्दावली को अधिकाधिक प्रयोग में लाते हुये नये शब्दों के लिये जनरुचि तथा शब्दों के प्रचलन आदि का यथेष्ट ध्यान रखेंगे।

ऐसी रूपरेखा को ध्यान में रखते हुये 'विज्ञान' के आकार-प्रकार में आमूल परिवर्तन लाये गये हैं। विश्वास है कि सबों के सहयोग से उद्देश्य की पूर्ति होगी। फलस्वरूप 'विज्ञान' एक नवीन जामा धारण करके वैज्ञानिक विषयों पर एक स्तरीय मासिक पत्रिका का पद ग्रहण कर सकेगी। पाठकों पर निर्भर है कि वे अपने साथियों को 'विज्ञान' का ग्राहक बनाकर उन्हें वैज्ञानिक विषयों पर

पठनीय सामग्री के अध्ययन की ओर उन्मुख करें। सब प्रकार की सामग्री के संचयन के लिये आवश्यक है कि 'विज्ञान' के पृष्ठों में वृद्धि की जाय किन्तु फिर आर्थिक समस्या आ जाती है। 'विज्ञान' को आत्म निर्भर बनाने के लिये आवश्यक है कि विभिन्न प्रदेशों के शिक्षा विभाग अपने यहां के प्रत्येक स्कूल या कालेज के पुस्तकालय में 'विज्ञान' को प्राथमिकता प्रदान करें। यही नहीं, राज्य सरकार तथा केन्द्रीय सरकार का परम कर्त्तव्य है कि वे इतनी प्राचीन पत्रिका को स्तर उठाने एवं सुचारू रीति से प्रकाशित होने के लिये आवश्यक आर्थिक सहायता, ग्रांट के रूप में प्रदान करें। उत्तर प्रदेशीय सरकार से प्राप्त होने वाली २०००) की वार्षिक ग्रांट अपर्याप्त ही नहीं, नितान्त अल्प है। हमें आशा है कि राज्य तथा देश में विज्ञान के प्रोत्साहनार्थ राज्य तथा केन्द्रीय सरकारें पृथक-पृथक आवर्त तथा अनावर्त दोनों प्रकार की ग्रांट्स प्रदान करेंगी।

शुभ सम्वाद:

केन्द्रीय सरकार ने अभी जिन ७ हिन्दी-कृतियों पर दो-दो हजार रुपये के पुरस्कार की घोषणा की है उनमें विज्ञान से सम्बंधित दो कृतियां हैं। ये हैं—डा० सत्यप्रकाश कृत **सामान्य रसायन शास्त्र**" तथा श्री फूलदेव सहाय वर्मा कृत "**ईख और चीनी**"। सरकार द्वारा दो वैज्ञानिकों का यह सम्मान न केवल उनकी प्रतिष्ठा के अनुकूल है वरन् हिन्दी के प्रति की गई उनकी सेवाओं का उचित मूल्यांकन भी है। डा० सत्य प्रकाश ने प्रारम्भ से ही 'विज्ञान परिषद' के पल्लवन एवं उसके द्वारा वैज्ञानिक साहित्य के प्रकाशन में स्तुत्य योग दिया है। हिन्दी में वैज्ञानिक साहित्य के सृजन तथा उसके अंग्रेजी से हिन्दी रूपान्तर में उन्होंने अथक प्रयास किये हैं। उन्हें हिन्दी साहित्यसम्मेलन द्वारा इसी वैज्ञानिक कृति पर मंगला प्रसाद पुरस्कार भी मिल चुका है।

श्री फूलदेव सहाय वर्मा ने काशी हिन्दू विश्व-विद्यालय में रह कर औद्योगिक रसायन का बहुत काल तक अध्यापन किया है। उनकी कृति "ईख और चीनी" शोध में रत व्यक्तियों तथा कृषकों को समान रूप से लाभ पहुँचाने वाली है। बिहार राष्ट्र भाषा परिषद से प्रकाशित यह हिन्दी में वैज्ञानिक विषयक प्रथम अत्यन्त प्रामाणिक कृति है।

हमारी प्रकाशित पुस्तकें

विज्ञान

अगस्त-सितम्बर १६५६

रजिस्टर्ड सं० ८० ३७२

उत्तर प्रदेश, बम्बई, मध्यप्रदेश, राजस्थान, बिहार, उड़ीसा, पंजाब तथा आंध्र प्रदेश के शिक्षा विभागों द्वारा स्कूलों, कालिजों और पुस्तकालयों के लिये स्वीकृत

विज्ञान परिषद् अनुसन्धान पत्रिका

वैज्ञानिक अनुसन्धान से सम्बन्धित हिन्दी की प्रथम शोध पत्रिका

(त्रैमासिक)

जिसमें गणित, भौतिक शास्त्र, रसायन शास्त्र, प्राणि शास्त्र, वनस्पति शास्त्र तथा भूगर्भ शास्त्र पर मौलिक एवं शोधपूर्ण निबन्ध प्रकाशित होते हैं। भारतवर्ष की विविध प्रयोगशालाओं के उत्कृष्ट निबन्धों को इसमें स्थान दिया जाता है।

विश्व के सभी प्रमुख वैज्ञानिक संस्थानों पुस्तकालयों तथा विश्वविद्यालयों द्वारा यह पत्रिका समादृत है।

सामान्य सदस्यों के लिये वार्षिक शुल्क ८) । 'विज्ञान' के सभ्य ४) अतिरिक्त वार्षिक शुल्क देकर अनुसन्धान पत्रिका प्राप्त कर सकते हैं। यह पत्रिका अभी त्रैमासिक है किन्तु भविष्य में द्वैमासिक या मासिक होने की सम्भावना है।

प्रधान सम्पादक—डा० सत्य प्रकाश

प्रबन्ध सम्पादक—डा० शिव गोपाल मिश्र

मगाने का पता

विज्ञान परिषद् अनुसंधान पत्रिका,

विज्ञान परिषद्,

थार्नहिल रोड,

इलाहाबाद—२

प्रकाशक—डा० रमेशचन्द्र कपूर, प्रधान मन्त्री, विज्ञान परिषद्, इलाहाबाद

मुद्रक— हिन्दुस्तान प्रेस, कटरा, इलाहाबाद।